हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकरका ७८ और ९६ वाँ ग्रन्थ

मुग़ल-साम्राज्यका क्षय और उसके कारण

लेखक—
प्रो० इन्द्र, विद्यावाचस्पति

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रस्तावना

यह ग्रन्थ एक विशेष लक्ष्यको सामने रखकर लिखा गया है। न तो यह स्कूलके लड़कोंकी पाठ्य पुस्तक है और न लेखकके अनुशीलनकी डायरी। इस ग्रन्थका उद्देश्य मुग़ल साम्राज्यके क्षयकी कहानीद्वारा उन सिद्धान्तोंको प्रकट करना है जो राज्योंके उदयास्तके मूल कारण होते हैं।

लेखकने उस कहानीके सम्बन्धमें बहुत विस्तृत अध्ययन करनेका यत्न किया है। अब तक जो साहित्य प्रकाशित हुआ है उसे पढ़ा है; और उसमेंसे अपनी बुद्धिके अनुसार घटनाओंका तारतम्य स्थापित करके इस ग्रन्थमें लिखा है। यह ग्रन्थ आम जनताके लिए लिखा गया है, इस कारण इसे आधारभूत ग्रन्थोंके नाम-निर्देशों और टिप्पणियोंसे भारी और दुरूह बनानेका यत्न नहीं किया गया। यदि किसी घटनाके सम्बन्धमें इतिहास-लेखकोंमें दो मत हैं, तो उनमेंसे लेखकको जो ठीक जँचा है उसे स्वीकार कर लिया गया है। लेखकने किन कारणोंसे उसे स्वीकार किया है, इसका उल्लेख करके ग्रन्थको बढ़ानेका यत्न नहीं किया गया। ग्रन्थका जितना परिमित लक्ष्य है, उसकी पूर्तिके लिए यह पर्याप्त है कि पाठकके सम्मुख घटनाओंका प्रामाणिक विवरण रक्खा जाय। घटनाओंके सम्बन्धमें वाद-विवाद उसी ग्रन्थमें शोभा देता है जिसका लक्ष्य ऐतिहासिक अन्वेषण हो। इस ग्रन्थका उद्देश्य राजनीतिक पुस्तकपर अन्वेषण है। इतिहास उसमें सहायक-मात्र है।

२

इस ग्रन्थके प्रथम खण्डकी भूमिकामें लेखकने लिखा था कि "यह पुस्तक सम्भवतः चार भागोंमें समाप्त होगी। मेरा विचार इसे निम्नलिखित भागोंमें बाटनेका है—

"प्रथम भाग—यौवन-काल : अकबरके राज्यारोहणसे औरंगज़ेबके राज्यारोहणतक।

"द्वितीय भाग—प्रौढावस्था तथा क्षयका प्रारम्भ : औरंगज़ेबके राज्यारोहणसे शिवाजीकी मृत्युतक।

"तृतीय भाग—क्षीणता और विनाश : औरंगज़ेबके उत्तराधिकारियोंके साम्राज्य-रक्षाके लिए व्यर्थ प्रयत्न।

"चतुर्थ भाग—अन्तिम झलक और समाप्ति।

"मैं जानता हूँ कि कार्य बड़ा परिश्रमसाध्य और कठिन है, परन्तु यदि किसी आकस्मिक घटनाने रुकावट न डाली तो मेरा संकल्प है कि इसे पूर्ण कर ही डालूँगा।"

प्रसन्नताकी बात है कि वह संकल्प पूरा हो गया। इस दूसरे खण्डमें मुग़ल साम्राज्यकी समाप्तितकका इतिहास आ गया है। यों तो मुग़ल वंशका नामलेवा कोई व्यक्ति शाहजहानाबादके किलेमें १८५७ तक साँस लेता रहा, परन्तु, मुग़ल साम्राज्य तो नादिरशाहके हमलेके साथ ही समाप्त हो चुका था। उसके पश्चात् भारतवर्षका इतिहास मुग़ल साम्राज्यका इतिहास नहीं है।

३

मुग़ल साम्राज्यकी समाप्तिसे पूर्व ही भारतवर्षमें दो नई शक्तिया उत्पन्न हो चुकी थीं जो उसका स्थान लेनेका मनसूबा बाँध रही थीं। दक्षिणमें महाराष्ट्र शक्तिका बीज-पात हो चुका था और समुद्रतटपर व्यापार करनेका अधिकारपत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनीको मिल चुका था। दोनों ही शक्तियोंका प्रारम्भ छोटा-सा था। उस समय कोई नहीं जानता था कि कुछ समय पीछे यह राई पहाड़के रूपमें परिवर्तित हो जायगी। समयने और परिस्थितियोंने दोनोंको पनपनेका अवसर दिया और धीरे धीरे वह इतनी विशाल हो गई कि मुग़ल साम्राज्यकी स्थानापन्न होनेका दावा करने लगीं। मराठा राज्य मैदानमें पहले आया और शीघ्र ही भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक छा गया। निकट ही था कि वह भारतपर पूरी तरह अधिकार जमा लेता और

मुग़ल सम्राट्के स्थानमें दिल्लीकी गद्दीपर शिवाजीका वंशज विराजमान हो जाता, परन्तु, भवितव्यतामें कुछ और ही लिखा था। मराठोंकी शक्ति भी उन्हीं रोगोंके कारण जर्जरित हो गई थी जिन्होंने मुग़लोंकी शक्तिको खा लिया था। मराठा सेनापतियोंने मुग़ल सरदारोंकी बुराइयोंसे शिक्षा तो ग्रहण न की, उलटा वे उनका अनुकरण करने लगे। पानीपतमें मराठोंकी जो सेना अहमदशाह अब्दालीसे लड़ रही थी वह शिवाजीकी विजयिनी सेनासे बहुत भिन्न थी। उसे नादिरशाहसे लड़नेवाली मुग़ल सेनाका रूपान्तर ही कह सकते हैं।

इधर पानीपतमें मराठा साम्राज्यकी भावनाओंका अन्त हो रहा था और उधर बंगाल और अन्य समुद्रतटवर्ती स्थानोंपर योरपियन व्यापारी शक्ति-संचय कर रहे थे। परिस्थितिने उन्हें मदद दी। मराठोंने मुग़लोंको निर्बल कर दिया, परन्तु, पूरी तरह उनका स्थान न ले सके। और इसी बीचमें पश्चिमके व्यापारी युद्धका नया साज़ो सामान लेकर मैदानमें कूद पड़े और दिल्लीके प्रभुत्वके लिए युद्धका नया दौर प्रारम्भ हो गया।

वह दौर लगभग एक सदीतक जारी रहा। उसकी कहानी मुग़ल साम्राज्यकी कहानीसे कम मनोरंजक नहीं, कई अंशोंमें तो वह अधिक मनोरंजक भी है और महत्त्वपूर्ण भी। वह इस योग्य है कि लेखक लोग उसपर अपनी लेखिनीकी बल-परीक्षा करें। यदि अवसर मिला तो लेखक उस कहानीको भी सुनानेका प्रयत्न करेगा। पाठक इसे लेखककी प्रतिज्ञा तो न समझें, परन्तु हाँ, लेखककी अभिलाषा है कि इतिहासके क्रमको जारी रखकर १८५७ तक पहुँचा दे।

४

जैसा मैंने पहले दो भागोंकी भूमिकामें लिखा था, अनेक सार्वजनिक और निजी धन्धोंमें फँसे रहनेके कारण मुझे भय था कि तीसरा भाग भी महाप्रभुओंकी तीसरी कृपासे ही लिखा जायगा। परन्तु, देशकी परिस्थितिने १९३२ के पीछे जेलकी एकान्त कोठरीमें बैठनेका अवसर न दिया। इधर पुस्तकके प्रकाशक श्री नाथूराम प्रेमीका तकाजा जारी था। प्रेमीजी जैसे परिश्रमी और सज्जन प्रकाशकका तकाजा कैसे टाला जा सकता है ? जब देखा कि पुस्तकको समाप्त करना आवश्यक है और कांग्रेसद्वारा सत्याग्रह जारी होनेमें अभी विलम्ब है, तब स्वयं ही अपने लिए जेलका निर्माण किया। कुछ समयके लिए अन्य कामोंसे थोड़ा-बहुत हाथ खींचकर पुस्तकपर विशेष ध्यान दिया जिसका परिणाम पाठकोंकी सेवामें समर्पित कर रहा हूँ।

५

अन्तमें मैं पाठकों और आलोचकोंसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। यह पुस्तक जो कुछ है वही समझकर पढ़नेसे इसे समझा जा सकेगा। न तो यह स्कूलकी पाठ्य पुस्तक है कि हरतरहकी ज्ञातव्य बातोंसे इसे ठसाठस भर दिया जाय और न यह इतिहासके प्रोफेसरकी डायरी है कि लेखकोंके नाम-धाम और पृष्ठसंख्यासे इसे भारी भरकम बनाया जाय। इस ग्रन्थका उद्देश्य इतिहासकी एक महत्त्वपूर्ण घटनाकी सहायतासे उन सिद्धान्तोंकी व्याख्या करना है जिनके अनुसार राज्य बनते और बिगड़ते हैं। किताब आम जनताके लिए लिखी गई है, इस कारण मैंने यत्न किया है कि इसकी भाषा सुबोध और सर्वसाधारणके योग्य हो। मैं समझता हूँ, जिस लक्ष्यसे यह पुस्तक लिखी गई है, उसकी पूर्तिमें मुझे सामान्यतः अच्छी सफलता प्राप्त हुई है, यद्यपि अभी उन्नतिकी बहुत गुंजायश है। पहले दो भागोंकी जो समालोचनायें हुई हैं और इन दो भागोंकी होंगी, उन सबका मैं स्वागत करता हूँ, क्यों कि, उन्हींसे मुझे यह मालूम हो सकता है कि उन्नतिका मार्ग किधर है?

२८ अगस्त १९३७

—इन्द्र

विषय-सूची

तृतीय भाग

चौथा भाग

मुग़ल साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण

१—साम्राज्यके कब्रिस्तानमें

हमने दुर्गादास राठौरको विद्रोही राजकुमार अकबरके साथ कोंकणमें ले जाकर छोड़ दिया था। मुग़ल शाहज़ादोंके भाग्योंमें यही बदा था। या तो वे सब विघ्न-बाधाओंपर विजय पाकर राजगद्दीपर जा बैठते, अन्यथा ऐसे हरिणकी भाँति जिसके पीछे शिकारीका घोड़ा सरपट भागा जा रहा हो, उन्हें भागना पड़ता था, और अन्तमें प्रायः अपमान और हत्याका शिकार बनना पड़ता था। अकबरमें वह स्नायु नहीं थे जो औरंगज़ेब जैसे चतुर लड़ाकेपर विजय प्राप्त कर सकते। वह उन अदूरदर्शी उम्मेदवारोंमेंसे था, जो विजयका पेशगी सुख उठानेमें आसक्त होकर विजयको हाथसे निकल जाने देते हैं। अजमेरमें जब औरंगज़ेब राजपूतोंको धोखा देकर शाहज़ादेसे विमुख कर रहा था, तब शाहज़ादा मदिरा और मोहिनीमें मदमस्त होकर अपने सर्वनाशके मार्गको निष्कंटक बना रहा था। भला ऐसे उम्मेदवारके राजगद्दीपर बैठनेकी क्या सम्भावना थी? यदि वीर दुर्गादासका अपनेपनको निभानेका आश्चर्यजनक दृढ़ निश्चय अकबरकी मददको न आता, तो वह शायद राजपूतानेके सीमा-

प्रान्तपर ही क्रोधभरे पिताके चुंगलमें फँस जाता, परन्तु राठौर तो बातपर मर मिटनेवाला था, शरणागतको निराश्रय कैसे छोड़ता ?

" यह समझ कर कि राजपूतानेमें राजकुमारको शाही कोपसे बचाना कठिन बल्कि असम्भव होगा, दुर्गादासने उसे दक्षिणमें राजा संभाजीके पास पहुँचा देनेका मनसूबा बाँधा, और वह केवल ५०० राठौर वीरोंको साथ लेकर इस दुष्कर कार्यके लिए राजपूतानेसे निकल पड़ा। औरंगज़ेबके हरकारे चारों ओर पहुँच गये थे। राजकुमारके लिए सब रास्ते बन्द थे। जिधर जाते, उधर ही सामने दुश्मन दिखाई देता, परन्तु दुर्गादासने साहस न छोड़ा। कई प्रान्तोंका चक्कर काटकर और कई नदियाँ पार करके लगभग दो महिनेकी दौड़-धूपके पीछे वह राजकुमारको कोंकणमें संभाजीके पास पहुँचा सका।"

—(मु० सा० क्ष० दूसरा भाग, १५ वाँ परिच्छेद)

महाराष्ट्र-राज्यके सीमा-प्रान्तपर संभाजीके कई बड़े राजकर्मचारियोंने शाह-ज़ादेका स्वागत किया। भारत-साम्राज्यकी गद्दीके उम्मेदवारके साथ उस समय ४०० घुड़सवार थे, जिनमेंसे अधिकांश राजपूत थे, कुछ थोड़ेसे पैदल थे, और ५० ऊँटोंपर सामान लदा हुआ था। पालीगढ़के नीचे एक फूसके छाये हुए बंगलेमें अकबरका डेरा जमाया गया। सम्भाजीकी ओरसे शाहज़ादेका यथोचित आदर-सत्कार किया गया।

परन्तु देरतक सम्भाजीसे अकबरकी मुलाक़ात न हो सकी। मुलाक़ातमें विलम्बके कारणको जाननेके लिए हमें कुछ समय पीछे जाना पड़ेगा। सम्भाजीका राज्यारोहण बड़े भूकम्पके साथ हुआ था। छोटे पैमानेपर मुग़ल बादशाहोंके राज्यारोहणका नाटक यहाँ भी खेला गया था। सम्भाजीका स्वभाव बहुत उग्र था। चिरकाल तक मुग़लोंका बन्दी रहकर उसने बहुत-सी बुरी बातें सीख ली थीं। उस समयके मराठे बहुत ही सादा कठोर जीवन व्यतीत करते थे। मुग़लोंकी नस-नसमें विलासिता भर गई थी। सम्भाजीने मुग़लोंके उप-निवेशमें विलासिताका पाठ पढ़ लिया था। जब वह शिवाजीकी मृत्युसे चार मास पहले मुग़लोंकी कैदसे छूट कर घर आया, तो महाराष्ट्रवासी उसकी आदतोंको पहिचान न सके। उसमें महाराष्ट्रपनका अभाव हो गया था। क्रोध और विषयासक्तिकी मात्रा उसमें बहुत बढ़ गई थी। शिवाजीके सरल संयमी जीवनके पुजारियोंको सम्भाजी म्लेच्छ प्रतीत होता था।

जब शिवाजीकी मृत्युका समाचार राष्ट्र-भरमें फैला तो स्वभावतः बहुतसे महा-राष्ट्र सरदारोंके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि सम्भाजीकी अपेक्षा अधिक संयमी राष्ट्रपति बनाया जा सके तो राष्ट्रका कल्याण होगा। सम्भाजीकी माता मर चुकी थी; दूसरी महारानी सोयराबाईने परिस्थितिसे लाभ उठाया, उसने बहुतसे मंत्रियोंको अपने पक्षमें कर लिया, और महाराजकी मृत्युके तीन दिन पीछे, रायगढ़में, अपने अठारह वर्षके युवक पुत्र राजारामको राजगद्दीपर बिठा दिया। सम्भाजीको जब यह समाचार मिला तो वह आगबबूला हो गया। उसके पक्षपातियोंकी कमी नहीं थी। उसके स्वभावमें उग्रताके साथ वीरता और उदारता भी मिली हुई थी। उसके साथी उससे डरते थे, परन्तु प्यार भी करते थे। उसने रायगढ़की घोषणाकी पर्वा न की और अपने आपको महाराज घोषित करके शीघ्र ही रायगढ़की ओर प्रयाण कर दिया।

पन्हालाका प्रसिद्ध किला रानीके सेनापतियोंके अधिकारमें था, परन्तु सैनिक लोग सम्भाजीके पक्षमें थे। सैनिकोंने किलेपर कब्ज़ा कर लिया और सम्भाजीके हाथोंमें दे दिया। सोयराबाईकी ओरसे सेनापति जनार्दनपन्त हनुमन्तेको सम्भाजीके रोकनेके लिए भेजा गया। जनार्दनपन्तने असाधारण सुस्ती और अयोग्यतासे अपना कार्य किया। वह आहिस्ता आहिस्ता पन्हालाके समीप आया, चारों ओरसे फौजका घेरा डाल दिया, और स्वयं कोल्हापुर जाकर विश्राम करने लगा। सम्भाजीको और क्या चाहिए था? उसे सुनहरा समय हाथ लगा। सेनापतिकी अनुपस्थितिमें युवराजको भेद-नीतिका प्रयोग करनेमें कोई कठिनाई न हुई। रानीके पक्षके सरदार और सिपाही निष्कण्टक मार्गसे पन्हालामें शरण पाने लगे। शीघ्र ही सम्भाजी पन्हालाके घेरेको तोड़कर बाहिर निकल आया और कोल्हापुर पहुँचकर आरामसे सोते हुए जनार्दनपन्तको बन्दी बनानेमें सफल हुआ। कामयाबी तो पंख लगाकर उड़ती है और पानीमें तेलकी तरह फैलती है। पन्हाला और कोल्हापुरके समाचारोंने रायगढ़में खलबली पैदा कर दी। महाराष्ट्रके सेनापति रानीका साथ छोड़कर सम्भाजीकी शरणमें जाने लगे। थोड़े ही समयमें रायगढ़के द्वार सम्भाजीके लिए खुल गये। रानीका अधिकार-स्वप्न मानो हवामें विलीन हो गया। युवराज महाराष्ट्रका निष्कंटक राजा बन गया।

उस समय सम्भाजीकी आत्मिक परीक्षा थी। जो मनुष्य सफलतामें दिमाग़को शान्त रख सकता है, वही बड़ीसे बड़ी आपत्तिका भी सामना कर सकता

है। सम्भाजी आत्मिक परीक्षामें उत्तीर्ण न हो सका। उसने अपने विरोधियोंसे बड़ा भीषण बदला लिया। पन्हालमें जो सेनापति गिरिफ्तार हुए थे, उनमेंसे बंकीको रायगढ़ किलेके बुर्जपरसे नीचे फेंक दिया गया। सूर्याजी कंकको वहीं फाँसीपर चढ़ा दिया गया। मोरो पिंगले पेशवा और अन्नाजी दत्तो पन्त-सचिव गिरिफ्तार कर लिये गये, और उनके घर खाकमें मिला दिये गये। सम्भाजीका यहाँतकका व्यवहार राजनीतिक व्यवहार-शास्त्रमें शायद क्षन्तव्य समझा जा सके, परन्तु इसके आगे उसने जो कुछ किया, वह किसी प्रकार भी उचित नहीं था। गुस्सेकी झोंकमें वह रानी सोयराबाईके अन्तःपुरमें घुस गया, और सबके सामने उसे बहुत भला-बुरा कहा। दण्डके रूपमें सम्भाजीने घरकी एक दीवारमें रानीको चुनवा दिया, केवल मुँह खुला रक्खा, और दूध पीनेको दिया। तीन रोज़ बेचारी सोयराबाई सिसकती रही, और किसी तरह दुखी प्राणोंको धारण किये रही। तीन दिनके पीछे उस अभागीकी यातनाका अन्त हुआ। जिस अग्निने उसके शवका दाह किया, वह अन्तिम यातनाओंसे कहीं अधिक शीतल थी। रानीके दो सौ सहायकोंको मृत्यु-दण्ड दिया गया। राजारामपर सम्भाजीने दया दिखाई। शायद भ्रातृ-प्रेम जाग उठा हो। उसे दूसरोंके हाथकी कठपुतली समझकर नज़रबन्द कर दिया

इस प्रकार विरोधके भूकम्पोंसे गुजरकर १६८१ के फरवरी मासमें सम्भाजी राजगद्दीपर आसीन हुआ।

विरोधी दल राख हो गया, परन्तु राखमें गर्मी शेष थी। वह सम्भाजीको डरानेके लिए पर्याप्त थी। जब शाहज़ादा अकबर राजाका मेहमान बना; तब अन्नाजी दत्तोने जेलमेंसे ही उसे सन्देश भिजवाया कि यदि शाहज़ादा सम्भाजीको गिरिफ्तार कर सके तो दक्षिणकी गद्दी उसे प्राप्त हो सकेगी। अकबर ऐसे दम-झाँसेमें आकर बरबाद होनेवाला नहीं था। उसने इस कुमंत्रणाका भेद सम्भाजीको बतला दिया तब जाकर कहीं सम्भाजीके चित्तमें शाहज़ादेके प्रति विश्वास पैदा हुआ और उसने मुग़ल राजकुमारसे मिलकर बातचीत करनेका निश्चय किया। अन्नाजी दत्तो और उसके साथियोंको यमलोक पहुँचा कर सम्भाजी सितम्बरके महीनेमें पालीमें जाकर शाहज़ादेसे मिला।

यह समाचार जब दिल्लीपतिके पास पहुँचा, तो उसका आसन काँप गया।

इधर इसी बीचमें एक और घटना हो गई थी जिससे औरंगज़ेबका क्रोध अधिक भड़क उठा था। १६८१ के जनवरी मासमें बीस हज़ार मराठा सिपाही

खानदेशमें घुस गये, और धरमपुरको लूटनेके पश्चात् बुरहानपुर पहुँच गये। वह शहर उस समय खानदेशका एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। मुग़ल-सेनापति ख़ाने-ए-जहानको स्वप्नमें भी ख़याल न था कि मराठा घुड़सवार इतनी दूर आकाशसे बरस पड़ेंगे। नगरकी रक्षाके लिए उस समय केवल २५० सिपाहियोंकी गारद उपस्थित थी। मराठा घुड़सवार-सेना बिना किसी विरोधके शहरमें घुस गई। तीन दिन तक शहरको खूब लूटा गया। लाखोंका माल हाथ आया। माल इतना अधिक था कि मराठे सिपाही सोना, चाँदी और जवाहिरातको छोड़कर और कोई चीज़ साथ न ले गये। तीन दिनके पीछे जब वह बुरहानपुरको छोड़कर गये, तो बाज़ार बिखरे हुए क़ीमती बर्तनों, कपड़ों और अन्य सब तरहके सामानसे भरा पड़ा था।

ख़ान-ए-जहानको खबर लगी, परन्तु बहुत देरसे। जब वह बुरहानपुरकी ओरको रवाना हुआ तो मराठा सिपाही सिल्हेरके क़िलेके पास पहुच चुके थे।

दक्षिणके निवासियोंमें उस घटनासे त्रास और अविश्वास फैल गया। मुग़ल-सेनापतिपर यह सन्देह होने लगा कि वह मराठोंसे रिश्वत लेता है। बुरहानपुरके निवासियोंने बादशाहके पास इस अभिप्रायकी दर्ख्वास्त भेजी कि यदि हमारे जान और मालकी रक्षाका उचित प्रबन्ध न किया गया, तो हम शुक्रवारकी प्रार्थनामें बादशाहका नाम लेना छोड़ देंगे।

बुरहानपुरकी लूट और अकबरके दक्षिण पहुँच जानेके समाचारोंने औरंगज़ेबको विचलित कर दिया। अपने पिताको ग्रसनेके लिए राहुकी तरह औरंगज़ेब जिस दक्षिणसे आया था, शाहज़ादा अकबरका उसी दक्षिणमें पहुँच जाना उसे अपने लिए बहुत ही अनिष्ट प्रतीत होने लगा। उसका अपराधी हृदय काँप उठा। इसी समय भाग्यचक्रसे मुग़ल-राजपूत युद्ध समाप्त हो गया। सम्भवतः दक्षिणकी बिगड़ती हुई परिस्थितिने ही औरंगज़ेबको राजपूतोंसे सुलह करनेके लिए तैयार किया हो। औरंगज़ेबने राजपूतोंसे समान-सन्धि करके उत्तरीय भारतसे छुट्टी ली, और नवम्बर मास समाप्त होनेसे पहले ही वह बुरहानपुर पहुँच गया। इस प्रकार दक्षिणकी मृगतृष्णा आलमगीर बादशाहको राजधानीसे बहुत दूर, मुग़ल-सामाज्यकी किश्तीको सह्याद्रिकी चट्टानसे टकरानेके लिए, खेंच लाई। बादशाह दक्षिणकी दलदलमें ऐसा फँसा कि फिर पाँव न निकाल सका। दक्षिण उसका ही नहीं, साम्राज्यके गौरवका भी कब्रिस्तान साबित हुआ।

२—दो राज्योंका अन्त

औरंगज़ेब दक्षिणमें इस संकल्पसे गया था कि वह पैरमें चुभनेवाले काँटेको एक ही बार जड़से उखाड़ देगा। मराठोंकी बढ़ती हुई शक्तिसे वह झुँझला उठा था। दक्षिणमें उस समय तीन बड़ी शक्तियाँ थीं। मराठा रियासतके अतिरिक्त बीजापुर और गोलकुण्डाकी रियासतें भी स्वाधीन थीं। कई पीढ़ियोंसे मुग़ल बादशाह इन दोनों मुसलमानी रियासतोंका अन्त करनेका यत्न कर रहे थे, परन्तु सफलता नहीं प्राप्त कर सके। मराठा राज्यकी वृद्धि इन रियासतोंके सिरपर ही हो रही थी। बीजापुर और गोलकुण्डाको शिवाजीने खूब चूसा और खूब खाया। वह रियासतें मराठा-शक्तिकी खुराक थीं। औरंगज़ेबने मराठा-शक्तिको नष्ट करनेके लिए पहले उसकी खुराकको नष्ट करना ही आवश्यक समझा। उसने बीजापुर और गोलकुण्डाको हमेशाके लिए साम्राज्यमें मिला लेनेका दृढ़ निश्चय करके पहले बीजापुरपर धावेका हुक्म दे दिया।

बीजापुरकी ओरसे इस आफतको टालनेके अनेक यत्न किये गये। मुग़ल शाहजादा आज़मसे बीजापुरी राजकुमारी शहरबानूकी शादी हुई थी। शहरबानूने अपना सारा असर बीजापुरकी रक्षाके लिए लगानेका यत्न किया। बीजापुरका एक दूत-मण्डल भी १३ मई १६८२ को बादशाहकी सेवामें उपस्थित हुआ था, परन्तु उसने जो उपहार भेंट किये, वह अस्वीकार किये गये। औरंगज़ेबको विश्वास हो गया था कि बीजापुरकी ओरसे मराठा-राज्यको मदद दी जाती है। १६८३ के अन्तमें औरंगज़ेबने बीजापुरके आक्रमणकी बागडोर सेनापतियोंके हाथसे लेकर अपने हाथमें सँभाली, और ज़ोरसे काम शुरू हुआ।

लगभग तीन वर्ष तक मुग़लोंकी सम्पूर्ण शक्तिका संग्राम बीजापुरसे जारी रहा। मुग़ल सेनाओंने बीजापुरका घेरा डाल दिया, और मोर्चे जमाकर सब रास्ते रोक दिये। बीजापुरके लड़ाके बहुत देरतक लड़े, खूब बहादुरीसे लड़े, परन्तु जब दुश्मनकी मददको भूख आगई, तब उन्हें हार माननी पड़ी। १२ सितम्बर १६८६ के दिन आदिलशाही वंशके अन्तिम बादशाहको गद्दी छोड़नी पड़ी। नगरनिवासी शक्ति-भर लड़कर भूखसे पराजित हो चुके थे। सिकन्दर-शाह दिनके एक बजे राव दलपत बुन्देलाकी देख-रेखमें औरंगज़ेबके दरबारमें पहुँचाया गया। उस समय मुग़ल-कैम्पमें खुशीकी शहनाई बजाई गई और

औरंगज़ेबने पराजित शत्रुके साथ आदरका व्यवहार किया। उसे दाहिने हाथ बिठाया, जड़ाऊ तलवार और बेशकीमती पोशाक बख्शिशमें दी और मुग़ल सरदारोंमें नाम लिखा गया। यह सब नाटक कुछ दिनों तक जारी रहा जिसके पीछे पराजित बादशाह सिकन्दर शाहको लक्ष्मीकी असली फटकारका मज़ा चखना पड़ा। लक्ष्मीका स्वभाव है कि जिसपर फटकार बरसाती है, उसे गढ़ेमें डाले बिना नहीं छोड़ती। हिंदोलमें झुलाती भी खूब है, तो पाँवतले रौंधती भी खूब है। बीचमें नहीं टिकने देती। कुछ समय पीछे सिकन्दरशाहको दौलताबादके किलेमें कैद कर दिया गया और अगर मनूचीकी गवाहीको सच मानें तो औरंगज़ेबने उसे ज़हर दिलाकर मरवा डाला।

किसी दिन बीजापुर दक्षिणका चमका हुआ मोती था, उसकी शानपर विदेशी यात्री लट्टू होते थे। मुग़लोंने उसे जीतकर उजाड़ कर दिया। उस दिनसे आज तक बीजापुर एक खण्डरातका ढेर बना हुआ है। यदि कोई संसारकी शान शौकतकी अस्थिरताका अनुभव करना चाहे तो वह आदिलशाही हुकूमतके इस उजड़े हुए खण्डहरको देखकर कर सकता है।

यह औरंगज़ेबका दक्षिण-विजयकी ओर पहला क़दम था। बीजापुरकी रियासत गोलकुण्डाके लिए ढालका काम देती थी। ढालके टूट जानेपर मुग़लकी तलवार गोलकुण्डाके सिरपर तन गई। गोलकुण्डाकी राजधानी हैद्राबादमें लुभानेवाली चीज़ें भी बहुत थीं। वह तो एक प्रकारकी कामपुरी बन गई थी। उस शहरमें बीस हज़ार वेश्यायें थीं, और अनगिनत शराब-घर थे। विलासिताका ऐसा भीषण नृत्य अवधके अन्तिम दिनोंको छोड़कर शायद ही कभी दिखाई दिया हो। अद्भुत यही था कि गोलकुण्डाके शासक ऐसी ऐय्याशीमें रहकर इतने दिनोंतक जीते कैसे रहे। सम्पूर्ण शासन गन्दा और निर्बल हो चुका था।

१६७२ में अबुल हसन गोलकुण्डाकी गद्दीपर बैठा। वह इस गद्दीके योग्य नहीं था। उसकी शिक्षा और दीक्षा शासकके अनुरूप नहीं थी। केवल भाग्य उसे सिंहासनपर खेंच लाया था। भाग्यने ही उसे ब्राह्मण मन्त्री भी दिया। उसका नाम मदन्ना था। वह एक निर्धन ब्राह्मण-घरमें पैदा हुआ था। वह और उसका भाई अकन्ना गोलकुण्डामें आकर नौकर हुए। अपनी धूर्तता और योग्यतासे मदन्नाने खूब उन्नति की, यहाँ तक कि दरबारमें अपने संरक्षक सय्यद मुज़फ्फरकी छातीपर पाँव रखकर वह अबुल हसनका प्रधान-वज़ीर बन गया। मदन्नाकी

नीति यह थी कि बीजापुर और मराठा-राज्यको भेंट-पूजाद्वारा प्रसन्न रखकर सहायक बनाये रखना, और अबुल हसनको विलासितामें डालकर मुट्ठीमें किये रखना। कुछ समयतक तो यह नीति काम देती रही, परन्तु अधिक देर तक चला टल न सकी। गोलकुण्डासे जो कर दिल्ली भेजा जाता था, वह रुक रहा था। कई मुग़ल जागीरें गोलकुण्डाके हाथके नीचे दब रही थीं, और सबसे बड़ा अनर्थ यह था कि मदन्ना ब्राह्मण था। मुसलमान-शासकका वज़ीर हिन्दू हो, यह औरंगज़ेब कैसे बर्दाश्त कर सकता था? उसे तो बहाना ही चाहिए था। १६८५ में मुग़ल-सेना गोलकुण्डापर चढ़ गई। अधिक युद्धकी आवश्यकता न पड़ी। शीघ्र ही हैद्राबादपर मुग़लोंका कब्ज़ा हो गया, परन्तु शाहज़ादा शाह आलमने बीचमें पड़कर कुतुबशाहको बचानेका यत्न किया। सुलहकी शर्तें तय हो रही थीं। इसी बीचमें ब्राह्मण वज़ीरके विरुद्ध राजधानीमें ज़बर्दस्त आन्दोलन पैदा हो गया। मुसलमान उमरा तो वैसे ही उससे जले हुए थे, मदन्नाका अधिकार और साथ ही जीवन बहुत ही कमज़ोर तागेपर टँगा हुआ था। वह तागा था बादशाहकी प्रसन्नता और शक्तिका। पराजयके समयमें बादशाहमें शक्ति न रही—इसलिए प्रसन्नताका कोई चिह्न भी न रहा। तागेके टूटते ही मदन्ना धड़ामसे गिर पड़ा। मदन्ना अपने मालिकसे मिलकर पालकीमें लौट रहा था कि दुश्मनोंने उसे और उसके भाई अकन्नाको पकड़ लिया, और वहीं मार डाला। उसका भतीजा सामराव, जो सिपाही होनेके अतिरिक्त विद्वान् भी था, अपने घरमें छुरेके घाट उतार दिया गया। ब्राह्मण वज़ीरके घरको लूटकर वह भड़का हुआ मुसलमान-समुदाय शहरके हिन्दू निवासियोंपर टूट पड़ा, और बहुतसे ब्राह्मण जानसे मारे गये, शेष लुट गये। आलमगीर बादशाहका कोप काफ़िरोंके कत्लसे शान्त हो गया और गोलकुण्डाकी रियासतको साँस लेनेका अवसर मिल गया।

परन्तु उस अशान्त रूहको चैन कहाँ। १६८६ के अन्तमें बीजापुरके मुग़ल सल्तनतमें शामिल हो जानेपर औरंगज़ेब यह मनसूबा बाँधकर घोड़ेपर सवार हुआ कि अब गोलकुण्डाकी स्वाधीन सत्ताको नष्ट कर देना है। बेचारे अबुल हसनको जब मालूम हुआ कि तूफ़ान आ रहा है तो वह घबरा गया और उसने मुग़ल-सम्राट्के पास दीनताके सन्देश भेजे, परन्तु उधर तो कुतुबशाही हुकूमतके दफ़ना देनेकी प्रतिज्ञा हो चुकी थी,—कोरा जवाब मिला। १६८७ के जनवरी मासमें मुग़लोंने गोलकुण्डाके किलेको घेर लिया। अबुल हसनने भी और कोई चारा न

देखकर जी तोड़कर आत्म-रक्षाकी ठानी, और वह किलेकी रक्षामें सन्नद्ध हो गया। लगभग १० मास तक गोलकुण्डाकी दीवारोंपर लड़ाई जारी रही। किलेवालोंने बड़ी सावधानता, वीरता और दूरदर्शितासे अपनी रक्षा की। स्वयं औरंगज़ेब आक्रमणका संचालन कर रहा था। तो भी मुग़ल-सेनाओंका सिर किलेकी दीवारोंसे टकराकर रह जाता था। आगे बढ़नेका रास्ता नहीं मिलता था।

गोलकुण्डाकी देरतक रक्षामें तीन सहायक हुए। प्रथम, रक्षकोंकी मुस्तैदी, दूसरा, औरंगज़ेबका अविश्वासी स्वभाव, और तीसरा दैवी प्रकोप। रक्षकोंमें विशेष स्मरणीय तो एक कुत्ता भी था, जिसने रातके समय छापा मारनेकी इच्छासे शहर-पनाहपर चढ़ते हुए मुग़ल-सेनापतियोंकी आहट पाकर भूँक दिया। रक्षक सेना जाग गई, शत्रुओंको दीवारसे धकेल दिया गया, और कुछ समयके लिए गोलकुण्डा बच गया। अबुल हसनने प्रसन्न होकर उस कुत्तेके गलेमें मोतियोंसे जड़ा हुआ पट्टा डलवाया, उसमें एक सोनेकी ज़ंजीर लगवाई, और शरीरकी रक्षाके लिए सुनहरी कामवाली गद्दी बनवाकर दी। कुत्तेको 'सेह-तबका' अर्थात् 'तीन उपाधियोंवाला'का सम्मानसूचक पद भी दिया गया। मुग़ल-सेनाके सेनापति फीरोज जंगकी तीन उपाधियाँ थीं—खान, बहादुर, और जंग। उसे 'सेह-तबका' कहते थे। अबुल हसनने कुत्तेको सेह-तबका बना दिया।

औरंगज़ेबके अविश्वासी स्वभावने भी गोलकुण्डाकी रक्षामें काफी हिस्सा लिया। वह सबपर अविश्वास करता था। जो उसके जितना समीप था, उसपर उसे उतना ही अधिक अविश्वास था। लड़कोंकी शकल देखकर तो मानो उसे पिताकी वदनसीबी याद आ जाती थी। इस समय शाह आलम ४० वर्षका हो चुका था। वह युवराज होनेके अतिरिक्त सल्तनतका एक प्रधान सेनापति भी था। एक वर्ष पूर्व गोलकुण्डाकी जीतका सेहरा उसीके सिरपर बाँधा गया था। इस आक्रमणमें भी वह आगे था, परन्तु वह कुछ नर्म स्वभाववाला आदमी था। गोलकुण्डाकी रियासतके सर्वनाशको सर्वसाधारण मुसलमान पसन्द नहीं करते थे। एक मुसल्मानद्वारा मुसल्मान-रियासतका नाश उन्हें बुरा प्रतीत होता था। परन्तु औरंगज़ेब इस समय पत्थर हो रहा था। उसका मन गोलकुण्डा-विजयपर तुला हुआ था। जिसने इसके विरुद्ध सलाह दी वही ओहदेसे गिरा दिया गया। शाह आलमकी सहानुभूति भी अबुल हसनके साथ थी। वह उसका पराजय

तो चाहता था, परन्तु सर्वनाश नहीं। अबुल हसन और शाह आलममें सुलहके सम्बधमें कुछ पत्र-व्यवहार भी हो रहा था।

शाह आलमके घरमें फूटका राज्य था। बेगम नूरुन्निसा उन दिनों शाहज़ादेकी स्वामिनी हो रही थी। शेष बेगमें सौतिया डाहसे जल रही थीं। उनका क्षोभ इस रूपमें प्रकट हुआ कि शाह आलमके विरोधियोंको सुलहसम्बन्धी पत्रव्यवहारका पता चल गया। सेनापति फीरोज़ जंगने बादशाहके सामने कुछ ऐसे पत्र पेश किये जिनसे शाह आलम और अबुल हसनकी परस्पर सन्धि-सम्बन्धी बातचीतका पता चलता था। औरंगज़ेबके हृदयमें अविश्वास और क्रोधकी आग भड़कानेके लिए इतना पर्याप्त था। शाहज़ादेकी रक्षक सेना आक्रमणके लिए आगे भेज दी गई, शाहज़ादेके तम्बूको बादशाहके सिपाहियोंने घेर लिया, शाह आलम और उसके चारों लड़के शाही दरबारमें सलाहके बहानेसे बुला लिये गये। उन्हें वहीं गिरिफ्तार कर लिया गया। शेष सारा परिवार भी हिरासतमें ले लिया गया, सारी जायदाद ज़ब्त कर ली गई, फौजें अन्य सेनापतियोंमें बाँट दी गईं, और शाह आलमको सख्त क़ैदमें डाल दिया गया। सात वर्षतक अभागा शाह आलम औरंगज़ेबका बेटा होनेका मज़ा भोगता रहा। उसे क़ैदमें बाल कटाने या नाखून उतरवानेकी भी आज्ञा नहीं थी, न उसे स्वादु भोजन मिल सकता था, और न ठंडा पानी या सुन्दर कपड़े दिये जा सकते थे। उसके साथ चोर-डाकुओंका-सा सलूक किया जाता था।

कहते हैं कि शाह आलमको सज़ा देकर औरंगज़ेबको बड़ा दुःख हुआ, वह भागकर अन्तःपुरमें पहुँचा और अपनी बेगम औरंगाबादीके महलके पास बैठकर देरतक घुटनोंको हाथोंसे धुनता और चिल्लाता रहा कि 'हाय, मैंने ४० सालमें जो महल खड़ा किया था, वह अपने हाथोंसे ढा दिया।'

कुतुबशाही वंश शीया सिद्धान्तोंका अनुयायी था। स्वभावतः शीया लोगोंकी सहानुभूति गोलकुण्डाके साथ थी। वह शीया राज-वंशका सर्वनाश नहीं चाहते थे। औरंगजेबकी सेनामें भी बहुतसे शीया थे। औरंगज़ेबका सन्देही हृदय रात-दिन चिन्तित रहता था। उसे यह शंका बनी रहती थी कि शीया सेनापति कहीं धोखा न दे जायँ। सादुल्लाखाँ शीया था, वह एक वीर योद्धा था, परन्तु शीया-पनका अपराधी होनेसे तब तक युद्धकी अगली श्रेणीमें न बुलाया गया, जबतक औरंगज़ेबको अपनी विजयमें सन्देह न हुआ। सफशिकनखाँ मुग़ल-सेनाका 'मीर-ए-आतिश' (तोपखानेका बड़ा अफसर) था। उसे भी जब मालूम

हुआ कि बादशाहका रुख बदला हुआ है तो वह अलग हो गया, जिसपर उसे कैदमें डाल दिया गया। जब गोलकुण्डाका लेना असम्भव प्रतीत होने लगा तब औरंगजेबने उसे कैदसे निकाल कर फिरसे तोपखानेका अध्यक्ष बनाया। अभिप्राय यह कि औरंगजेबके अविश्वासी हृदयने शीया लोगोंपर सन्देह करके अन्तरात्मासे शत्रुका सहायक बना दिया।

इन कारणोंसे घेरा बहुत लम्बा हो गया। मुग़ल-सेनाके आक्रमणोंका किलेसे करारा जवाब मिलता रहा। इसी बीचमें शाही सेनाओंको दुर्भिक्षने आ दबाया। सिपाहियोंके लिए अन्न न रहा और पशुओंके लिए चारेका अभाव हो गया। शाही खजानेसे सोना बरसाया गया, तो भी अनाजकी कमी कैसे पूरी हो। गेहूँ दाल और चावलके गुदाम खाली हो गये। भूखे सिपाहियों और पशुओंकी लाशें घरोंमें, नादियोंमें और मैदानोंमें भरने लगीं। कैम्पके चारों ओर रात-भरमें इतने मुर्दे इकट्ठे हो जाते कि प्रातःकाल मेहतरोंके लिए उन्हें उठाकर फेंकना दुश्वार हो गया।

परिणाम यह हुआ कि मुगल सिपाही भागने लगे, या गोलकुण्डाकी दीवारोंके अन्दर शरण पाने लगे। बाहिरसे मददके लिए कुमुक बुलाई गई, परन्तु उससे अन्नकी कमी और अधिक भयंकर हो गई। औरंगजेबने इन आपत्तियोंका सामना अपने ही ढंगपर किया। अनाज इकट्ठा करनेका यत्न तो जारी ही रहा, किलेके चारों ओर एक नई दीवार बना दी ताकि अन्दरवालोंको कोई रसद न पहुँच सके। साथ ही खुदाको खुश करनेके लिए हैद्राबादमें कठोर आज्ञा दी गई कि हिन्दुओंके सब त्योहार या रस्म-रिवाज बन्द कर दिये जायँ, और इस्लामकी कठोर आज्ञाओंके विरुद्ध अबुल हसनके शासनमें जो जो कार्य होते थे सबको बलपूर्वक दबा दिया जाय।

जो काम बहादुरी न कर सकी, वह द्रोहने कर दिखाया। गोलकुण्डाकी सेनामें एक पठान सेनापति था जिसका नाम सरदार खाँ था। वह मुग़लोंसे मिल गया। २१ सितम्बरको, जब कि लगभग महीनों तक औरंगजेब किलेको लेनेकी व्यर्थ चेष्टा करके थक चुका था, स्वामीके द्रोही सरदार खाँने प्रातःकाल तीन बजेके अन्धेरेमें किलेका एक दरवाजा खोल दिया जिसमें होकर शाहज़ादा आज़मके सेनापतित्वमें मुगल-सेना किलेमें घुस आई। मुगलोंके रण-वाद्यने आकाशमें गूँजकर अबुल हसनके अन्तःपुरमें यह समाचार पहुँचा दिया कि जो कार्य बहादुरीसे न हो सका वह स्वामिद्रोहने कर दिया।

प्रकाश और अन्धकार साथ ही साथ रहते हैं। यदि प्रकाश न हो तो संसार अन्धकारकी कालिमाका अनुभव ही कैसे करे ? यह प्रकृतिका चमत्कार है कि सरदार खाँके स्वामि-द्रोहका जवाब उसी किलेसे निकल आया। विजयी मुगल टिड्डी दलकी तरह गोलकुण्डाके किलेमें घुसे चले आ रहे थे, और खेल एक प्रकारसे समाप्त हो चुका था कि एक स्वामिभक्त सरदारका खून उबल पड़ा। उसने स्वामिभक्ति और आत्म-सम्मानका मूल्य जीवनसे कहीं अधिक समझा। उस वीरका नाम मुस्तफ़ा खाँ था। औरंगजेबकी ओरसे उसे कई बार प्रलोभन दिया गया। परन्तु वह घृणापूर्वक उसे ठुकराता रहा। उसने जब द्रोहीकी करतूतसे स्वामीका नाश होते देखा तो केवल तलवारको अक्षौहिणी सेनाकी तरह साथ लेकर शत्रुओंपर टूट पड़ा। खड्गसे शत्रुओंका संहार करता जाता था और आगे बढ़ता जाता था। शत्रुओंने भी उसे अपने हथियारोंका केन्द्र बनाया। उसकी एक आँखपर चोट लगी, माथा लहू लुहान हो गया, सिरका टुकड़ा कटकर आँखोंपर लटक गया, शरीर आघातोंसे छलनी हो गया परन्तु बहादुरका घोड़ा शत्रुकी सेनामें घुसता ही चला गया। उस समय सधे हुए घोड़ेने भी सवारका खूब ही साथ दिया। तबतक निभाया जबतक मुस्तफ़ा खाँ शत्रुओंकी चोटसे बाहिर न चला गया। भीड़मेंसे निकलकर घोड़ा एक बागमें पहुँचा, और वहाँ एक नारियलके पेड़के नीचे घायल वीरको डालकर स्वयं बच निकला। जब मुस्तफ़ा खाँको मुगल सिपाहियोंने बेहोशीकी हालतमें उठाया तो उसके शरीरपर छह बड़े बड़े घाव थे। यदि संसारमें केवल सरदार खाँ होते और मुस्तफ़ा खाँ न होते तो यहाँ किसी भले मानुसके रहनेका स्थान ही न होता। यह जगत् अन्धकारमय हो जाता। सरदार खाँकी लगाई हुई कालिमाको मुस्तफ़ा खाँ जैसे सच्चे वीरोंका प्रकाश ही धो सकता है।

अबुल हसन अपने दरबारमें ही गिरिफ्तार हुआ। वह विजेताओंकी प्रतीक्षा कर रहा था। कहते हैं कि जिस शान्ति और गम्भीरताका परिचय उसने इस समय दिया, राज्य-कालमें उसका शतांश भी नहीं दिया था। पराजयको उसने बड़े दार्शनिक सन्तोषसे सहन किया। जब औरंगजेबके सामने ले जाकर अबुल हसनको खड़ा किया गया, तो बादशाहने पूछा कि 'क्या हाल है ?' अबुलहसनने बड़ी लापरवाहीसे जवाब दिया कि 'मैं न सुखी हूँ और न दुःखी। मैं तो केवल पर्देके पीछे छुपी हुई खुदाकी अद्भुत मायाको देख रहा हूँ।'

संभाजी

३—मराठाशाहीपर भयंकर आघात

जो सिपाही शत्रुके संकटसे लाभ उठाना नहीं जानता, वह विजयी नहीं हो सकता। यदि शिवाजी जीवित होते तो औरंगजेबके दक्षिणी युद्धोंसे बहुत लाभ उठाते। या तो वह दक्षिणी रियासतोंकी मदद करके औरंगजेबको नीचा दिखा देते और या उन रियासतोंके सर करनेमें मुग़ल बादशाहकी मदद करके कुछ नये प्रदेशपर अधिकार पा लेते। दूरदर्शी योद्धा कभी पड़ोसीके नाशको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। परन्तु सम्भाजीमें दूरदर्शिताका अभाव था। उसके कार्य विवेकपर नहीं, केवल भावुकतापर अवलम्बित होते थे। उसकी तो मरुस्थलके अन्धड़की-सी तबीयत थी। कभी जोशका तूफ़ान, तो कभी प्रमादकी नींद। महीनों तक वह मदिरा और मोहिनीके जालमें ऐसा फँसा रहता कि राजपाटकी कुछ चिन्ता न रहती। मराठा सरदार चेतावनी देते तो उन्हें सजा मिलती थी। अकस्मात् मोहकी निद्रा टूटती, तो सेना तैयार करके शत्रुपर आक्रमण जारी हो जाते। जिधर सम्भाजी जा पड़ता, उधर ही शत्रुको परास्त कर देता, मराठा सेनाओंकी विजयदुन्दुभि बजने लगती, परन्तु उस विजयसे कोई लाभ उठानेसे पूर्व ही प्रमाद फिर आ घेरता और हाथमें आई हुई विजयश्री पंख फटकार कर उड़ जाती।

भिन्न मानसिक दशाओंके लिए सम्भाजीके सलाहकार भिन्न भिन्न ही थे। उत्साहके समयके सलाहकार वह पुराने परीक्षित सेनापति या मन्त्री थे जिन्होंने शिवाजीके नेतृत्वमें सेना और राज्यका संचालन सीखा था। जब सम्भाजी तलवारको म्यानसे निकाल कर घोड़ेपर सवार हो जाता था तो उन विजयका स्वाद चखे हुए वीरोंकी श्रेणी उसके साथ हो जाती थी। जिधर मराठोंके घोड़ोंके मुँह मुड़ जाते थे, उधर ही सफलता हाथ बाँधकर खड़ी हो जाती थी, परन्तु ज्यों ही सम्भाजी-पर प्रमादका अधिकार जमने लगता, कवि कुलेश जैसे सलाहकार हावी हो जाते और उसे गिरावटके गढ़ेमें नीचेसे नीचे घसीटनेका यत्न करते। यही कारण है कि वीर होते हुए भी सम्भाजी न तो बने हुए राज्यको सँभाल सका, और न उसकी सीमाओंको आगे बढ़ा सका। औरंगजेब बीजापुर और गोल-कुण्डाको बरबाद करता रहा, और छत्रपति शिवाजीका पुत्र मुँह ताकता रहा। दो-चार मराठा घुड़सवारोंने मुग़ल सेनाओंको सतानेका उद्योग किया परन्तु

अधूरा। उन्होंने मारनेको हाथ तो उठाया, पर मारा नहीं, जो कि मारनेका उद्योग न करनेसे कहीं बुरा था।

बीजापुर और गोलकुण्डेपर पूरा अधिकार जमा कर औरंगज़ेब मराठा राज्यका समूल नाश करनेके लिए तैयार हो गया, परन्तु सम्भाजी तब भी सचेत न हुआ। जब औरंगजेब एक राज्यके पीछे दूसरे राज्यपर विजय पाता हुआ आगे बढ़ रहा था तब सम्भाजी अपने सलाहकार कवि कुलेश (कलुषा या कलश) की देख-रेखमें संगमेश्वरके महलोंमें काम-कलाके क्रियात्मक पाठ पढ़ रहा था। संगमेश्वरका स्थान महाराष्ट्रके अभेद्य दुर्गोंसे बहुत दूर, अलकनन्दा और वरुणा नामकी नदियोंके संगमपर सुन्दर जंगलोंसे घिरा हुआ था। वहाँ कुलेशने प्रमोद-भवन, और उपवन बनाकर मराठा राज्यके गौरवकी चिता तैयार कर दी थी। अभी औरंगज़ेबको लड़नेकी फ़ुर्सत नहीं है, ऐसा विश्वास करके चौमासेके दिन व्यतीत करनेके लिए सम्भाजी संगमेश्वरमें चला गया। वहाँ कुलेशके प्रयत्नसे नित नई शराब और सुन्दरसे सुन्दर कामिनी जुटाई जाने लगी। सम्भाजी विलासिताके जलमें सिर तक डूब गया। चौमासा गुजर गया। कातिक आया और चला गया। माघका महीना आ पहुँचा, पर सम्भाजीको आमोद-प्रमोदसे छुट्टी न मिली। वह उसी अरक्षित स्थानपर पड़ा रहा।

औरंगजेब तो सावधानता और पुरुषार्थका मूर्तिमान् रूप था। उसकी दृष्टि तो देशके अन्धेरेसे अन्धेरे कोनेमें भी पहुँचती थी। बीजापुर और गोलकुण्डासे निबटकर उसने अपनी सारी शक्ति मराठा सल्तनतके नाशकी ओर झुका दी। गोलकुण्डाके बुरे दिनोंमें जिन अफसरोंने अपने स्वामीको छोड़कर औरंगजेबकी सेवा कर ली थी, उनमेंसे एक शेख निज़ाम हैद्राबादी भी था। वह साहसी और वीर था। उसे सेनापतिका पद देकर सम्राटने पन्हालाके किलेपर कब्ज़ा करनेके लिए नियुक्त किया था। कोल्हापुरमें उसे सम्भाजीकी काम-लीलाओंका पता चला। दक्षिणकी भयंकर शक्तिको जड़से उखाड़नेका अवसर ताककर शेख निज़ामने थोड़ेसे साहसी वीर घुड़सवारोंको साथ लेकर जंगलके रास्तेसे संगमेश्वरपर चढ़ाई कर दी। उसके घुड़सवार रात और दिनकी यात्रा करके अकस्मात् संगमेश्वरकी सीमाओंपर पहुँच गये। जिस समय मुग़ल घुड़सवार मृत्युका सन्देश लिये हुए सम्भाजीकी ओर बढ़ते आ रहे थे, उस समय शिवाजीका वह अयोग्य उत्तराधिकारी एक मराठा सरदारकी नवविवाहिता सुन्दरीपर रास्तेमें डाका डालकर

अपनी प्रजाको शत्रु बना रहा था। इस समय कवि कुलेश सम्भाजीका सबसे बड़ा मित्र और मन्त्री बना था। वह उत्तरीय भारतका रहनेवाला था, इस कारण दाक्षिणी सरदारोंके हृदयमें असन्तोषकी ज्वाला जल रही थी। सम्भाजीका दरबार और घर उसके शत्रुओंसे भरा पड़ा था। उसपर यह प्रमाद ! नाशमें क्या कसर थी ?

२८ दिसम्बरके दिन शेख निज़ामीके अग्रगामी घुड़सवार संगमेश्वरकी सीमाओंपर दिखाई दिये। पहरेदारोंको पता लगा तो वह भाग कर आये और राजाको समाचार देनेके लिए महलमें पहुँचे। रातभर मदिरा और मोहिनीके सेवनसे थका हुआ सम्भाजी चारपाईपर पड़ा था। दूतोंने जगाकर खबर देनेका यत्न किया परन्तु जागे कौन ? बहुत देरमें जागकर जब समाचार सुना तो सम्भाजीने दूतोंको बहुत भला-बुरा कहते हुए आदेश दिया कि 'यह समाचार जाकर कुलेशसे कहो। वह जादूगर है, जादूसे दुश्मनोंको भगा देगा।' इस जवाबसे भी सिपाहियोंकी सन्तुष्टि न हुई और वह राजाको उठानेकी चेष्टा करते रहे, तो उन्हें शरीर-रक्षक सिपाहियोंसे धक्के देकर बाहिर निकलवा दिया गया। सिपाही बेचारे अफसरोंके पास पहुँचे। अफसरोंने भी सम्भाजीको हिलाना चाहा, परन्तु अनाचारका मद इससे भी न उतरा।

इतनेमें शेख निज़ामीके सिपाही संगमेश्वरके बाजारोंमें घूमने गये। शहरमें भगदड़ पड़ गई। सिपाही जान बचाकर रायगढ़की ओर भागने लगे। शेख निज़ामी बिना किसी प्रतिरोधके शहरमें घुस आया और महलके द्वारपर पहुँच गया, पर सम्भाजी मोह-निद्रामें पड़ा हुआ सुखके सपने ही लेता रहा और यह सोच कर खुश होता रहा कि कुलेशके जादूसे शत्रुओंके सिर धड़से अलग हो रहे होंगे !

कुलेशने कुछ लड़नेका यत्न किया। जो सिपाही राजाकी भक्तिमें बँधे हुए वहीं रह गये थे, उन्हें साथ लेकर उसने मुगल-सेनाका रास्ता रोकना चाहा, परन्तु वह आँखमें तीर लगते ही शीघ्र बेहोश होकर गिर पड़ा और गिरिफ्तार हो गया। इधर मराठा सिपाहियोंने शत्रुको घरमें आया देखकर सम्भाजीको बलात्कारसे जगा दिया था और शस्त्रोंसे सुसज्जित करके घोड़ेकी पीठपर बिठा दिया था। कुलेशकी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनकर वह घोड़ेसे उतर गया, और कुलेशको घसीटकर शिवालयमें ले गया। दूसरा कोई उपाय न देखकर सम्भाजीने भेस

बदलकर भागनेका यत्न किया। जोगीका बाना पहिनकर निकल जाना चाहता था कि शेख निज़ामीके लड़के इकलास खाँकी दृष्टि पड़ गई। सम्भाजीने भेस तो बदल लिया था, परन्तु गहने नहीं उतारे थे। उन गहनोंने धोखा दे दिया। सम्भाजी बदले हुए भेसमें बन्दी बना लिया गया। सम्भाजी, कुलेश और अन्य कैदियोंको जंजीरोंसे बाँधकर हाथियोंकी पीठपर लादे हुए शेख निज़ामी २८ दिसम्बर १६८८ के दिन औरंगज़ेबके शिविरकी ओर रवाना हुआ।

इस समाचारके पहुँचनेपर मुग़लोंके डेरेपर घीके चिराग़ जल गये। सबसे बड़ा काफ़िर पकड़ा गया, इस समाचारने गम्भीर बादशाहको भी हर्षोन्मत्त बना दिया। शेख निज़ामीको संगमेश्वरसे चलकर बादशाहके डेरेतक पहुँचनेमें पाँच दिन लगे, इन पाँच दिनोंमें मुग़लोंकी सेनाओंने उत्सव मनानेमें कोई कसर न छोड़ी। उनके दिलोंमें यह आशा अंकुरित होने लगी कि अब दक्षिण जीत लिया जायगा और हमें घर वापिस जानेका अवसर मिलेगा। जब कैदियोंका जलूस शाही डेरेके पास पहुँचा तो औरंगज़ेबके हृदयका क्षोभ और द्वेष पूर्ण वेगसे उबल पड़ा। केवल विजयसे वह सन्तुष्ट न हुआ। शिवाजीके पुत्रका तिरस्कार करना भी उसने आवश्यक समझा। डेरेसे चार मीलकी दूरीपर, सम्भाजी और कवि कुलेशको विदूषकोंका वेष पहिनाकर और उनके सिरपर घुँघरूदार ऊँची कलंदरी टोपियाँ रखकर, ऊँटोंपर सवार करा दिया गया। उनके मुँह ऊँटोंकी पूँछकी ओर रक्खे गये थे। इस प्रकार, उपहासके रूपमें, बन्दियोंको बाजारसे निकाला गया। आगे आगे ढोल बजते जाते थे। दर्शक लोग इस दयाजनक दृश्यको देखकर अपनी अपनी रुचिके अनुसार रोते या हँसते थे। जब बन्दी बादशाहके दरबारमें पहुँचे तो औरंगज़ेबने सिंहासनपरसे उतर कर खुदाको सिजदा किया, कवि कुलेशको यहाँ भी कविता दिखानेका मौका मिल गया और उसने राजाको ऊँची आवाजसे कहा कि—'राजन्, औरंगज़ेब भी तुम्हारे सामने खड़ा न रह सका, और झुककर नमस्कार करनेके लिए बाधित हुआ।'

औरंगज़ेबके दरबारमें एक पक्ष ऐसा था जो सम्भाजीके प्राण लेनेका विरोधी था। उसकी राय थी कि राजाको फुसलाकर मराठोंके अधिकारमें आये हुए सब किले ले लिये जायँ। पूरा अधिकार होनेपर देखा जायगा। इस आशयसे सम्भाजीके पास दूत भी भेजे गये, परन्तु बन्दी दशामें जो अपमान हुआ था उसने वीर-पुत्रके आत्म-सम्मानको भड़का दिया था। सम्भाजीसे कहा गया कि

यदि वह अधीनता स्वीकार करे और मुसलमान हो जाय, तो उसकी प्राण-रक्षा सम्भव है। सम्भाजीने इन प्रश्नोंका उत्तर बहुत ही कड़ी भाषामें दिया और यह भी कहा कि मैं ऐसे प्रस्तावपर तब विचार कर सकता हूँ, जब पहले मुझे बादशाहकी लड़की मिल जाय। कवि कुलेशने इस्लामके पैगम्बरको भी बुरा-भला कहा। औरंगज़ेबको जब यह समाचार पहुँचाया गया, तब वह भड़क उठा, उलमाओंद्वारा मृत्युदण्डका फतवा सुनवा कर, औरंगजेबने अपने क्रोधकी जो खुली बागें छोड़ीं, वह इतिहासमें स्मरण रहेंगीं। सम्भाजीको बादशाहके सिंहासनके पास लाकर उसकी जीभ काट ली गई, क्योंकि उसने रसूलको बुरा कहा था। फिर राजाकी आँखें निकल दी गईं, क्योंकि उसने बादशाहकी ओर अपमानकारक दृष्टिसे देखा था। इतनेपर भी सन्तुष्ट न होकर औरंगज़ेबने उसके शरीरका एक एक अंग कटवा कर तुलापुर ग्रामके कुत्तोंके सामने खानेके लिए फिंकवा दिया। केवल सम्भाजी और कुलेशके सिर रखवा लिये गये, जिन्हें दक्षिणके बाजारोंमें डंकेकी चोटके साथ घुमाया गया।

कुछ समय पीछे रायगढ़के किलेपर कब्जा कर लेनेपर शिवाजीकी शेष विधवायें तथा सम्भाजी और राजारामके सम्पूर्ण परिवार भी मुग़ल बादशाहके वशमें आ गये, केवल राजाराम बच निकला।

इस प्रकार ३२ वर्षकी आयुमें शिवाजीके पुत्र सम्भाजीका अन्त हुआ। जिस राज्यका भवन वीरता, प्रतिभा और आत्म-संयमकी नींवपर स्थापित किया गया था, उसे उत्तराधिकारीकी अस्थिरता और विलासिताने बरबाद कर दिया। एक व्यक्तिका दृश्यमान कार्य दूसरे व्यक्तिकी अयोग्यतासे नष्ट हो गया। सम्भाजीकी मृत्युके पीछे साल-भरमें ही मराठोंके सब किले मुगलोंके कब्जेमें आ गये। १६८९ ई० का वर्ष पूरा होनेसे पूर्व दक्षिणमें मराठाशाहीका नाम ही लुप्त-सा प्रतीत होने लगा।

शिवाजीका बनाया हुआ स्थूल भवन तो सम्भाजीकी अयोग्यतासे गिर गया। परन्तु राष्ट्रकी जो भावना शिवाजीने पैदा की थी, क्या वह भी नष्ट हो गई? इस प्रश्नका उत्तर आगामी परिच्छेद देगा।

४–हवासे लड़ाई

(१)

जर्मनीके प्रसिद्ध विजेता महान् फ्रेडरिकके बारेमें कहा जाता है कि उसका सबसे बड़ा गुण यही था कि वह तलवारको म्यानसे निकालने और उसे म्यानमें डालनेके समयको पहिचानता था। वर्षों तक वह मध्य योरपकी सम्मिलित शक्तियोंसे अकेला ही लड़ता रहा, कभी हारा तो कभी जीता, परन्तु धैर्य न छोड़ा और अन्तमें विजयी हुआ। विजय पा लेनेपर प्रायः विजेताओंकी प्यास भड़क उठती है और वह और अधिक सफलताकी मृगतृष्णाके पीछे भागने लगते हैं। मृगतृष्णिकाके पीछे भागनेका अन्त सर्वनाश है। योरपका विजेता नैपोलियन उसका दृष्टान्त है। फ्रेडरिकमें यह गुण था कि उसने विजयी होकर तलवारको म्यानमें डाल दिया और फिर मानो उसपर अटूट ताला लगा दिया। परिणाम यह हुआ कि उसका बोया हुआ जर्मन-वैभवका वृक्ष अंकुरित और पल्लवित होता हुआ विशाल जर्मन-साम्राज्यके रूपमें परिणत हो गया।

दक्षिणमें औरंगज़ेब सफलताकी चोटीपर पहुँच चुका था। बीजापुर और गोलकुण्डाकी रियासतोंका अन्त हो गया था और मराठा राज्य ज़बर्दस्त धक्का खाकर डगमगा रहा था। औरंगज़ेब यदि उस समय भी सँभल जाता और सारे दक्षिणपर पूरा अधिकार जमानेकी मृगतृष्णिकाके पीछे न भागकर मराठा-राज्यसे सुलह कर लेता, उसे कमजोर करके छोड़ देता, और जीते हुए प्रदेशको सँभालनेमें लग जाता तो शायद उसके जीवन-नाटकका अन्तिम सीन ऐसा करुणाजनक न होता। परन्तु साम्राज्यवादका यही दोष है कि वह ऐसी भूखको पैदा कर देता है, जो तबतक शान्त नहीं होती, जबतक खानेवाला स्वयं अपने आपको खुराक न बना दे। साम्राज्यवादका मार्ग अपने नाशका मार्ग है। हरएक विजयसे भूखकी आग बढ़ती जाती है, यहाँतक कि खानेवाला ही भस्म हो जाता है। औरंगज़ेबकी विजय-लालसा भी विजयके साथ बढ़ती गई। बीजापुर और गोलकुण्डा नष्ट हो गये, शिवाजीका उत्तराधिकारी कैद हो गया, मराठोंके अधिकांश किले मुग़ल-सेनाके अधिकारमें आ गये, अब दक्षिणको सल्तनतका एक अंग बना लेना क्या कठिन है ? यही सोचकर औरंगज़ेबने अपनी सेनाओंका जाल चारों ओर फैला दिया। दक्षिणके किलेके पीछे किले बादशाहके हाथमें आने लगे। बस फिर क्या था, बूढ़ा औरंगज़ेब एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें तस्बीह लेकर मृगतृष्णिकाके पीछे दौड़ने लगा।

राजाराम

सम्भाजीकी हत्याके क्रूरतापूर्ण समाचार सर्वसाधारणकी कल्पनासे परिष्कृत होकर दक्षिण-भरमें फैल गये। जो सरदार जीवन-कालमें राजाके विरोधी थे, उनके हृदयों-पर भी गहरी चोट लगी। मराठोंका खून उबल पड़ा। बदलेकी भावना उनके हृदयोंको तड़पाने लगी। हार माननेका विचार भी अपराध-सा प्रतीत होने लगा। सम्भाजीके दाग शत्रुद्वारा किये हुए क्रूर अत्याचारके जलसे धुल गये और प्रत्येक गिरिहके मराठे सरदार एक चित्तसे मराठा-गौरवकी रक्षाके लिए रायगढ़में एकत्र हुए। सम्भाजीकी विधवा महिषी येसूबाई सरदारोंकी सभाकी प्रधान थी। यसू-बाइके बगलमें राज्यका उत्तराधिकारी शिवाजी बैठा था। उसकी आयु इस समय छह वर्ष थी। सम्भाजीका छोटा भाई राजाराम इस समय पूरे यौवनमें था। भाईके राज्य-कालमें तो बेचारा रायगढ़में कैद ही रहा। कैदकी कोठरीमें उस राजकुमारने सहिष्णुता और धीरताके जो पाठ पढ़े थे, उनकी परीक्षाका समय आ पहुंचा था। येसूबाईने क्षत्राणीके त्याग और वीर-भावका परिचय देते हुए प्रस्ताव किया कि राज्यका उत्तराधिकारी राज्यके नियमानुसार शिवाजी समझा जाय, परन्तु जब तक वह पूरी आयु तक पहुँचे तब तक राजाराम रीजेंटके तौरपर राज्यको सँभाले। सब मन्त्री तथा सरदार इस प्रस्तावसे सहमत हुए। राजारामने भी सिर झुकाकर परन्तु भरे हुए दिलसे सभाकी आज्ञाको स्वीकार किया। यसूबाईने राजारामके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम चित्तमें दुःखको स्थान मत दो, विजयश्री तुम्हें प्राप्त होगी, और तुम अपने पिताके राज्यको शत्रुसे छीन लोगे।'

औरंगज़ेबने मराठा-राज्यका सबीज नाश करनेके लिए सेनापति तैनात कर दिये थे। रायगढ़ शीघ्र ही मुग़ल-सेनाओंसे घिर गया। हिन्दुस्तानकी पूरी शक्ति अब महाराष्ट्रके विजयपर लगा दी गई थी। राजारामने किलेमें पकड़े जानेकी अपेक्षा बाहिर रहकर देशको जगाना और सेनाको सन्नद्ध करना अधिक आवश्यक समझकर साधुका भेस भरकर मुग़ल-सेनाओंको छका दिया, और पन्हालाके किलेमें डेरा जमाया। परन्तु मुग़लोंसे पीछा छुड़ाना कठिन था। वह तो टिड्डी-दलकी तरह दक्षिणमें छा गये थे। पन्हालापर भी चारों ओरसे शत्रु घिरने लगे तब राजारामने शत्रुकी पहुँचसे बहुत दूर कर्णाटकमें आश्रय लिया। शिवाजी महाराजने अपने राज्यके अन्तिम दिनोंमें कर्णाटकको जीत लिया था। उस समय उसकी उपयोगिता स्पष्ट नहीं हुई थी, परन्तु अब आपत्तिके समयमें वह सुदूरवर्ती प्रान्त

ही महाराष्ट्रका रक्षक सिद्ध हुआ। राजारामने कर्णाटकके जिंजी नामक दुर्गमें आश्रय लिया। यह दुर्ग मुग़ल-सेनाओंकी मारसे बहुत दूर पहाड़ोंकी गहराईमें बना हुआ था। मराठा-राज्यका केन्द्र जिंजीमें रहा, परन्तु महाराष्ट्रके शासन तथा रक्षणका प्रबन्ध अमात्य रामचन्द्रके हाथोंमें दे दिया गया। अमात्य रामचन्द्र बहुत पुराना अनुभवी मराठा सरदार था। उसकी देख-रेखमें महाराष्ट्रकी मुट्ठीभर सेना मुग़ल-सम्राटसे लड़नेके लिए तैयार हो गई।

तब एक ऐसा युद्ध आरम्भ हुआ जिसे मनुष्यका हवासे युद्ध कहें तो अत्युक्ति न होगी। औरंगजेबका उद्देश सारे दाक्षिणको स्वायत्त कर लेना था। केवल एक विघ्न शेष था और वह था मराठा-राज्य। बूढ़े सेनापतिने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसके निवारणमें लगा दी। मुग़ल-साम्राज्यकी चुनी हुई सेनायें, युद्धक्षेत्रमें भेजे हुए सेनापति, चार पीढ़ियोंसे भरा हुआ भारतका खजाना, समयका सबसे बड़ा सेनापति औरंगजेब, और उसके वीर शाहज़ादे—यह सब शक्तियाँ मराठा-शाहीके सबीज नाशके लिए टूट पड़ीं। मराठाशाहीकी क्या दशा थी, सो हमने देख ली। राजा मर चुका था, उत्तराधिकारी नाबालिग था, राजाराम प्रतिनिधिके तौरपर सिंहासनारूढ हुआ, परन्तु उसके पास न राज्य था न राजधानी। एक सुदूरवर्ती कोनेमें अज्ञात पर्वतीय दुर्गकी शरणमें बैठकर वह बुझते हुए दीपककी अन्तिम चमकका दृश्य दिखा रहा था। लड़ाई तो बहुत ही विषम थी। एक ओर पहलवान और दूसरी ओर मृत्युशय्यापर पड़ा हुआ एक मरणासन्न व्यक्ति। देखनेमें तो कुश्ती बहुत असम प्रतीत होती थी, परन्तु हुआ क्या? सत्रह वर्षों तक औरंगजेबने उस देखनेमें मरणासन्न राज्यके साथ युद्ध किया। हरेक चोट अन्तिम प्रतीत होती थी, परन्तु हरेक चोट बीमारको मज़बूत और पहलवानको कम-जोर बनाती जा रही थी। न देखनेमें मराठा-राज्यका कोई केन्द्र था और न संगठित सेना, परन्तु जिस किलेपर आज मुग़ल-सेना कब्जा करती थी, कल उसपर फिर महाराष्ट्रका झण्डा फहराने लगता। मुग़ल-सेना आगे बढ़ती तो कोई रोकनेवाला दिखाई न देता परन्तु जब डेरा डालती तो बिलों और गढ़ोंमेंसे निकल निकलकर नाटे नाटे घुड़सवार जानपर आफ़त ढा देते। बात यह थी कि मुग़ल बादशाहकी मराठा राजासे लड़ाई समाप्त हो चुकी थी और मराठा जातिसे आरंभ हो गई थी। यदि राष्ट्रका कोई एक केन्द्र हो तो उसे जीतकर राष्ट्रको परास्त किया जा सकता है, परन्तु जब राष्ट्रका हरेक व्यक्ति सैनिक और हरेक

घर विद्रोहका केन्द्र हो, तो लड़ाई किससे की जाय ? शिवाजीके बनाये हुए राष्ट्रके प्रत्येक घरमें राष्ट्रीय भावनाका दीपक जल उठा था। राज्यका शरीर नष्ट हो गया था, परन्तु आत्मा अधिक सचेत हो उठी थी। मुगल-साम्राज्यकी राजासे लड़ाई समाप्त हो चुकी थी, अब तो उसे राष्ट्रसे लड़ना था। उसके सेनापति मानो हवासे लड़ रहे थे। जिसे आज जीतते, कल वह विजयी दिखाई देता, जिसपर आज कब्ज़ा करते, वह कल स्वाधीन हो जाता। हम उन सत्रह वर्षोंकी विस्तृत कहानीमें नहीं जायँगे। इसलिए नहीं कि उन वर्षोंमें मनोरंजक घटनाओंका अभाव है, प्रत्युत इसलिए कि हमारी इस पुस्तकका आकार हमें बहुत विस्तारमें जानेकी आज्ञा नहीं देता। १६८८ के अन्तमें सम्भाजीकी रोमांचकारिणी हत्याका वृत्तान्त महाराष्ट्र-भरमें फैल गया। १६८९ में राजारामने राज्यकी बागडोर सँभाली, परन्तु उसे चैनसे बैठना न मिला। मुगल-सेनाओंने उसे धकेलकर जिंजीकी गुफामें पहुँचा दिया। उस वर्ष औरंगज़ेबका सितारा तेजीपर रहा। उसके सेनापति किलेपर किले फतह करते गये, और वर्षकी समाप्ति होनेसे पूर्व प्रायः सभी मराठा-किले मुगलोंके हाथमें आ गये।

परन्तु अगले ही वर्ष बादशाहके सितारेकी गति मन्द पड़ने लगी। मालूम नहीं, किन बिलोंसे निकल निकल कर मराठा सिपाही विजयी मुगल सरदारोंको तंग करने लगे। मुगल-सेनापति शर्ज़ाखाँ बहुत-सी सेना लेकर सिताराके किलेपर कब्ज़ा करनेकी धुनमें घूम रहा था कि रामचन्द्र शंकरजी, सन्ताजी और धनाजी जाधव नामके मराठा सेनापति बहुतसे सिपाहियोंके साथ कहींसे टपक पड़े और शर्ज़ाखाँपर आक्रमण कर दिया। खूब लड़ाई हुई, जिसमें मुगल सेनायें बुरी तरह हारीं, उनका माल असबाब लुट गया और सेनापति शर्ज़ाखाँ बन्दी हो गया। बेचारे कैदी सेनापतिका सारा परिवार, उसकी माँ, स्त्री, और बच्चे भी मराठोंके बन्दी हो गये। चार हज़ार घोड़े, आठ हाथी और बहुत-सा अन्य सामान मराठोंके हाथ आया। बेचारे शर्ज़ाखाँने सोलह दिन पीछे एक लाख रुपया तावान देकर शत्रुओंसे अपनी और अपने परिवारकी स्वाधीनता ख़रीदी।

इस पराजयसे झुँझलाकर बादशाहने फीरोज जंगको सिताराकी ओर रवाना किया। इसी बीचमें मुगलोंकी एक और टुकड़ीपर भी आफत बरस पड़ी। सिद्दी अब्दुल कादिर अपनी जायदादकी ओर जा रहा था, रास्तेमें रूपा भोंसलेने उसपर आक्रमण किया। बेचारा बहुतसे घाव लेकर और सिपाही तथा सामान खोकर

जान बचानेमें समर्थ हुआ। इस सफलतासे फूले हुए मराठा सरदारोंने १६९० के मध्यमें प्रतापगढ़, रोहिड़ा, राजगढ़ और तोरणके प्रसिद्ध किलेंपर कब्जा कर लिया।

इसके पश्चात् डेढ़ साल तक फिर सन्नाटा-सा रहा। औरंगज़ेव अपने सेनापति, सेना और ख़ज़ानेको चारों ओर बखेरता रहा, पन्हालेके किलेके लेनेमें उसकी बहुत-सी शक्ति खर्च हुई, पर वह फिर मराठोंके हाथमें आ गया। उधर जिंजीपर आक्रमण करनेके लिए जो सेना भेजी गई थी वह बुरी हालतमें पड़ी थी। बादशाह मददपर मदद भेज रहा था, परन्तु सब निष्फल। उस समय उसे कुछ ऐसे समाचार मिले, जिन्होंने उसके सब मन्सूबोंको हिला दिया। उसे बनाया हुआ युद्ध-चित्र बदलना पड़ा।

महाराष्ट्रके आकाशमें दो नये सितारोंका आविर्भाव हो गया था। धना जाधव और सन्ता घोरपड़े नामक दो सरदारोंने मुग़ल सेनापतियोंके नाकमें दम कर दिया था। हवाकी चालसे चलने और शेरकी तरह झपटनेमें यह दोनों वीर अपनी समता नहीं रखते थे। अमात्य रामचन्द्रके तैयार किये हुए तीस हजार सिपाहियोंकी सना लेकर यह दोनों वीर पूर्वीय कर्णाटकपर चढ़ गये। प्रान्त-भरमें त्रास फैल गया। प्रजा भाग भागकर शहरोंमें जाने लगी। कांजीवरममें अली मर्दानखाँ फौजदार था। उसने रास्ता रोकनेका यत्न किया, परन्तु उस तूफ़ानको रोकना उसकी शक्तिसे बाहिर था। किला मराठोंके कब्जेमें आ गया और खान जिंजीमें बन्दी हो गया, जहाँसे उसे एक लाख सिक्के देनेपर छुटकारा मिला।

धना जाधवने शत्रुके गढ़पर ही धावा बोल दिया। जिंजीके किलेको घेरे हुए ज़ुल्फिकारखाँकी सेनायें पड़ी थीं। धनाजीने उसकी बाहिरी चोकियोंपर आक्रमण किया, और इस्माईलखाँ नामक मुग़ल सेनापतिको गिरिफ्तार कर लिया।

इस प्रकार शत्रुपर वीरताकी छाप बिठाकर महाराष्ट्र सरदारोंने हैद्राबादी कर्णाटकको स्वायत्त कर लिया, और उसका मराठा शासक नियत कर दिया।

औरंगजेबका चित्त जिंजीपर लगा हुआ था। सेनापति असदखाँ और ज़ुल्फिकारखाँ सेना और सामानकी सहायतासे उसे लेनेका यत्न कर रहे थे। औरंगज़ेबके अविश्वासी स्वभावके अनुसार शाहजादा कामबख्श उनकी देख-रेखके लिए रक्खा गया था। इधर सन्ताजी और धनाजीने पूर्वीय कर्णाटकमें आफत मचा दी।

रास्ता कट गया, जिससे जिंजीपर घेरा डाले हुए मुगल-सैन्यपर मराठा सेनाओंका घेरा पड़ गया। जो जिंजीको घेरने आये थे, वह स्वयं घिर गये। शाही ठिकानोंसे रुपया और रसदका आना बन्द हो गया। मुगल सेनाओंमें दुर्भिक्ष-सा पड़ गया। निराशाके बादल सिरपर मँडराने लगे। इसपर दोनों मराठा सरदारोंने दिन-रात तंग करना आरम्भ किया। कभी इस ओरसे और कभी उस ओरसे, मुगल-सेनाओंपर नोंच-खसोट शुरू हुई। आपत्तिके समयमें कल्पनाका बाज़ार गर्म हो जाता है। शाही सेनाओंमें अफवाह फैल गई कि बादशाह मर गया है और शाह आलम तख्तपर बैठ गया है। कामबख्शके तो इस अफवाहसे होश उड़ गये। उसने सोचा कि अब मेरे। शाह आलम बादशाह बन गया, उसके हुक्मसे असदखाँ जो कुछ कर बैठे वह कम है। अब तो जीवन-रक्षाका एक-मात्र उपाय यह है कि राजारामसे सुलह करके अपने आपको शाह आलमकी चोटसे बाहिर कर दिया जाय। उसके दूत राजारामके पास सुलहका पैग़ाम लेकर पहुँचने लगे। परन्तु असदखाँ सोया हुआ नहीं था। उसे सब भेद मालूम हो गया। एक वीर स्वामिभक्त सेवकका कर्तव्य पालन करते हुए उसने तम्बूमें मदमस्त कामबख्शको गिरिफ्तार कर लिया। मराठोंने इस समाचारको सुनकर मुगल-सेनापर जोरदार आक्रमण करने आरम्भ कर दिये, जिनके दबावसे मुगल सेनाओंको जिंजीका पड़ोस छोड़कर पीछे हट जाना पड़ा। मुगल सिपाहियोंके दिल टूटनेमें अब कोई कसर न रही। भूखका अत्याचार पहले ही असह्य हो रहा था, शाहज़ादेकी गिरिफ्तारीने सारी हिम्मत तोड़ दी थी, उसपर पीछे हटनेकी नौबत आई तब तो सिपाही बोरिया-बँधना सँभालकर फौजसे भागने लगे। असदखाँ बड़ी मुश्किलसे उस भागती हुए सेनाको समेटकर वंदीवाशकी पनाहमें आया। मार्गमें मराठा घुड़सवारोंने शाही सेनापर खूब छापे मारे और माल असबाब लूट लिया। औरंगज़ेबको जब यह समाचार मिले तब वह क्रोधसे जल उठा, और हुक्म भेजा कि शाहज़ादा और असदखाँ दोनोंहीको दरबारमें हाज़िर किया जाय। दरबारमें हाज़िर करनेका अभिप्राय अपमानित करना था।

इस अपमानके साथ मुगल सेनाओंके महाराष्ट्रपर आक्रमणका तीसरा वर्ष समाप्त हुआ।

५—हवासे लड़ाई
(२)

औरंगज़ेब परेशान था, रावणके सिरोंकी तरह एक सिर कटता था तो एक और निकल आता था। यदि मुगल सेनापति एक किला लेते थे, तो मराठा सेनापति दोपर कब्ज़ा जमा लेते थे। औरंगज़ेबको खबर लगती थी कि महाराष्ट्रकी सेना पूर्वकी ओर जा रही है तो पश्चिमकी ओर किसी शहरसे खबर आती कि अकस्मात् मराठा घुड़सवार वहाँ पहुँच गये और शहरको लूट लिया। बेचारे मुगल सेनापति अपरिचित पहाड़ों और जंगलोंमें मारे मारे फिरते थे, जब पकड़े जाते तो तावान देकर छूट सकते थे। छूटकर भी चैन कहाँ ! औरंगज़ेबका कोप वज्रकी तरह पड़ता था और हारे हुए सेनापतियोंको बरबाद कर देता था।

इस समय औरंगज़ेबका सारा ध्यान जिंजीकी ओर था। कामबख्शकी असफलताके पीछे बादशाहने ज़ुल्फिकार खाँको बहुत-सी मदद भेजी, और हुक्म भेजा कि जितना शीघ्र हो सके जिंजीपर अधिकार करो। ज़ुल्फिकार बेचारा मुसीबतमें था, रात-दिन सन्ताजी और धनाजीका डर लगा हुआ था। जिंजीपर कब्जा करना तो एक ओर रहा, उसे अपनी सेनाके खिलाने-पिलानेकी चिन्ता तंग कर रही थी। उसने राजारामसे समझौता कर लिया। वह जिंजीपर चढ़ाई न करे, और मराठा सरदार उसे तंग न करें। दोनों गुप्तरूपसे एक दूसरेका कुशल-समाचार पूछते रहते थे।

अब औरंगज़ेबके धैर्यका बाँध टूट गया, उसने ज़ुल्फिकार खाँको जिंजी फतह करनेका कड़ा हुक्म दिया जिसकी उपेक्षा करना असम्भव हो गया। मुगल सेनापतिने दोस्तीका पन निभाया। आक्रमणसे पहले राजारामको सूचना दे दी। राजाराम भी गुप्त मार्गसे निकल कर विल्लौर जा पहुँचा, और खाली किलेपर मुगल सेनाओंने थोड़ी लड़ाईके पीछे अधिकार कर लिया। राजारामका परिवार किलेमें ही रह गया था, जिसे मुगलोंका बन्दी बनना पड़ा। केवल एक रानीने शत्रुके हाथमें जानेकी अपेक्षा मरना अच्छा समझा और किलेकी दीवारपरसे कूद कर जान दे दी।

पिंजरा तो हाथ आ गया, पर पंछी उड़ गया। राजारामके निकल जानेसे जिंजीकी फतह निःसार हो गई। इतना ही नहीं, इसके पश्चात् मराठा सरदारोंने

मुगल सेनापर ऐसी आफत ढाई कि बादशाहको बुढ़ापेमें फिरसे सिपाही बनकर मैदानमें कूदना पड़ा। मराठा सरदार सन्ताजीकी तलवार मुग़ल सेनापतियोंपर काल-दण्डकी तरह पड़ने लगी। सन्ताजी और धनाजी यह दो सेनापति उस समयकी मराठा रियासतके स्तम्भ थे। दोनों ही वीर थे, साहसी थे, और फुर्तीले थे। औरंगजेबकी दक्षिणमें फैली हुई सेनाओंके बीचमें वह कैंचीकी दो धारोंकी तरह घूमते थे। वह जिधर जाते थे, सेनाका पर कटता चला जाता था। दोनोंमें समानतायें थीं, तो विषमतायें भी। धनाजी वीर होनेके साथ साथ नीतिज्ञ भी था, परन्तु सन्ताजी कोरा सिपाही था। वह बहादुरीसे लड़ता था, और दुश्मनको अपनी युद्ध-कलाकी चतुराईसे बौंदला देता था। उसमें सिपाहीकी-सी फुर्ती भी थी, और अक्खड़पन भी।

सन्ताजी घुड़सवारों और बर्कन्दाज़ोंकी एक बड़ी सेनाको लिये मुग़ल-सेनाओंके बीचमें हवाकी तरह उड़ता फिरता था। सितारासे बिल्लौर और बिल्लौरसे मैसूर। वह किधर जायगा और कहाँ जायगा, इसकी खबर औरंगज़ेबको मिलनी कठिन थी। जब बादशाह सुनता कि सन्ताजी उत्तरको जा रहा है और कहीं छापा मारेगा तो वह उसका रास्ता रोकनेके लिए सेना भेजता। परन्तु रास्ता किसका रोका जाय? समाचार पहुँचता कि सन्ताजी उत्तरको न जाकर दक्षिण या पश्चिमकी ओर टूट पड़ा, और मुग़ल-सेनाकी एक टुकड़ीको तबाह करके मुग़ल-सेनापतिको पकड़ ले गया। औरंगजेबका चित्त व्याकुल हो रहा था।

बादशाहने सुना कि सन्ताजी मैसूरकी ओर जा रहा है, तो उसने कासिम खाँ और खानाजाद खाँ नामके दो मशहूर सेनापतियोंको उसका पीछा करनेकी आज्ञा भेजी। उनके पास ५००० के लगभग चुने हुए लड़ाके सिपाही थे। यह मज़ेदार बात थी कि अपने अपने ओहदोंके अनुसार उन सेनापतियोंके पास २५ हजार सिपाही होने चाहिए थे, परन्तु वस्तुतः केवल ५००० थे। सन्ताजीको खबर लग गई कि शत्रुकी सेना १२ मील दूरीपर पहुँच गई है। उसने लौटकर आक्रमण किया। वह युद्ध-कलाका संघर्ष था। दोनों पक्ष बड़ी बहादुरीसे लड़े परन्तु सन्ताजीकी युद्ध-कला ऊँचे दर्जेकी थी। उसने अपनी सेनाको तीन टुकड़ियोंमें बाँटा। एक टुकड़ीने शत्रुसे लड़ाई आरम्भ कर दी, कुछ देर पीछे दूसरी टुकड़ीने शत्रुके डेरेपर आक्रमण करके सब माल असबाब लूट लिया। लूटके समाचारने कासिम खाँके धैर्यको विचलित कर दिया। उस दशामें सन्ताजीके सैन्यकी तीसरी

टुकड़ीने जो कुमकके तौरपर रखी गई थी, शत्रुकी सेनापर पीछेसे आक्रमण कर दिया। अब तो मुगल सेनाकी हिम्मत टूट गई। सन्ताजीके बन्दूक थी, जिसका नाम काला प्यादा रक्खा गया था। गज़बका निशाना लगाते थे। उनकी गोली अचूक बैठती थी। दुश्मनके एक तिहाई सिपाही मारे गये। तब कासिमख़ाँ और खानाजाद ख़ाँने दादेरीके दुर्गमें घुसकर जान बचानेकी ठानी, परन्तु दादेरीके रक्षकोंने क़िलेके द्वार बन्द कर लिये। मुग़ल सेनापतियोंने उस आपत्तिमें वीरताके नियमके विरुद्ध काम किया। सेनाको मौतके मुँहमें छोड़कर चोरीसे दोनों सरदार क़िलेकी दीवार लाँघकर अन्दर चले गये, परन्तु अन्न-कष्टने उन्हें वहाँ भी चैनसे न बैठने दिया। मनुष्य और पशु भूखों मरने लगे। सिपाहियोंने सेनाके घोड़ों और ऊँटोंको काट-काटकर खाना आरम्भ किया, और पशु बेचारे घास समझकर एक दूसरेकी दुमके बालोंको चबाने लगे। कासिमख़ाँ अफ़ीमका बहुत व्यसनी था। दो दिन तो बेचारेने किसी तरह दिन काटे, तीसरे दिन उसके प्राणोंने अफ़ीमके विना शरीरमें रहनेसे इन्कार कर दिया। लाचार होकर खानाज़ाद ख़ाँने सन्ताजीके पास सुलहका पैगाम भेजा। सन्ताजीने बीस लाख रुपयेमें सौदा किया जो मुग़ल सेनापतियोंको मानना पड़ा। जब एक बार शत्रुसे सुलहकी शर्तें तै हो गईं, तब सन्ताजीने एक सच्चे सिपाहियाना हृदयका परिचय दिया। किलेके द्वार खोल दिये, मुग़ल सेनाके हिन्दू और मुसलमान सिपाही बेखटके बाहिर आ गये। उनका सामान मराठोंके डेरोंमें सँभालकर रख लिया, और उनके खाने-पीनेका प्रबन्ध भी मराठा सेनाके मोदियोंने ही किया। तेरह दिनतक मुग़ल सिपाहियोंको मराठा सिपाही अन्न और पानी देते रहे। तब कहीं वह इस योग्य हुए कि बादशाहके डेरेकी ओर रवाना हो सकें। खानाजाद-ख़ाँकी संरक्षाके लिए कुछ दूरतक कुछ मराठा सिपाही भेजे गये।

कासिमख़ाँके साथी सेनापतियोंमेंसे एकका नाम हिम्मतख़ाँ बहादुर था, जो दादेरीसे ४० मीलकी दूरीपर बसवापट्टन नामके स्थानमें बैठकर घटनाक्रमको देख रहा था। दादेरीको जीत कर सन्ताजीने उधर भी दृष्टि उठाई। दस हज़ार घुड़सवारोंके साथ बसवापट्टनपर धावा कर दिया। हिम्मतख़ाँ हिम्मतसे लड़ा, परन्तु सन्ताजीके नामका त्रास मुग़लोंके हृदयोंपर अधिकार जमा चुका था। उसने अपना कार्य किया। हिम्मतख़ाँ काले प्यादेकी गोलीका शिकार हुआ, और उसका साथी अली बक़ी भी कुछ देर बाद धराशायी हो गया।

सन्ताजीने दो महिनेके अन्दर दो बड़े युद्धोंमें मुग़ल सेनापतियोंको मारकर, और दो बड़े विजय प्राप्त करके अपनी धाकके अक्षर बादशाहकी छातीपर भी अंकित कर दिये।

परन्तु इधर दुर्भाग्यवश महाराष्ट्रके भाग्य-चन्द्रमापर ग्रह लगनेकी तैयारी हो रही थी। घरमें फूटका प्रवेश हुआ था। राजाराम शान्त स्वभावका शासक था। वह अधिकतर सहायकोंके बलपर ही काम करता था। ऐसे शासकको सहायकोंसे दबना पड़ता है और सहायक भी उसपर हावी होना चाहते हैं। सन्ताजीकी छाती इस समय विजयसे फूली हुई थी। उसने राजारामसे प्रार्थना की कि सेनापतिके पदपर उसे बिठाया जाय, परन्तु मन्त्रिमण्डल इस रूखे सेनापतिके विरुद्ध था। वह नीतिज्ञ और वीर धनाजी जाधवको अधिक पसन्द करता था। सन्ताजीको सेनापतिका पद न मिला, इसपर उसने विद्रोहका झंडा खड़ा कर दिया। धनाजीसे उसकी जो प्रतिद्वन्द्विता थी वह राजासे विरोधके रूपमें परिणत हो गई। लगभग एक वर्ष तक महाराष्ट्रकी रियासत धनाजी और सन्ताजीकी घरू लड़ाईके कारण कम्पायमान होती रही। प्रारम्भमें तो सन्ताजीका हाथ ऊँचा रहा, परन्तु राजाके विरोधने धीरे धीरे उसकी शक्तिको क्षीण कर दिया। १६९७ में धनाजीने सन्ताजीको पूरी तरह परास्त कर दिया। वह जान बचानेको थोड़ेसे मित्रोंके साथ भाग निकला, मसवादमें जाकर नागोजी मानेका मेहमान बना। नागोजी मानेकी स्त्रीके भाईकी सन्ताजीने हत्या की थी, तो भी मानेने गृहपतिके धर्मका पालन करते हुए सन्ताजीका कुछ दिनों तक सत्कार किया और प्रेमसे विदा किया। परन्तु मानेकी स्त्री अपने भाईके वधको न भुला सकी, उसने अपने छोटे भाईको सन्ताजीके पीछे भेजा जिसने अकेले थके-माँदे सन्ताजीको एक नालेके किनारेपर कत्ल कर दिया, और इस तरह भाईकी मृत्युका बदला ले लिया। वह सन्ताजीके सिरको काटकर और एक थैलेमें डालकर ले चला। रास्तेमें वह थैला गिर पड़ा। फीरोज जंगके कुछ दूत उधरसे गुजर रहे थे। वह थैला और सिर उनके हाथ आ गये। बस फिर क्या था, मुग़ल सेनाओंमें हर्षके बाजे बजाये गये कि एक शैतानका अन्त हो गया। सन्ताजीका सिर दक्षिणके बाजारोंमें घुमाया गया। इस प्रकार वह बहादुरीक चमकता हुआ पर खुरदरा सितारा अस्ताचलगामी हुआ।

सन्ताजीकी मृत्युसे ही महाराष्ट्रकी शक्तिको काफी धक्का लगा था, १७०० में

राजारामकी भी मृत्यु हो गई और राजाकी विधवा ताराबाईने प्रधान मन्त्री रामचन्द्रके साथ मिलकर, राजारामके नाबालिग पुत्रको शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बिठा दिया और स्वयं उसकी संरक्षिकाके तौरपर शासन करने लगी। ताराबाईने बादशाहसे सुलह करनेका प्रस्ताव भेजा, परन्तु औरंगज़ेब अब मराठा-शाहीका अन्त चाहता था सुलह नहीं। लड़ाई जारी रही।

औरंगज़ेब परेशान था। मराठा सेनापर आपत्तिपर आपत्ति आरही थी, परन्तु मुग़ल सेनाको सफलता दिखाई नहीं देती थी। कहनेको कई स्थानोंमें मुग़ल जीते, कई दुर्ग लिये गये, परन्तु होता यह था कि छह महीने या वर्षका समय लगा कर बहुतसे धन-जनका व्यय करके एक किला लिया गया। वहाँ एक किलेदार और बहुतसे सैन्यको रखकर सेनापति दूसरे किलेको हस्तगत करनेके लिए चला गया। अकस्मात्, कहींसे, खोहसे या आकाशसे यह मालूम नहीं, मराठोंकी सेना टूट पड़ती थी, और किलेदारको मारकर या कैद करके किलेपर कब्जा कर लेती थी। बादशाहके पास समाचार पहुँचता, तो वह आगबबूला हो जाता, और बहुत-सा रुपया, बहुत-से सिपाही, और बहुत-सा तोपखाना देकर फिर किसी सेनापतिको भेजता, और फिरसे किलेको सर करनेका उद्योग आरम्भ होता। महाराष्ट्रकी ओरसे न राजा लड़ रहा था, और न सेनापति। वहाँ तो मानो सारा देश ही लड़ रहा था, वृक्ष और पत्थर ही लड़ रहे थे, मानो महाराष्ट्रकी हवा ही लड़ रही थी जो हाथमें ही न आती थी।

अन्तमें, औरंगज़ेब तंग आ गया। अपने शाहज़ादों और सेनापतियोंसे वह निराश हो गया। ८२ सालकी उम्रका बूढ़ा सिपाही, अपने जन्मभरके स्वप्न—दक्षिण-विजयको पूरा करनेके लिए, कमर कसकर और म्यानसे तलवार निकालकर मैदानमें उतर आया। १६७७ में, आलमगीर बादशाह, झुकी हुई कमरके साथ साम्राज्यके एकमात्र काँटेको निकालनेके लिए इस्लामपुरीसे रवाना हुआ। छह वर्ष तक उसने अथक प्रयत्न किया। महाराष्ट्रके सतारा, पाली, पन्हाला, विशालगढ़, कोंडणा, राजगढ़ और तोरण आदि दुर्गोंपर अधिकार जम गया, परन्तु वह अधिकार नाम-मात्रका था। यानी वह दुर्ग शीघ्र ही फिर शत्रुके हाथमें चले गये, या मार-काट करनेवाले मराठा जत्थोंसे ऐसे घिर गये कि उनका मुग़लोंके हाथमें रहना न रहना बराबर हो गया। जहाँ औरंगज़ेब साथ रहता, वहाँ सफलता दिखाई देती, परन्तु अन्य स्थानोंपर मराठे सिपाही यमदूतोंकी तरह

स्वतन्त्र विचरते और तबाही करते थे। हिन्दुस्तानकी सारी सल्तनतका खजाना दक्षिणकी सूखी चट्टानोंपर बहाया जा रहा था, राजपूत और मुसलमान सिपाही विजय-कामनाकी अग्निमें भस्म किये जा रहे थे, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकलता था। मराठा सरदार सब जगह स्वाधीनतासे विचरते, लूट मचाते, और चौथके नामसे कर वसूल करते थे।

उस उमड़ते हुए जलप्रवाहको रोकनेके लिए ८२ वर्षका बूढ़ा औरंगज़ेब दोनों हाथ फैलाये सामने खड़ा था और भरसक यत्न कर रहा था कि पाँवको विचलित न होने दे कि घातक रोगने उसे आ दबाया। उस समय बादशाहका डेरा देवपुरमें था। कुछ समय तक उस कठोर इच्छाशक्तिके पुतलेने बड़े धैर्यसे रोगसे लड़ाई की, परन्तु जब रोग प्रबल दिखाई दिया तो उसे युद्धक्षेत्र छोड़कर अहमदनगरमें जाकर डेरा जमाना पड़ा। औरंगज़ेबके युद्ध-क्षेत्रसे पीछे जानेके साथ ही साथ मुग़ल-साम्राज्यने भी पीछेकी ओर क़दम रक्खा। बाबर और अकबरके समयसे आगे ही आगे बढ़ती हुई मुग़ल-शक्तिके मार्गमें बाधा पड़ गई। वह केन्द्रकी ओरको लौटने लगी। उसे हम मुग़ल-साम्राज्यके अन्तका आरम्भ कहें तो अनुचित न होगा।

६—मुग़ल-साम्राज्य और औरंगज़ेब

जब बादशाहने अहमदनगरकी ओर मुड़नेका निश्चय कर लिया, तब, मराठोंपर यह असर डालनेके लिए कि बादशाह विजयपर तुला हुआ है, उसने ज़ुल्फिकारखाँको सिंहगढ़ जीतनेके लिए रवाना किया। ज़ुल्फिकारखाँने सिंहगढ़पर कब्जा तो कर लिया, पर ज्यों ही उसने मुँह मोड़ा, त्यों ही शंकर नारायणने फिरसे महाराष्ट्रका झंडा सिंहगढ़पर गाड़ दिया। अब तो मराठा सरदार समझ गये कि सिंहगढ़पर धावा तो केवल एक प्रतारणा थी, वस्तुतः औरंगजेब मैदानको छोड़ रहा है। फिर क्या था, वह टिड्डी-दल शाही सेनाओंके चारों ओर छा गया। रात और दिन भय बना रहता था। कोई सिपाहियोंका टुकड़ा, या बारबर्दारीका सामान मुख्य सेनासे अलग हुआ कि मराठे घुड़सवार चीलकी तरह झपटते और उसे दबोच लेते। कभी कभी तो दिन-दहाड़े आक्रमण होते थे। एक बार यहाँ तक हुआ कि मराठा सिपाही मार-काट करते हुए मुग़ल सेनाओंमें घुस गये और

बिलकुल बादशाहके पास तक पहुँच गये। यह हालत हो गई थी कि एक और कुलाँच मारते और आलमगीर बादशाह बन्दी हो जाता, परन्तु उन्हें यह विदित ही नहीं हुआ कि वह औरंगज़ेबके इतने समीप हैं। बादशाह बाल बाल बच गया। मुसलमान लेखकोंने इसे औरंगज़ेबके महत्त्व या दबदबेका परिणाम माना है और इसे भी एक खुदाई मोजज़ा ही कहा है, परन्तु, हमें तो इसकी तहमें मराठा सरदारोंकी मुग़ल सेनाओंकी परिस्थितिसे अनभिज्ञता ही मालूम होती है।

संकटोंको झेलती हुई मुग़ल सेना, अपने बादशाहको लिये हुए २० जनवरी १७०६ के दिन अहमदनगरमें पहुँच गई। तेईस वर्ष पूर्व जब औरंगज़ेब दक्षिण-विजयकी आशाके उल्लासमें भरा हुआ हृदय लेकर इसी अहमदनगरसे रवाना हुआ था, तब वह उमंगके घोड़ेपर सवार था। वह सोचता था कि मैंने सैकड़ों युद्धोंमें भारतप्रसिद्ध सेनापतियोंका पराभव किया है, मेरी मुट्ठीमें सारे साम्राज्यका धन है, सैन्य है, और सामान है। बीजापुर, गोलकुण्डा और महाराष्ट्र यह तीन छोटे छोटे राज्य क्या वस्तु हैं, उन्हें तो चुटकीमें मसल डालूँगा। जब तक राज्योंसे टक्कर लगती रही, औरंगजेबकी आशा पूरी होती रही। बीजापुर और गोलकुण्डा राज्य थे, वह शाही सेनाकी ठोकरको न बर्दाश्त कर सके, परन्तु महाराष्ट्र तो केवल राज्य नहीं था, वह तो एक राष्ट्र था, जो स्वाधीनताकी मदिरासे उन्मत्त होकर खड़ा हो गया था। राज्यको परास्त करना आसान है, राष्ट्रको नहीं। मालूम नहीं, तेईस वर्ष ठोकरें खाकर भी औरंगज़ेबने इस सचाईको अनुभव किया या नहीं, शायद न किया हो, क्योंकि प्रायः शक्ति शक्तिशालियोंको अन्धा बना देती हैं और वह नहीं देख सकते कि वह काठसे लड़ रहे हैं या पौलादसे। राज्य एक काठका खिलौना है तो राष्ट्रीयताके भावसे भरा हुआ राष्ट्र एक पौलादी स्तम्भ है। पौलादी स्तम्भसे टकराकर बड़े बड़े मस्त हाथी सिर फोड़ लेते हैं। औरंगजेबकी भी उस समय यही दशा थी। उसने दो राज्योंपर आक्रमण किया और उन्हें आसानीसे जीत लिया, पर ज्यों ही वह राष्ट्रसे टकराया कि उसे लहूलुहान होकर वापिस जाना पड़ा।

अहमदनगरमें औरंगज़ेब लगभग एक वर्षतक जीवन और मृत्युके बीचमें लटकता रहा। उसके चारों ओर निराशाके बादल छा रहे थे। जो मुग़ल सिपाही दक्षिणमें पचास वर्ष पूर्व आये थे, उनके दिल टूट चुके थे। बहुत-से मर गये, जो शेष थे, वह घरको याद कर करके सर्द आहें लेते थे। विजयकी कोई आशा शेष

नहीं थी, रात और दिन मराठा घुड़सवारोंके आक्रमणका डर खाये डालता था। उन दिनों मुग़ल सिपाहियोंको दीवारों और दरख्तोंकी ओट मराठा भूत ही दिखाई देते थे। उस समयके लेखकोंने लिखा है कि शाही सेनाके सिपाही तो जीनेसे बेजार हो रहे थे। बाप घरसे विदा लेकर दक्षिणको फतह करने आया था, दक्षिणमें ही उसके बेटा हुआ, बाप मर गया, बेटा भी बूढ़ा होनेको था। वह भी लड़ रहा था, और देश वापिस जानेके लिए आहें भर रहा था। दक्षिणका सारा प्रदेश एक भयानक वीरान हो रहा था। उस समयके लेखकों और यात्रियोंने लिखा है कि दक्षिणके शहर खंडरातके ढेर रह गये थे, और गाँव उजाड़ हो गये थे। किसानोंके लिए दोनों ही यमदूत थे। मुग़ल सिपाही आयें तो खायें, मराठे आयें तो खायें। बेचारे घर-बार छोड़कर जंगलोंमें भाग रहे थे। दिनोंतक सफ़र करते जानेपर भी कहीं जलता हुआ चिराग दिखाई नहीं देता था। ऐसे बियाबानमें न जीतनेवाली सेना जीवित रह सकती है न हारनेवाली। मराठोंका तो वह घर था, वह भागकर कहीं न कहीं छुप ही जाते थे, परन्तु मुग़ल और राजपूत तो कर्मोंको रो रहे थे।

यह तो दशा थी सेनाकी, औरंगज़ेबके घरकी इससे भी बुरी दशा थी। उसने अपने पितापर जो अत्याचार किये थे, वह उसे जन्म-भर सताते रहे। वह अपने पुत्रोंकी छायासे डरता था। पुत्र भी उससे थरथर काँपते थ, पिता आर पुत्रोंके बीचमें प्रेमका कोई सम्बन्ध शेष नहीं रहा था। उनकी दशा ऐसे दुश्मनोंकी-सी हो गई थी, जिनकी म्यानमें सदा तलवार रहती है, और हाथ तलवारकी मुट्ठीपर रहता है। कहते हैं बुढ़ापेमें औरंगजेबके हृदयमें सबसे छोटे पुत्र कामबख्शके लिए कुछ प्रेम पैदा हुआ था, परन्तु वह भी अविश्वासकी कालिमासे कलंकित होता रहा। सबसे बड़ा लड़का मुहम्मद आलम तड़प तड़प कर मर गया। वह अपनी लड़की जेबुन्निसाको बहुत प्यार करता था, वह १७०२ में अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुकी थी। अकबर पितासे विद्रोह करके देश छोड़ भागा और परदेशमें ही गुज़र गया। आज़म और कामबख्श एक दूसरेकी जानके प्यासे हो रहे थे। पिताकी अन्तिम बीमारीमें वह अहमदनगरमें इकट्ठे हुए तो रात-दिन एक दूसरेकी हत्याकी ताकमें रहते थे। अन्तमें तंग आकर औरंगज़ेबने उन्हें सूबोंमें भेज दिया, ताकि वह एक दूसरेसे दूर हो जायँ। साम्राज्य और पुत्रोंका भविष्य उसे काला दिखाई देता था। शाहजहाँका शाप उसकी छातीपर यमदूतकी

तरह बैठा हुआ था। कहते हैं, साम्राज्यको घरू युद्धसे बचानेके लिए उसने सल्तनतको बेटोंमें बाँटनेकी वसीयत कर दी थी, परन्तु वह वसीयत रद्दी कागजोंके टोकरेसे कभी बाहिर न निकली।

औरंगज़ेबके पुराने मित्र और साथी, सब कालकी कोखमें जा चुके थे। अपनी महत्त्वाकांक्षा, और अविश्वासके बनाये हुए उस खंडहरमें बूढ़ा औरंगज़ेब अपने आपको अकेला ही खड़ा पाता था। उसे चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देता था। जिस सल्तनतके लिए पिताको कैद किया और तड़पा तड़पाकर मारा, जिसकी फ़िक्रमें बेटोंको दुश्मनोंसे भी अधिक दुश्मन समझा, जिसकी बढ़ोतरीके लिए हिन्दुओंपर कठोर अत्याचार किये, वह आलमगीर बादशाहको अँगुलियोंमेंसे सरकती दिखाई देती थी। वह देखता था, और लाचार था। आत्मा अशान्त थी, और चित्त व्याकुल था। अपने पुत्रोंको अन्तिम समयमें उसने जो पत्र लिखे, वह मनोविज्ञानके इतिहासकी विशेष सामग्री हैं। उसने आज़मको जो पत्र लिखा उसके प्रारम्भिक वाक्य निम्नलिखित हैं—

"परमात्मा तुम्हें शान्ति दे।

बुढ़ापा आ गया, निर्बलताने अधिकार जमा लिया और अंगोंमें शक्ति नहीं रही। मैं अकेला ही आया, और अकेला ही जा रहा हूँ। मुझे मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ और मैं क्या करता रहा हूँ। जितने दिन मैंने इबादतमें गुजारे हैं, उन्हें छोड़कर शेष सब दिनोंके लिए मैं दुःखी हूँ। मैंने अच्छी हुकूमत नहीं की, और किसानोंका कुछ नहीं बना सका। ऐसा कीमती जीवन व्यर्थ ही चला गया। मालिक मेरे घरमें था, पर मेरी अन्धकारसे आवृत आँखें उसे न देख सकीं।"

छोटे बेटे कामबख्शको बादशाहने लिखा था "मैं जा रहा हूँ और अपने साथ गुनाहों और उनकी सज़ाके बोझको लिये जा रहा हूँ। मुझे आश्चर्य यही है कि मैं अकेला आया था, परन्तु अब इन गुनाहोंके काफ़लेके साथ जा रहा हूँ। मुझे इस काफ़लेका खुदाके सिवा कोई रहनुमा नहीं दिखाई देता। सेना और बारबरदारीकी चिन्ता मेरे दिलको खाये जा रही है।"

२० फरवरी १७०८ के प्रातःकाल औरंगजेबने नियमपूर्वक नमाज पढ़ी, और तस्बीह फेरना तथा कलमा पढ़ना शुरू किया। धीरे धीरे, थका हुआ, और बीमारीसे क्षीण बूढ़ा शरीर चेतनाहीन होने लगा। साँसके आनेमें दिक्कत

होने लगी, परन्तु तस्वीहपर हाथ चलता ही गया, जबतक कि शरीरको प्राणोंने पूरी तरह नहीं छोड़ दिया। प्रातःकाल आठ बजेके लगभग औरंगज़ेबके प्राण-पखेरू नश्वर शरीरको छोड़कर उड़ गये।

औरंगज़ेब बड़ी आशाओंके साथ गद्दीपर बैठा था। मुग़ल-सम्राटकी गद्दी उस समयका एक आश्चर्य था। बाहिरकी दुनिया उसका नाम आदर और डरसे लेती थी। अकबरके पुत्र और पोतेने राज्यके खज़ानेको मोतियोंसे भर दिया था। मित्र अपनी मित्रतापर अभिमान करते थे, और शत्रु दबकर घोंसलेंमें बैठ गये थे। भारत-भरके राजा या तो मुग़ल शाहके अधीन थे, या विनीत मित्र थे। मुग़ल शाहज़ादे मोतियोंके ढेरोंमें लोटते थे।

ऐसी गद्दी थी जिसपर औरंगज़ेब आरूढ हुआ। परमात्माने उसे शासक बननेके योग्य गुण भी भरपूर दिये थे। वह युद्धमें वीर था, दूरदर्शी था, वीरताकी मूर्ति था, और सेनापति बननेकी स्वाभाविक प्रतिभा रखता था। निजू जीवनमें सादगी, परिश्रम और दृढ़ताका अवतार था। मुग़लोंके दोषोंसे सर्वथा वंचित न रहते हुए भी वह उन दोषोंका स्वामी था, दास नहीं। शराब उसने छोड़ दी थी, और स्त्रियोंमें आसक्त होकर भी उनका मालिक बनकर रहता था, गुलाम नहीं।

राजगद्दीपर बैठते समय तक उसकी वीरताकी धाक चारों ओर जम चुकी थी। शत्रु काँपते थे, वह अजेय समझा जाने लगा था। विशाल साम्राज्य, धनसे पूर्ण खजाना और शत्रुओंपर आतंक, इन तीन वस्तुओंसे बढ़कर कौन-सी वस्तु है जो एक शासकको अभीष्ट हो? औरंगज़ेब इन तीनोंको लेकर आया था। उसने लगभग ५० वर्षतक राज्य किया। ५० वर्षके अन्तमें हम क्या देखते हैं? जहाँ अमन था, वहाँ अशान्ति है। जहाँ आशा थी, वहाँ निराशा है। जहाँ महल थे वहाँ खंडरात हैं। राजपूत राज्यसे टूट चुके थे, मराठे यमदूतोंकी तरह मुग़लोंकी शक्तिकी छातीपर सवार थे, बुंदेलखंड स्वतन्त्र हो गया था, पंजाबमें सिक्ख सिर उठा रहे थे, सारे देशमें विद्रोहकी चिनगारियाँ दहक रही थीं। दक्षिणको जीतनेकी धुनमें बादशाहने उत्तरीय भारतसे विदा ली, उसने अतुल धन-सम्पत्ति और सैन्य-शक्तिको दक्षिणकी घाटियोंपर ला पटका। राज्य-कोष खाली हो गया, आगरा और दिल्लीके खज़ानेमें चूहे डंड पेलने लगे, मुग़ल सैन्यरूप उद्यानके अमूल्य फूल दक्षिणकी आबो हवामें जाकर मुरझा गये, परन्तु दक्षिण जीता न गया। लगभग २५ वर्ष तक हवासे लड़कर औरंगज़ेबको अन्तमें हार माननी पड़ी।

ऐसी शक्तियोंका ऐसा बुरा अन्त बहुत कम दिखाई देता है। उन असाधारण शक्तियोंने, जो औरंगज़ेबको मिली थीं, मुग़ल साम्राज्यके विशाल भवनकी छत और दीवारोंको आमूल हिला दिया। इस घटनाके कारणोंको यहाँ विस्तारसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं, इस पुस्तकके पाठक उन कारणोंसे भली प्रकार परिचित हो चुके हैं। वह मुख्यतः मनोविज्ञानिक थे। औरंगज़ेबका बड़ा भाई दारा राज्यका असली उत्तराधिकारी था। वह धार्मिक दृष्टिसे उदार और उन्नत स्वभावका था। अकबरकी नीति उसे पसन्द थी। हिन्दुओंका वह मित्र था। औरंगज़ेब उसका प्रतिद्वन्द्वी था। जब दोनों शाहज़ादोंमें संघर्ष हुआ तब स्वभावतः हिन्दू राजाओंका झुकाव दाराकी ओर हुआ और कट्टर मुसलमानोंका औरंगज़ेबकी ओर। औरंगज़ेब जीत गया, दाराके हिन्दू मित्र या तो अपने अपने घर जा बैठे या औरंगज़ेबके अधीन हो गये। झगड़ा तो समाप्त हो गया, परन्तु औरंगज़ेबके हृदयकी जलन समाप्त न हुई। वह भुला न सका। उसका हृदय इतना बड़ा नहीं था कि उसमें उन लोगोंके लिए भी स्थान मिल जाता जो शत्रु रह चुके थे। नतीजा यह हुआ कि वह सदाके लिए हिन्दुओंका शत्रु बन गया। उसने हिन्दुओंसे दारा-प्रेमका बदला लेनेकी ठान ली, हिन्दू-द्वेष उसकी रगरगमें व्याप गया। जो शासक अपनी प्रजाके किसी भागसे,—और फिर बड़े भागसे, गहरी दुश्मनी बाँध लेता है, उसकी किश्ती किसी न किसी चट्टानसे अवश्य टकराती है।

औरंगज़ेबके हृदयकी अनुदारता एक दूसरे रूपमें भी प्रकट होती थी। वह हरेकपर मौलिक रूपसे अविश्वास करता था। अविश्वास और शंका, यह उसके मनके स्थायी भाव थे। न वह अपने पुत्रपर पूरा विश्वास करता था और न सेनापतिपर। कभी कभी तो सन्देह होता है कि वह अपनी छायापर,—अपने आपपर भी पूरा भरोसा नहीं करता हो। ज्यों ज्यों आयु बढ़ती गई, उसके दुर्गुण दृढ़ और व्यापी होते गये। वह अधिक अविश्वासी, अधिक सन्देहशील और अधिक कट्टर मुसलमान होता गया। साथ ही साथ उसका राज्य अधिक अशान्त, अधिक विद्रोही और अधिक निर्धन होता गया। जिस साम्राज्यको अकबरकी उदारतापूर्ण वीरताने खड़ा किया था, उसे औरंगज़ेबकी अनुदारतापूर्ण वीरताने जड़से हिला दिया।

मुग़ल साम्राज्यके क्षयका प्रथम परिच्छेद औरंगज़ेबका राज्य-काल ही है।

वहादुरशाह

७—बहादुरशाह

औरंगज़ेब मर गया और अपने पीछे विद्रोही भारतवर्षको छोड़ गया। यदि स्वयं औरंगज़ेब भी उसे सँभालना चाहता तो न सँभाल सकता। हरेक प्रान्तमें और हरेक महकमेमें अव्यवस्थाका राज्य था। राजपूत बिगड़े हुए थे, जाटोंने नाकमें दम कर रखा था, मराठे आफत मचा रहे थे और सिक्ख पंजाबमें सिर उठा रहे थे। केवल हिन्दू ही अशान्त नहीं थे, केन्द्रकी निर्बलताके कारण मुसलमान सरदार भी कन्धेपरसे जुआ फेंकनेको तैयार बैठे थे। जौनपुर, इलाहाबाद, मालवा और उड़ीसाके पठान अपनी पुरानी सत्ताको कायम करनेके लिए उतावले हो रहे थे। सूबोंके शासक लाचार थे। न उनके पास सेना थी और न धन था कि बागियोंका दमन कर सकें। सेना और धन दक्षिणके युद्धोंके लिए निचोड़ लिये गये थे। केवल औरंगज़ेबके नामका दबदबा था जो सल्तनतके टुकड़ोंको टूटकर गिर जानेसे बचा रहा था। बूढ़ा औरंगज़ेब भी अब उस जीर्ण-शीर्ण ढाँचेकी रक्षा न कर सकता।

ऐसी सल्तनतकी राजगद्दीपर बैठनेके लिए तीन उम्मेदवार खड़े हुए। जीवित भाइयोंमेंसे सबसे बड़ा महम्मद मुअज्ज़म उस समय लगभग ७० वर्षकी उम्रका था। वह अफगानिस्तान और पंजाबका गवर्नर था। पेशावरसे १२ मीलकी दूरीपर जमरूदमें उसने पिताकी मृत्युका समाचार सुना और दिल्लीकी ओर यात्रा आरम्भ कर दी।

दूसरा उम्मेदवार आज़मशाह था। आज़मशाह पिताके सामने ही अपने आपको गद्दीका अधिकारी समझने लगा था। वह देखनेमें शानदार और तबीयतमें उग्र था। शेखी और अभिमान उसकी विशेषतायें थीं। वह औरंग-ज़ेबकी मृत्युके समय गुजरातके सूबेका गवर्नर था।

तीसरा उम्मेदवार औरंगज़ेबका सबसे छोटा और लाड़ला बेटा कामबख़्श था। वह बीजापुरका शासक था। वह अभी कच्चा था, दुनियाकी चोटें खाकर पका नहीं था। औरंगज़ेबको उसकी बहुत चिन्ता थी।

मृत्युसे पूर्व, कहा जाता है कि, औरंगज़ेबने अपनी एक वसीयत लिखी थी जिसमें सल्तनतको तीन हिस्सोंमें बाँटकर घरू युद्धको रोकनेकी चेष्टा की थी, परन्तु सन्तानके लिए पिताके शब्द इतने माननीय नहीं होते जितना उसका स्वयंका व्यवहार। औरंगज़ेबके पुत्र भला आधे या एक तिहाईसे कब सन्तुष्ट होनेवाले थे!

मुअज्ज़मने तो आज़मको लिखा भी था कि यदि शान्तिपूर्वक सल्तनतको बाँट लिया जाय तो अच्छा है, पर उसने उत्तर दिया था कि

"दस ग़रीब आदमी एक ही चादरमें आरामसे सो सकते हैं,
परन्तु एक सल्तनतमें दो बादशाह नहीं रह सकते।"

हिस्सा बाँटनेकी बाबत उसका जवाब था कि

"मेरा हिस्सा फर्शसे छत तक है, और तुम्हारा छतसे अन्तरिक्ष तक।"

जहाँ ऐसे अच्छे और बराबर हिस्से बँट रहे हों, वहाँ युद्धको कौन रोक सकता था? मुग़लोंके नाशका एक बड़ा कारण घरू युद्ध था जिसका दौरा हर राज्यकी समाप्तिपर या उससे कुछ पूर्व आता था। औरंगज़ेबकी वसीयत उस दौरेको न रोक सकी।

भाईकी भाईसे लड़ाई हुई, परन्तु यही बहुत समझो कि झगड़ा जल्दी निबट गया। मुहम्मद मुअज्ज़मको आज़मशाह बनिया कहा करता था परन्तु मुअज्ज़मने इस समय बड़ी फुर्तीसे काम किया। अपने लड़कोंको आगे भेजकर स्वयं लाहोरके सारे खजानेके साथ दिल्लीकी ओर रवाना हो गया। उधर आज़मशाहने, इस विश्वाससे कि बादशाहके प्रधान सेनापति और सिपाही उसके साथ हैं, बड़ी शानसे झूमते-झामते उत्तरकी ओर यात्रा आरम्भ की। उसे अपनी वीरता और मुअज्ज़मकी कायरतापर विश्वास था। लड़ाई देरतक न चली। पहली ही झपटमें समाप्त हो गई। मुअज्ज़मने आज़मसे पहले आगरेपर कब्ज़ा कर लिया और आगे बढ़कर धौलपुरके समीप आज़मका रास्ता रोका। घमासान लड़ाई हुई जिसमें आज़म गोलीसे मारा गया। आलमगीर बादशाहकी चुनी हुई फौज धूपमें बर्फकी तरह पिघल गई। मुहम्मद मुअज्ज़म 'शाह आलम' नाम रखकर दिल्लीकी गद्दीपर आरूढ़ हुआ।

कामबख़्शने दक्षिणमें ही पिताकी मृत्युका संवाद सुना। प्रत्येक मुग़ल राजकुमार अपने आपको गद्दीका अधिकारी समझता था। कामबख़्शने भी शीघ्र ही 'दीन-पनाह'की उपाधि धारण कर ली और अपने नामके सिक्के ज़ारी कर दिये। तर्कबख़ाँ और अहसानखाँ नामके दो सरदार उसके मुख्य सहायक थे। कामबख़्शने आगरा और दिल्लीपर कब्ज़ा करनेसे पहले उचित समझा कि दक्षिणको पूरी तरह जीत लिया जाय। उसने बहुत-सा समय दाक्षिणके नगर और किलेंके जीतनेमें

व्यतीत कर दिया। इसी बीचमें उसके सलाहकारोंमें झगड़ा हो गया। तकर्रबखाँ और अहसानखाँमें खटपट हो गई। कामबख्श लाड़से बिगड़ा हुआ हठी युवक था। वह धूर्त आदमियोंकी चालाकीमें बहुत आसानीसे आ जाता था। अहसानखाँ वीर था, परन्तु तकर्रबखाँ चालबाज़ था। अहसानखाँ लड़ता था और किले जीतता था और तकर्रबखाँ उसकी जड़ोंमें दीमक लगाता था। उसने कामबख्शके खूब कान भरे और उसे विश्वास दिला दिया कि अहसानखाँ शक्ति पैदा करके अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। बस फिर क्या था, मुग़लका खून उबल पड़ा। कामबख्शने घोर निर्दयता दिखाई। अहसानखाँके साथी रुस्तमअलीखाँको कामबख्शने धीरेसे अपने डेरेपर बुलाकर कैद कर लिया, उसके हाथ पैर बाँध दिये और उसे मस्त हाथीके सामने कुचले जानेके लिए डाल दिया। हाथीपर अंकुशपर अंकुश चलाये गये, पर वह अपने मालिक-पर पाँव धरनेको उद्यत न हुआ। तब एक और मस्त हाथीको लाकर रुस्तमपरसे गुजारा गया, जब वह पिसकर मर गया तो उसकी लाश शहरभरमें घुमाकर मुग़ल वंशकी क्रूर प्रकृतिकी प्रदर्शिनी की गई।

अहसानखाँके दूसरे साथीका नाम सैफ़खाँ था। वह कामबख्शका धनुर्विद्यामें गुरु था। उसने राजकुमारको तीर चलाना सिखाया था। वह भी गिरिफ्तार किया गया। उसपर यह दोष लगाया गया था कि वह बादशाह कामबख्शके विरुद्ध चिट्ठियाँ लिखता है, इस कारण उसके हाथको अधिक दोषी ठहराया गया। हुक्म हुआ कि सैफ़खाँका दाहिना हाथ काट डाला जाय। बेचारे सैफ़खाँने कामबख्शसे प्रार्थना की कि जिस हाथने तुम्हें धनुष सँभालना सिखाया था उसे मत कटवाओ परन्तु वह बादशाह ही क्या जिसमें कृतज्ञताका भाव हो! दाहिना हाथ काट डाला गया। तब सैफ़खाँने कामबख्शको कोसना शुरू किया और उसे वेश्यापुत्रके नामसे पुकारा, क्यों कि उसकी माता उदयपुरी बेगम पहले दाराशिकोहके हरममें नाचनेका काम करती थी। तब हुक्म हुआ कि सैफ़खाँको बाँधकर जमीनपर गिरा दिया जाय और उसपर घोड़े भगाये जायँ, जबतक कि वह मर न जाय। इससे पूर्व उसकी जीभ भी निकाल दी गई थी। घोड़ोंको बहुत भागना न पड़ा, बे-हाथ और बे-जीभका मांस-पिंड शीघ्र ही कुचला जाकर निर्जीव हो गया। लाशको गधेपर बाँधकर बाजारोंमें घुमाया गया ताकि दुनिया जान ले कि बादशाहके क्रोधका क्या परिणाम होता है।

अहसानखाँको मारनेका दूसरा उपाय किया गया। उसे कैदी बनाकर भूखा

मारा गया। भोजनकी मात्रा बहुत थोड़ी रक्खी गई, बीचबीचमें ज़हर भी मिला दिया जाता था, ज़ंजीरोंसे बाँधकर धूप और वर्षामें खड़ा कर दिया जाता था। और भी बहुत-से नये अत्याचारोंका आविष्कार किया गया जिन्होंने तड़पा तड़पाकर बेचारे अहसानखाँका अन्त कर दिया। शक्तिशाली लोग अहसानको कितना मानते हैं, यह कामबख्शके सेवक अहसानखाँने अपने जीवन और मरणसे खूब दिखा दिया।

अहसानखाँ और उसके साथियोंकी यातनाओंने कामबख्शकी सेनामें त्रास फैला दिया। सेनापति और सिपाही अपनी जान बचाकर भागने लगे। उधर बहादुरशाह कामबख्शसे आखिरी फैसला करनेके लिए उत्तरीय भारतसे दक्षिणकी ओर चल चुका था। नर्मदा पार करनेपर उसने कामबख्शको एक सुलहकी चिट्ठी लिखी जिसमें आज़मशाहके पराजयका समाचार देते हुए कामबख्शको विश्वास दिलाया कि यदि वह केवल दक्षिणसे सन्तुष्ट हो जाय और सारे साम्राज्यका दावा न करे तो बहादुरशाह और वह प्रेमसे रह सकते हैं। कामबख्शके पास अब लड़नेकी सामग्री कम हो गई थी, परन्तु उसे भरोसा था अपने नजूमियोंका। उसे ज्योतिषपर बड़ा विश्वास था। ज्योतिषियोंने उसे विश्वास दिलाया था कि भारतका सम्राट् वही बनेगा। जब निश्चय हो गया कि साम्राज्य उसे मिलनेवाला है तो फिर सेनाकी क्या आवश्यकता थी? ज्योतिषीके कथनानुसार भावी साम्राज्यकी सुख-निद्रामें मस्त कामबख्शने बहादुरशाहके पत्रका उत्तर तक न दिया।

हैद्राबादके समीप दोनों भाइयोंमें जंग हुआ। बहादुरशाहके योद्धा लाखोंकी गिनतीमें थे, कामबख्शके सिपाही ७०० से अधिक नहीं बतलाये जाते। कामबख्श और उसके तीन पुत्र घायल होकर पकड़े गये। इतना लिख देना आवश्यक है कि कामबख्शने मृत्युके समय मुग़लोंकी वंशज वीरताका खूब परिचय दिया। जिस स्थानपर वह बेहोश हुआ वहाँ इतिहासलेखक खाफीखाँने बासठ लाशें गिनी थीं। जब घायल भाईको बहादुरशाहके पास लाया गया तो बड़े भाईने उसे बहुत-सा प्रेमोपालम्भ दिया, आँसू बहाये, अपने हाथोंसे मरहम-पट्टी की, अपना दुशाला उतारकर उढ़ाया और हर प्रकारसे यत्न किया कि वह बच जाय। परन्तु जो आघात हुए थे, वह बहुत गहरे थे। उसी रात कामबख्श असफल मुग़ल राजकुमारोंकी गतिको प्राप्त हो गया।

इस प्रकार दो भाइयोंकी लाशोंपर पाँव रखकर बहादुरशाह साम्राज्यका स्वामी हुआ।

८—भारतका चित्रपट

अबतक हम मुग़ल साम्राज्यके जीवनके ऐसे समयका इतिहास लिख रहे थे जिसमें आहिस्ता आहिस्ता क्षयके उन कीटाणुओंने गुप्त रूपसे प्रवेश किया जो भविष्यमें घातक सिद्ध होनेवाले थे। अब हम क्षय रोगकी दूसरी दशापर पहुँच गये हैं। औरंगज़ेबके पीछे रोगके कीटाणु शरीर-भरमें व्याप्त हो गये, और रोगके लक्षण व्यक्त होने लगे। उस दशाका इतिहास लिखनेसे पूर्व हम यह दिखाना आवश्यक समझते हैं कि उस समय देशकी परिस्थिति कैसी थी। प्रजाकी दशा क्षयके कीटाणुओंको ग्रहण करने योग्य थी या नहीं? मुग़ल साम्राज्यके स्तम्भ दृढ थे या निर्बल हो गये थे? इन प्रश्नोंका उत्तर देकर ही हम स्पष्टतासे दिखा सकेंगे कि बाबरका बनाया और अकबरका दृढ किया हुआ साम्राज्य, जो एक समय फौलादका बना हुआ मालूम होता था, रेतकी दीवारकी तरह क्यों गिरने लगा?

मुहम्मद ग़ौरीसे लेकर बाबर तक जितने आक्रमणकारियोंने भारतपर विजय प्राप्त की, उनकी सबसे बड़ी सहायक शक्ति तत्कालीन हिन्दुओंकी निर्बलता थी। वह निर्बलता निम्नलिखित रूपोंमें प्रकट होती थी—

(१) यद्यपि नामको सब हिन्दू थे, तो भी सम्प्रदाय और जातिके अनेक भेदोंके कारण वह समानताका उतना अनुभव नहीं करते थे जितना भिन्नताका। भिन्न प्रान्त, भिन्न सम्प्रदाय और भिन्न जातिके लोग एक दूसरेको प्रायः उसी दृष्टिसे देखते थे जिससे आजकल विदेशियोंको देखा जाता है। राजपूतानेके एक चौहान या राठौरकी दृष्टिमें गुजरातका भाटिया एक परदेशी और विधर्मीकी हैसियत ही रखता था। हिन्दुत्वका भी कोई बन्धन है, ऐसी कल्पना उन लोगोंके हृदयोंमें नहीं थी। इतना ही नहीं, एक कुलका राजपूत दूसरे कुलको अपनेपनसे नहीं देखता था। धार्मिक दृष्टिसे हिन्दू एक दूसरेसे दूर हटते थे, पास जानेसे जो परस्पर सहानुभूति पैदा होती है, उसका सर्वथा अभाव था।

(२) राजनीतिक दृष्टिसे भारतवर्ष टुकड़ोंमें बँटा हुआ था। छोटे छोटे राज्य थे जिनके राजा पड़ोसी राज्यको अपना सहज-शत्रु समझते थे, इस कारण उसका नाश चाहते थे। सीमा-प्रान्तसे मिले हुए राज्यका नाश होते हुए देखकर वह हर्षित होते थे, फिर वह नाश चाहे किसी साधनसे हो जाय। यदि विदेशी आक्रमणसे पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी नष्ट हो जाय तो उनमेंसे अनेक राजा यही समझते

थे कि चलो अच्छा हुआ, साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी! राजनीतिक दृष्टिसे देशको एक समझनेकी भावना ही उन लोगोंमें पैदा नहीं हुई थी। केवल एक राज्य या कुलसे उपेक्षा हो इतना ही नहीं था, एक ही राज्यके शासक और प्रजामें सिवा शासित-शासकके कोई दूसरा सम्बन्ध नहीं था। साधारण प्रजा मेहनत करती और जीती थी, राज्य करना उन वंशोंका कार्य समझा जाता था जो राज्य करते आये थे।

(३) धर्म और राष्ट्रकी एकत्व-भावनाके न होनेसे उस समयका भारत छिन्न-भिन्न था। यदि एकताकी शक्तिका सहारा मिल जाता तो वह बहुत-सी निर्बलतायें, जो भारतवासियोंमें आगई थीं, सम्भवतः छुप जातीं। परन्तु, वह बुराइयाँ भी कुछ कम न थीं, हिन्दुओंका समाजरूपी तालाब चिरकाल तक अपनी सीमाओंमें परिमित रहनेके कारण सड़ गया था। उसमें बदबू पैदा हो गई थी। बाहरकी वायुका संसर्ग न होनेसे उसमें परिवर्तनकी शक्ति नहीं थी। सदियोंके एकान्त सुखने शरीरको निर्बल और जड़-सा बना दिया था। भारतके अधिकांश हिस्सोंका जल-वायु वर्षके कई महीनोंमें रोगपूर्ण रहता है। उससे भारतवासी शरीर क्रमसे थोड़ा थोड़ा क्षीण होता जाता है। भारतकी अधिक रोग-संख्या और मृत्युका यह एक प्रधान कारण है। किसी मलेरियाहीन प्रदेशसे आये हुए विदेशियोंका साधारण स्वास्थ्य इसी कारण भारतके साधारण स्वास्थ्यकी अपेक्षा अच्छा रहता है।

(४) उस समयके भारतके हिन्दू सिपाहियोंमें एक बड़ा दोष, और घातक दोष, यह था कि राष्ट्रकी रक्षा कुछ श्रेणियों या कुलोंका कार्य समझा जाता था। प्रत्येक हिन्दू राज्यकी रक्षामें अपनापन अनुभव नहीं करता था क्योंकि राज्य करनेवाले वंश अपने आपको प्रजासे बहुत ऊँचा समझते थे। शासक और शासितके मध्यमें एक भारी खाई थी। लश्कर राज्यकी रक्षा करना एक विशेष श्रेणीका कार्य समझा जाता था। उसके हारने, जीतने या मरनेसे साधारण प्रजा अपना कोई सम्बन्ध न समझती थी। अवश्यंभावी परिणाम यह था कि किसी राज्यकी रक्षिका शक्ति बहुत ही परिमित थी।

जब उत्तरके पर्वतोंने इस्लामके योद्धाओंके लिए अपने द्वार खोले तब भारतके निवासी उपर्युक्त कारणोंसे इस योग्य नहीं थे कि किसी बड़े आघातको सह सकते। भारतवासी धार्मिक दृष्टिसे छिन्न-भिन्न थे, आक्रमणकारी एक खुदा, एक

रसूल और एक नये विश्वासकी संजीवनी सुधा पीकर मदमस्त हो रहे थे। भारतवासी एक भारतीय राष्ट्रकी भावनासे शून्य थे, उत्तरसे आनेवाले मुसलमान विजेता संसार-भरमें एक इस्लामी हुकूमत कायम करनेकी दुर्दम अभिलाषासे प्रेरित थे। भारतवासियोंको चिरकालीन सुखी और सीमाबद्ध जीवनने निर्बल बना दिया था। आक्रमण करनेवाले उस प्रदेशके निवासी थे जहाँ दिनको परिश्रमसे थककर रातको भोजनसे पेट भरा जा सकता है। उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट, और उनकी आदतें लड़ाकुओंकी-सी थीं। भारतवासियोंकी अधिकांश श्रेणियाँ राज्यको चलाना या राज्यकी रक्षा करना थोड़े-से लोगोंका काम समझती थीं और शासकोंकी पराजयको उदासीन भावसे देखती थीं। इस्लामी सेनाका प्रत्येक सिपाही अपने आपको रसूलका सिपाही और इस्लामका झंडाबरदार मानता था, और कुफ्रको मिटाना अपने दीनका अंग समझता था। ऐसे दो विरोधियोंकी टक्करका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था। भारतका राष्ट्रीय शरीर निर्बल और असम्बद्ध होनेके कारण उत्तरके आक्रमणकारियोंके सामने खड़ा न रह सका।

मुसलमान विजेता एक दूसरेके पश्चात् आते रहे और भारतपर विजय प्राप्त करते रहे। भारतके कई प्रदेशों और कई श्रेणियोंने बहुत प्रचण्ड सामना किया, अद्भुत वीरता दिखाई, संसारको चमत्कृत कर देनेवाले साहसका प्रदर्शन किया और भारतके इतिहासके कई स्मरणीय पृष्ठ अपने रुधिरसे अंकित किये, परन्तु व्यापक और मौलिक निर्बलताओंको व्यक्ति या श्रेणीके गुण न धो सके। वह दुर्दम साहसिकता और वह अमानुषिक वीरता बिजलीकी तरह चमक कर लुप्त हो गई। शेष वही अँधेरा रह गया जो जातिकी व्यापक निर्बलताओंका फल था।

मुसलमान भारतके मध्यभागमें स्थायी हो गये। उनका राज-दण्ड हिमाचलसे विंध्याचलतक और पूर्वीय समुद्रसे पश्चिमी समुद्रतक घूमने लगा। दक्षिणमें धीरे धीरे उनका प्रवेश हो गया। अकबरके उत्तराधिकारियोंके समयमें लगभग सारा भारतवर्ष मुसलमान राजाओंके प्रभावमें आ गया।

मुसलमानोंके कई राजवंशोंने दिल्ली और आगरेसे भारतपर हुकूमत की। जैसे सिनेमाके पर्देपर दृश्य बदलते रहते हैं वैसे ही उस समयके राजनीतिक चित्रपट-पर भी बहुत तीव्र गतिसे दृश्य बदलते रहे। केवल मुग़लोंके समयमें हुकूमतकी

कुछ स्थिरता दिखाई दी। मुसलमान राजवंशोंके बहुत शीघ्र शीघ्र बदलनेका कारण यह था कि भारतमें मुसलमानोंकी शक्तिके स्थापित होनेका बड़ा कारण विजेताओंकी नैतिक, आर्थिक या सैनिक शक्तिकी उच्चता नहीं थी, अपितु भारतवासियोंकी शक्तियोंका बिखरना और एकत्व-भावनाका अभाव था। उन राजवंशोंमेंसे इस योग्य कोई भी न था जो राज्यको चला सकता। इस कारण वह तूफ़ानकी तरह उठते और तूफ़ानकी ही तरह उड़ते रहे।

मुग़ल बादशाहोंने राज्यके ढंगको बदला। पहले मुसलमान बादशाहत भारत-वर्षमें सेनाके शिविरकी भाँति रहती थी। डेरे और घरमें यही भेद होता है कि डेरा उठ जाता है, घर अपेक्षया स्थायी रहता है। अकबरने भारतको घर बनाया; उसने घरवालोंसे मिलकर स्वामी रूपसे भारतमें हुकूमत करनेकी बुनियाद डाली। जिन साधनों और उपायोंसे अकबरने मुग़ल सल्तनतको भारतमें दृढ़ किया, उनकी चर्चा हम पहले भागमें कर चुके हैं, उनके दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। अकबरकी वीरतापूर्ण उदार नीतिका फल यह हुआ कि भारतवर्ष मुसलमानोंका घर बन गया। घरवाले हुकूमतमें साथी हो गये। प्रारम्भिक मुसलमान विजेताओंके कट्टर शत्रु राजपूत मुग़ल साम्राज्यके प्रधान स्तम्भ बन गये। इस्लामकी जीवन-धारा परोक्ष रूपसे हिन्दुत्वकी जीवन-धाराके साथ मिलने लगी। प्रायः जीवनके सभी क्षेत्रोंमें विजेताओं और विजितोंका सम्पर्क होने लगा।

इस सम्पर्कने एक नया ही कार्य-कारण-चक्र पैदा किया। हिन्दुत्व और इस्लामने एक दूसरेमें एक क्रिया पैदा की जिसकी प्रतिक्रियाका उत्पन्न होना आवश्यक था। अकबरकी नीतिके बड़े अंग तीन थे। वह राजपूतोंको मुग़ल राज्यका मित्र बनाना चाहता था, अपने राज्यको केवल इस्लामी न रखकर हिन्दुस्तानी बनानेका यत्न करता था और धार्मिक भिन्नताका नाश करके धार्मिक एकता पैदा करनेकी चेष्टा करता था। कुछ समयके लिए उसे इन तीनों दिशाओंमें बहुत-कुछ सफलता प्राप्त हुई। सदा उड़ते हुएसे मुसलमानी राज्यके पंख कट गये और वह भारत-भूमिपर आरामसे बैठता दिखाई देने लगा। देशमें अमन हो गया। बणिज-व्यापार बढ़ने लगा। लुटनेका डर कम हो जानेसे किसान लोग कोठोंमें अनाज भरने लगे। कारोबार चमक उठा। लड़ाई-झगड़ोंकी कमीसे सिपाहियोंका पेशा कुछ कम हो गया। वह लोग भी हथियार

छोड़कर घर आबाद करने लगे। शान्त वातावरणमें मुसलमान लोग भी संग्रामकी छोलदारियोंसे निकलकर महलोंमें बसने लगे।

यह परिस्थिति मुग़ल साम्राज्यके लिए अनुकूल, परन्तु मुसलमानोंकी युद्ध-शक्तिके लिए हानिकारक सिद्ध हुई। अकबर और उसके दो उत्तराधिकारियोंके सुव्यवस्थित, शान्त और धन-धान्य-पूर्ण राज्यमें मुसलमानोंमें बहुत परिवर्तन आ गया। वह जब आये थे तब मोटा पहिरने, मोटा खाने और लड़ाकूपनकी कमाई खानेवाले अक्खड़ सिपाही थे, सदियोंके सुख और गरम जल-वायुसे शिथिल पड़े हुए हिन्दुस्तानी उनका सामना न कर सके। तीन राज्योंके शान्तिपूर्ण और ऐश्वर्यशाली जीवनसे उनकी दशा बहुत बदल गई थी। बादशाहसे लेकर साधारण सिपाहियों तकको ऐश्वर्यसे पैदा होनेवाली कोमलता और विलासिताने दबा लिया था। उस समयके यात्रियोंके लिखे हुए वृत्तान्तोंको पढ़ो तो प्रतीत होता है कि मुग़ल बादशाह विलासिताका पुतला था और मुसलमान सरदार छोटे मुग़ल बादशाह थे। शराब, शिकार और नाच-रंगमें उनके दिनका बड़ा भाग व्यतीत होता था। जहाँगीरका दिन प्रायः मद्यकी मस्ती और बेहोशीमें ही समाप्त होता था। शाहजहाँ युवराज होनेकी दशामें चाहे कितना ही क्रियाशील और लड़ाकू रहा हो, राजा बनकर तो वह उदार रंगीला ही रह गया था। यथा राजा तथा प्रजा। हरेक मुसलमान सरदार अपने आपको छोटा बादशाह समझता था। सूबोंके शासक तो कहीं कहीं बादशाहसे बढ़कर शान रखते थे। वह भी धन और शक्ति पाकर विलासिताके सरोवरमें डुबकियाँ लेने लगे। सस्ती शराब और जीते हुए प्रदेशोंकी सुन्दर रमणियोंने उनकी कठोरताको धो दिया। वह आराम-पसन्द दरबारी बन गये।

औरंगजेब यद्यपि मुग़लोंके आचार-सम्बन्धी दोषोंसे सर्वथा हीन तो नहीं था, परन्तु फिर भी विलासितामें नाक तक डूबा हुआ नहीं था। उसने सुधार तो करना चाहा, परन्तु उसकी आँखोंपर 'अहम्' का ऐसा मोटा पर्दा पड़ा हुआ था कि वह दूसरोंकी मनोवृत्ति और मनुष्य-प्रवृत्तिके असली रूपको देखनेमें सर्वथा असमर्थ हो गया था। वह सुधार करनेके लिए सुधारका यत्न नहीं कर रहा था; अपितु हरेक व्यक्तिको अपने विचारके अनुसार पक्का मुसलमान बनानेके लिए ऐसी आज्ञायें प्रचारित कर रहा था जिनमें अच्छी भी

थीं और बुरी भी। उसके लिए शराब इसलिए बुरी नहीं थी कि उससे मनुष्य पशु बन जाता है, बल्कि इसलिए बुरी थी कि वह मुसलमानके लिए हराम है। इसी दलीलसे संगीत, चित्र-विद्या और ऐसी ही अन्य ललित कलायें भी गुनाह बना दी गई थीं। वही मनुष्य दूसरेका सुधार कर सकता है जो दूसरेसे सहानुभूति रखता हो, उसके दोषोंको दोष समझकर दूर करना चाहता हो। औरंगज़ेब दूसरेको रंगीन ऐनकके बिना देख ही नहीं सकता था। इस कारण वह लाख सिर पीटकर भी अपने दरबारका और मुसलमान सरदारोंका सुधार न कर सका। बड़ी कड़ी आज्ञाओंकी उपस्थितिमें भी बादशाहके किलेमें ही शराबके दरिया बहते थे और रईसोंके घरघरमें संगीत और नाच होता था। औरंगज़ेब अपनी आज्ञाओंपर मस्त था, और उसके समीप रहनेवाले लोग भी बेफिक्रीसे उन आज्ञाओंको तोड़नेमें मस्त थे और बादशाहकी जड़तापर हँसते थे।

जब प्रान्तोंके शासक, सेनाओंके सरदार और शाहज़ादे अय्याशीके अवतार बने हुए थे, तो सिपाहियों और दरबारियोंकी दशा कैसे सुधर सकती थी! हरेक मुसलमान सिपाही छोटा सरदार था। वह हिन्दुस्तानकी जल-वायुसे अधिकसे अधिक सुख लेना चाहता था।

जब औरंगज़ेबकी धर्मान्धता और अविश्वाससे पूर्ण नीतिने भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें विद्रोहकी आग प्रचण्ड की तब मुसलमानोंकी अवस्था बहुत बदल चुकी थी। मुहम्मद ग़ौरी और बाबरके समयके कठोर अक्खड़ सिपाही मदिरा और मोहिनीके दास होनेके साथ साथ हिन्दुस्तानके गर्म जल-वायुके भी शिकार हो चुके थे। उनमें प्रायः वह दोष आ चुके थे जिन्होंने मुसलमानोंके आनेसे पूर्व हिन्दुओंको निर्बल बनाया था। सुख और शान्तिने उन्हें विलासी और स्वार्थ-परायण बना दिया। वह संघ-शक्ति, जो सफलताकी जान है, व्यक्तिगत सुख-कामनापर स्वाहा हो चुकी थी। औरंगज़ेबके समयतक मुग़ल साम्राज्यके शरीरमें क्षयके कीटाणु धीरे धीरे प्रवेश करते रहे, उसके पश्चात् उन्होंने घातकरूप धारण किया। अब वह विशाल समृद्धिशाली साम्राज्य विनाशकी ओर बह चला। ऐश्वर्य, महत्त्वाकांक्षा और धर्मान्धता किसी जातिको विनाशकी ओर कैसे ले जा सकती है, इसका जाज्वल्यमान उदाहरण तलाश करना हो तो मुग़ल साम्राज्यके अन्तिम दिनोंके इतिहासको पढ़िए।

८-बन्दा वैरागीका खूनी बदला

यह संसारका जीवित आश्चर्य है कि मनन करनेवाले मनुष्योंकी जाति भी प्रायः मानसिक आवेगोंकी क्रियां और प्रतिक्रियाके थपेड़ोंसे प्रभावित होकर ही इतिहासको बनाती है। किसी मनुष्यकी मनुष्यसे और जातिकी जातिसे शत्रुता या मित्रता विवेकका नहीं, अज्ञेय भावुकताका ही परिणाम होती है, जिससे मनोरंजक इतिहास उत्पन्न होता है। सदियोंतक इंग्लैण्ड और फ्रांसमें शत्रुता रही। दोनोंको एक दूसरेसे शिकायतें थीं, दोनोंके हृदय प्रतिहिंसाके भावसे भरे हुए थे। इस बीचमें जर्मनी और फ्रांसमें प्रतिस्पर्द्धा पैदा हुई, इंग्लैण्ड फ्रांसका दोस्त बन गया। सदियोंकी शत्रुता शान्त हो गई। अब न प्रतिहिंसाका भाव है और न विरोधका। अब तो अनन्य-मित्रता है। यह भावुकताकी महिमा है।

एक बार शत्रुता पैदा हो गई तो फिर मानसिक आवेगोंकी कोई सीमा नहीं रहती। प्रेमकी प्रतिक्रिया प्रेम और हिंसाकी प्रतिक्रिया हिंसा है। क्रियासे प्रतिक्रिया बढ़ जाती है। अकबरकी राजनीतिका मूल मंत्र विश्वास और प्रेम था। विश्वासने विश्वासको पैदा किया, कभी न झुकनेवाले राजपूत न केवल झुक गये, वरन् साम्राज्यके सहारे बन गये। मुग़ल और राजपूत वंश एक दूसरेके अनन्य-साथी प्रतीत होने लगे। औरंगज़ेबकी नीति इससे उल्टी थी। उसकी नीतिका मूल मंत्र था अविश्वास और बलात्कार। प्रतिक्रिया भी वैसी ही हुई। सारा देश विद्रोहकी दावाग्निसे प्रज्वलित हो उठा। शिकायतोंके ढेर लग गये। अत्याचारोंका द्वार खुल गया। एक दूसरेको अधिकसे अधिक हानि पहुँचाने और दुख देनेकी प्रचण्ड कामना पैदा हो गई।

बढ़े हुए हार्दिक आवेग बुरे मार्गपर चलकर कैसा अंधेर मचाते हैं, हिंसासे कैसी प्रतिहिंसा पैदा होती है, क़ुदरत अपने एक मनुष्यरूपी औज़ारके किये हुए अत्याचारका बदला दूसरे मनुष्यरूपी औज़ारसे ही कैसे लेती है, इसका एक बढ़िया दृष्टान्त इस परिच्छेदकी रक्त-रंजित कथामें मिलेगा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि इस पुस्तकके दूसरे भागके तेरहवें परिच्छेदमें हमने सरहन्दके मुसलमान गवर्नरद्वारा गुरु गोविन्दसिंहके दो पुत्रोंके वधकी ओर निर्देश किया था। अब उस कहानीको विस्तारसे सुनानेका अवसर आ गया है।

जब गुरु गोविन्दसिंहका सितारा चमक रहा था और सतलजके किनारे रोपड़तक उनका विजयी हाथ फैल चुका था, तब औरंगज़ेबकी आज्ञासे लाहौरके मुसलमान सूबेदारने गुरुकी सेनाओंपर आक्रमण किया। गुरुने बड़ी वीरतासे सामना किया परन्तु विरोधीकी सेनायें अधिक थीं, उन्होंने गुरुको माखोवालमें घेर लिया। गुरुकी माता गूजरी और ज़ेरावरसिंह तथा फतेहसिंह नामके दो पुत्र घेरेमेंसे निकल गये और सरहन्दमें उन्होंने एक हिन्दू शिष्यके घरमें जाकर आश्रय लिया। फौजदार वज़ीरखाँका दीवान कुलजस नामका हिन्दू था। उसे तीनोंकी टोह लग गई। उसने उन्हें वज़ीरखाँके दरबारमें पेश कर दिया। स्त्री और बच्चोंको मारना धर्म-विरुद्ध मान कर वज़ीरखाँने उस समय तो उन्हें केवल बन्दी कर लिया, परन्तु एक दिन बात-ही-बातमें उसका मज़हबी जुनून भड़क उठा। वज़ीरखाँने लड़कोंसे पूछा कि

"लड़को, यदि तुम्हें छोड़ दिया जाय तो तुम क्या करोगे?"

शेरके लड़कोंने जवाब दिया "हम सिक्खोंको इकठा करेंगे, उन्हें हथियार देकर तुमसे लड़ायँगे और तुम्हें मार देंगे।"

वज़ीरखाँने फिर कहा कि "यदि तुम हार गये तो फिर क्या करोगे?"

लड़कोंने जवाब दिया कि "हम फिर सेनाओंको इकठा करेंगे, फिर या तो तुम्हें मार देंगे या स्वयं मर जायँगे।"

इसपर फौज़दारका क्रोध चमक उठा। कहते हैं कि क्रोधित फौज़दारने उन्हें हुक्म दिया कि "या तो तुम इस्लामको स्वीकार करो, अन्यथा तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा।" लड़कोंने धर्मको छोड़ना स्वीकार न किया। फौज़दारकी आज्ञासे उन्हें बड़ा भयानक मृत्युदण्ड दिया गया। कहा जाता है कि उन्हें दीवारमें चुनवा दिया गया। माता गूजरी पोतोंकी मृत्युके धक्केको न सह सकी। इसी दुःखसे उसकी मृत्यु हो गई।

गुरुके बच्चोंका बलिदान सिक्खोंके हृदयोंमें कीलकी तरह चुभ गया। पन्थमें एक बदलेकी भूख पैदा हो गई जिसे शान्त करना आसान नहीं था। वज़ीरखाँके क्रूर कर्मने सिक्खोंके हृदयोंमें जो प्रतिक्रिया पैदा की, उसका रूप भी कुछ कम क्रूर या भयानक न था।

मृत्युसे कुछ समय पूर्व दक्षिणकी यात्राके प्रसंगसे जब गुरु नाँदेड़में पहुँचे, तो एक बैरागी साधुसे उनकी भेंट हुई। बैरागीका नाम माधवदास था। वह एक

वैरागियोंके मठका महन्त था और पूरे शाही ठाठसे रहता था। वह विद्वान् और प्रतिभासम्पन्न था। शिष्योंका विश्वास था कि महन्त माधवदासमें चमत्कार करनेकी दिव्य शक्ति है। गुरु और महन्त मानो एक दूसरेकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। गुरु गोविंदसिंहने माधवदासको देखते ही हृदयमें अनुभव किया कि "यही व्यक्ति है जो मेरे उठाये हुए कार्यको पूरा करेगा।" और माधवदासके आत्माने पुकार कर कहा कि "यही तेरा गुरु है, इसके सम्मुख सिर झुका।" दोनोंने एक दूसरेको पहिचाना। माधवदास वैरागी आडम्बरको छोड़कर गुरुका 'बन्दा' अर्थात् दास बन गया। वही बन्दा इतिहासमें 'बन्दा बैरागी'के नामसे विख्यात है। जब बन्दाने गुरुके चरणोंमें अपना सिर नवा दिया, तब गुरुने एक तलवार और तूणीरमेंसे पाँच बाण दीक्षाके तौरपर देते हुए शिष्यको पाँच अनमोल आदेश दिये। (१) जन्मभर ब्रह्मचारी रहना, (२) सत्यपर दृढ़ रहना, (३) अपनेको खालसाका सेवक समझना, (४) अलग मत स्थापित करनेकी चेष्टा न करना (५) और विजयपर फूलकर अभिमानमें उन्मत्त न होना। बन्दाने तलवार और तीरोंको अभिमानपूर्वक ग्रहण करते हुए आदेशोंको पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। गुरुने प्रसन्न होकर बन्दाको पंजाबके सिक्खोंके नामका एक पत्र दिया जिसमें उन्हें आज्ञा दी गई कि वह बन्दाको अपना नेता स्वीकार करें और उसके झण्डेके नीचे संगठित होकर पन्थके शत्रुओंसे लड़ें।

उस पत्रने जादूका काम किया। बन्दाको सिक्खोंका जमाव करनेमें देर न लगी। थोड़े ही समयमें पन्थकी सेनामें चालीस हज़ार लड़ाकू शामिल हो गये। वह लोग मानो केवल एक अगुआकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंकी और माताकी कुर्बानीने उनके रक्तमें उबाल-सा पैदा कर दिया था। बन्दा बैरागीकी उस उन्मत्त सेनाका पहला आक्रमण सरहन्दपर हुआ। यही वह शहर था जहाँ गुरुके पुत्र दीवारमें चुने गये थे। सरहन्दकी ओर बढ़ती हुई सिक्ख-सेनाके रास्तेमें कई स्थान पड़े जहाँ मुसलमान सेनासे उनको टक्कर लगी। पंजाबके इतिहासके लेखक सय्यद मुहम्मद लतीफने बन्दाकी इस युद्ध-यात्राके सम्बन्धमें लिखा है—

"बदलेके भावसे प्रेरित होकर और सम्राट् बहादुरशाहके दक्षिण प्रवाससे उत्साहित होकर, बन्दाके नेतृत्वमें सिक्खोंके दल पंजाबके उत्तर-पश्चिममें इकट्ठे हो गये और दूर दूर तकके प्रदेशको तबाह कर दिया। प्रजाको लूट लिया,

और शहरों तथा ग्रामोंको उजाड़ दिया। सरहन्दके फ़ौज़दार वज़ीरख़ाँको जब यह समाचार मिला तो उसने कुछ सेना सिक्खोंको दण्ड देनेके लिए भेजी, परन्तु उस सेनाके बहुत-से आदमी मारे गये, शेष वापिस हो गये। तब वज़ीरख़ाँ एक बड़ी सेनाके साथ सामने मैदानमें आया। सरहन्दके समीप एक घोर युद्ध लड़ा गया जिसमें मुसलमानी फौज़का पूर्ण पराजय हुआ, एक तीरके छातीपर लगनेसे वज़ीरख़ाँ भी मारा गया। अब बन्दाने गुरुके पुत्रोंकी वधस्थली सरहन्दमें प्रवेश किया और प्रतिहिंसाके भावसे प्रेरित होकर जंगलीपनसे उससे बदला लिया। बन्दाने आज्ञा दी कि शहरको आग लगा दी जाय और उनके सब निवासियोंको मौतके घाट उतार दिया जाय। शहर जल रहा था और सिक्ख सैनिक बड़ी बेरहमीसे हत्याकाण्ड मचा रहे थे। हत्या करते हुए उन्होंने न बच्चों या बूढ़ोंको छोड़ा और न स्त्रियोंको। उन्होंने सरहन्दके मुसलमानोंको कत्ल किया, संगीनोंसे छेदा, गला घोंटकर मारा, फाँसी चढ़ाया, गोलीसे समाप्त किया, टुकड़े टुकड़े काटा और जीतेजी जला दिया। इतना ही नहीं, इन भूखे बाघोंने मरे हुओंको भी अपनी तृप्तिका साधन बनाया। वज़ीरख़ाँकी लाश एक वृक्षसे टाँग दी गई और उसे राहजातों और गीधोंकी दयापर छोड़ दिया गया, कब्रिस्तानकी पवित्रताका भंग करके लाशोंको खोदकर निकाला गया, उनके टुकड़े टुकड़े करके भेड़ियों, गीदड़ों और कब्रिस्तानके अन्य निशाचर यात्रियोंके लिए बखेर दिये गये। मसजिदोंको अपवित्र करके जला दिया गया, मुल्ला, मौलवी और हाफिज़ोंको बहुत बुरी तरह अपमानित और पीडित किया गया।"

सरहन्दके दण्डका यह वृत्तान्त बहुत बढ़ाकर लिखा गया है। लेखक एक मुसलमान हैं, इस कारण थोड़ी-सी अत्युक्तिकी झलक भी है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर किये हुए वर्णनका अधिकांश सत्य है। कुछ लोग इस वृत्तान्तको पढ़कर शायद बन्दाके लिए 'राक्षस' 'नृशंस' आदि दो चार शब्दोंका प्रयोग करना आवश्यक समझें। कार्य नृशंसताका था, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु हम तो ऐसी घटनाओंमें बन्दाको गौण समझते हैं। हिंसा ऐसी चीज़ है कि उससे प्रतिहिंसाका भाव पैदा होता ही है। सरहन्दकी सज़ा उन लोगोंके लिए एक चेतावनी है जो शक्ति पाकर विरोधी या निर्बलपर अत्याचार करते हैं। शक्ति बिजलीकी तरह चंचल वस्तु है। वह आज एकके हाथमें है तो कल दूसरेके हाथमें। जो विजय अत्याचारसे कलंकित हो जाती है, एक-न-एक दिन उसका जवाब

मिलता है। यह प्रकृतिका नियम है। साधन बन्दा हो या वज़ीरख़ाँ, यह गौण बात है। शक्तिशालीके लिए सरहन्दका सर्वनाश एक ख़तरेकी चेतावनी है।

परन्तु बदला यहीं तक समाप्त नहीं हुआ। विजयके मदमें मस्त बन्दाने चारों ओर अपनी सेनाओंको फैला दिया। जहाँ भी अवसर मिला सिक्ख सिपाहियोंने बदलेके भावसे प्रेरित होकर मुसलमानोंका सर्वनाश करनेमें कसर न छोड़ी। कहते हैं, समानामें दस हज़ार नरनारी तलवारकी बलि चढ़ाये गये, सहारनपुरको लूटा गया, नानौतामें तीनसौ शेखज़ादे थे, वह सबके सब मार दिये गये और शहरको उजाड़ दिया गया। वह शहर अबतक 'फूटा शहर' कहलाता है। अन्य भी इर्द-गिर्दके शहरोंपर अधिकार जमाकर बन्दा करनाल तक पहुँच गया, जिसे यदि दिल्लीका द्वार कहें तो अनुचित न होगा।

दूसरी ओर सिक्ख सेनायें लाहौरकी ओर बढ़ती जा रही थीं। बटाला उस समय भी व्यापार और विद्याके लिए मशहूर शहर था। उसका मुसलमान सेनापति युद्धमें मारा गया। सिक्खोंने शहरपर कब्ज़ा करके उसे आग लगा दी, मुसलमान निवासियोंको मार दिया। कई दिनोंतक लूट-मार जारी रही। रास्ता साफ करके सिक्ख लाहौरकी ओर बढ़ने लगे और शालामार बाग़तक पहुँच गये। लाहौरके मुसलमान निवासियोंकी सहायतासे वहाँके फौज़दारने शहरकी रक्षाका प्रयत्न किया। कई छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी शहरके बाहर हुईं। इस प्रकार एक ओर दिल्ली और दूसरी ओर लाहौरके दरवाज़ोंपर बन्दाकी सेनाओंके हथियार झनकार कर रहे थे। पंजाबके मध्य और दक्षिण भागमें मुसलमान बादशाहोंके राज्यका अन्त-सा हो चुका था। बन्दाकी सिक्खसेनायें जिधर जाती थीं, उधर ही हाहाकार मचा देती थीं।

मनुष्यकी ऐसी विचित्र प्रकृति है कि वह दूसरेके द्वारा अपनेपर किये गये अत्याचारको नापसन्द करता है, परन्तु शक्ति प्राप्त होते ही दूसरेपर अत्याचार करनेमें संकोच नहीं करता। वज़ीरख़ाँने गुरुके बच्चोंका वध किया। यह घोर अत्याचार किया। सिक्खोंने इसे बुरा समझा, उनके हृदयोंमें प्रतिहिंसाका दावानल प्रज्वलित हो गया। बन्दाके नेतृत्वमें वह शक्तिशाली हो गये और मुसलमानोंपर हावी हो गये। अत्याचार तो अत्याचार ही है, वह पहले किया जाय या पीछे। बदलेमें सिक्खोंने जो दण्ड दिया, वह भी अपराधसे बहुत अधिक था। वज़ीरख़ाँके अपराधका दण्ड समाप्त हुआ, अब बन्दाके दिये हुए दण्डने प्रतिहिंसाका जो भाव पैदा किया उसकी क्रीडा आरम्भ होती है। उसे पाठक अगले अध्यायमें पढ़ेंगे।

१०—बन्दा वैरागीका बलिदान

बादशाह बहादुरशाह अभी दक्षिणके भँवरमें फँसा हुआ था। वहीं उसे राजपूताना और पंजाबसे विद्रोहके समाचार मिलने लगे। बहादुरशाहकी राजपूतोंसे पहली झपट तो इससे पहले ही हो चुकी थी। औरंगज़ेबकी मृत्युका समाचार सुनते ही जोधपुरके राजा अजीतसिंहने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी और मुग़ल अफसरोंको मार या भगाकर जोधपुरपर कब्ज़ा कर लिया। उदयपुरके महाराना भी अधीनतासे छूटनेका प्रयत्न कर रहे थे। दक्षिणमें अभी कामबख्श साम्राज्यका पूर्णाधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगा हुआ था, बहादुरशाहका दिल उधर ही अटका हुआ था, परन्तु यदि राजपूताना बिगड़ उठा तो साम्राज्य जड़से हिल जायगा, यह सोचकर बादशाहने पहले राजपूतानेपर ही आक्रमण कर दिया। प्रतीत होता है कि उदयपुर और जोधपुरके शासक अपनी स्थितिको मज़बूत करना चाहते थे, परन्तु साम्राज्यके विद्रोही नहीं बनना चाहते थे। बादशाहके समीप आनेपर दोनों ही शासकोंने अधीनता स्वीकार कर ली। थोड़ी-बहुत लड़ाई हुई भी तो वह अनिच्छापूर्वक ही लड़ी गई। बहादुरशाहको दक्षिण जानेकी जल्दी थी। शीघ्र ही सन्धिकी शर्तें तय हो गईं जिनके अनुसार राजा जयसिंह कछवाहा और महाराजा जसवन्तसिंह राठौर बादशाहके साथ दक्षिण-यात्राके लिए रवाना हो गये।

बहादुरशाहकी तबीयत नर्म थी, वह औरंगज़ेबकी तरह कठोर नहीं था। वह अकबरकी नीतिका अनुयायी था, परन्तु अकबरका व्यक्तित्व उसमें नहीं था। वह जीते हुए शत्रुको अपनी ओर खेंच नहीं सकता था। अभी बहादुरशाह मालवेतक ही पहुँचा था कि दोनों राजपूत सरदार अवसर ताक कर उस अर्द्ध-कारागारसे निकल भागे। राजपूताना चिरकालीन दासतासे तंग आ गया था। उदयपुरके राणा अमरसिंह, जोधपुरके राजा अजीतसिंह और अम्बरके राजा जयसिंहके नेतृत्वमें और वीर दुर्गादासके सेनापतित्वमें राजपूत-सेनायें एकत्र हो गईं, और जोधपुरपर आक्रमण करके उसे मुसलमान फौज़दारसे छीन लिया। सम्मिलित राजपूत सेनाओंका दूसरा धावा अम्बरपर हुआ। मुसलमान फौजदार परास्त हो गया और उसकी मददके लिए जो मुसलमान सेनापति भेजे गये, वह मारे गये या भाग गये। यह समाचार बादशाह बहादुरशाहको दक्षिणमें मिला। शीघ्र ही शाही सेनाओंने अजमेरकी ओर मुँह मोड़ा और लगभग चार मासमें

नर्मदाके तटसे चलकर अनासागरके किनारेपर डेरे जमाये। बादशाह चाहता था कि राजपूतानेके बाग़ी सरदारोंको दण्ड दे परन्तु अजमेर पहुँचते ही बन्दा वैरागीकी मारसे भागे हुए मुसलमानोंके आर्त्तनादने उसे व्याकुल कर दिया। उन लोगोंने बादशाहको बतलाया कि दिल्ली और लाहौरके बीचमें मुसलमानोंकी हुकूमत नहीं रही। बन्दा और उसके लम्बी दाढ़ियोंवाले सिपाही जिधर चले जाते हैं, प्रलय मचा देते हैं। मुसलमानोंका वध कर देते हैं, मसजिदोंको बरबाद कर देते हैं और कब्रोंमें गड़े हुए मुर्दोंतकको नहीं छोड़ते। बहादुरशाह इन समाचारोंसे घबरा गया। उसने राजपूत राजाओंको सजा देनेका विचार छोड़कर उनसे झटपट सुलह कर ली और जिहादका डंका बजाकर पंजाबकी ओर प्रयाण किया।

सिक्खोंसे लड़नेके लिए बड़ी मुस्तैदीसे तैयारी की गई। अवध और इलाहाबादके सूबेदारों और मुरादाबादके फौजदारको हुक्म भेजा गया कि वह शीघ्रसे शीघ्र अपनी सेनाओंको दिल्लीके लिए रवाना करें ताकि दिल्लीका सूबेदार अहमदखाँ बड़ी फौजके साथ पंजाबकी ओर रवाना हो सके। दक्षिणकी सेनाको बादशाह स्वयं साथ ला रहा था। बादशाह इतनी घबराहटमें था कि दिल्ली जानेकी भी फुर्सत न मिली। शाही सेनायें अजमेरसे नारनौल होती हुई सीधी पंजाबकी ओर मुड़ गईं, इस डरसे कि कहीं सिपाही दिल्लीको न भाग जायें। सेनामें कठोर आज्ञा दी गई कि सेनाका कोई आदमी बगैर इजाजतके दिल्ली न जाय और न किसीका रिश्तेदार मिलनेके लिये सेनामें आये।

उस समय मुसलमानोंका जिहादी जोश पूरे ज़ोरसे भड़क चुका था। हुक्म दिया गया कि सरकारी नौकरीमें जितने हिन्दू हैं, वह दाढ़ियाँ मुड़वा दें। पंजाबके बहुत-से खत्री शाही नौकरीमें थे। उनमेंसे बहुत सिक्खोंके सम्बन्धी और सहानुभूति रखनेवाले थे। दाढ़ी मुड़वानेके हुक्मका बड़ी कठोरतासे पालन कराया गया। केवल सरकारी नौकरों तक ही यह मुसीबत परिमित न रही। छोटे छोटे सरकारी नौकर, जिनके साथ भंगीके प्यालेमें गन्दा पानी लिये हजाम रहते थे, बाज़ारोंमें घूमते थे। जहाँ कोई दाढ़ीवाला हिन्दू मिला कि उन्होंने रोका और दाढ़ी मूँड़ दी। दाढ़ी साफ किये बिना किसी हिन्दूका बाज़ारमें निकलना असम्भव हो गया। बहुतसे बुजुर्गोंको अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जन्म-भरकी पाली हुई सुन्दर सुन्दर दाढ़ियोंसे हाथ धोने पड़े।

अब तो बन्दाकी सेनाओंको साम्राज्यकी शक्तिका सामना करना पड़ा। सिक्ख सेनाओंपर चारों ओरसे शत्रु टूट पड़े। मुसलमान फौजदारों और सूबेदारोंकी निबलताने सिक्खोंको असावधान बना दिया था। अभीतक उन लोगोंका नैतिक संगठन भी पूरा नहीं हुआ था। शत्रुके समाचार जाननेके साधनोंका उनके पास अभाव-सा था। उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि बादशाह राजपूतानेके भँवरसे निकलकर इतना शीघ्र युद्ध-क्षेत्रमें आ जायगा। उधर बादशाहकी उपस्थितिसे साहस प्राप्त करके मुसलमान सेनापतियोंने चारों ओर तितर बितर हुई सिक्ख सेनाओंको आ दबोचा। अमीनाबाद, सुल्तानपुर आदि स्थानोंपर बड़ी बड़ी मुसलमान सेनायें बन्दाके सिपाहियोंपर टूट पड़ीं। सिक्ख हार गये। मुसलमान सेनापतियोंने सरहन्द, जलालपुर आदिका पूरा बदला लिया। सिपाही हो या किसान, मरा हो या जिन्दा, जो सिक्ख हाथ आया उसकी चोटीको रस्सी बनाकर वृक्षसे टांग दिया। बादशाहके मार्गके किनारे किनारे लगे हुए वृक्ष ऐसे भयंकर उपहारोंसे सजाये गये थे। सिक्ख सेनायें इतनी बिखरी हुई थीं कि उपर्युक्त दोनों लड़ाइयोंमेंसे एकमें भी बन्दा स्वयं उपस्थित नहीं हो सका था। परास्त हो जानेके बाद उसे युद्धका समाचार मिला।

बन्दाने एक चतुर नेताकी भाँति परिस्थितिको शीघ्र ही समझ लिया। मैदानमें लड़ना असम्भव जानकर उसने दुर्गका आश्रय लिया। साढोरासे कुछ दरतक एक ढालू पहाड़ीपर लोहगढ़ नामका दुर्ग था जो उस समयकी युद्ध-कलाके अनुसार बहुत मजबूत समझा जाता था। बन्दाने अपनी चुनी हुई सेनाओंके साथ इस किलेमें डेरा जमाया। गुरु गोविंदसिंहको भी कठिनाईके समय इसी किलेने सहारा दिया था। दीवारोंपर तोपें चढ़ा दी गईं, बन्दूकची पहरेपर तैनात कर दिये गये और बन्दा बहादुरने किलेको सुरक्षित और अभेद्य बनानेके लिए जो कुछ सम्भव था, कर दिया। किला ऐसा मजबूत समझा जाता था, बन्दाकी चमत्कारिणी शक्तिपर सिक्खोंको ऐसा विश्वास था और मुसलमान सेनापति उसके प्रसिद्ध जादूसे ऐसा डरते थे कि शीघ्र ही किलेपर हाथ डालनेकी उनकी हिम्मत न हुई।

खूब तैयारी और पूरे साधनोंसे शाही सेनाओंने दिसम्बर मास (सन् १८१०)में लोहगढ़पर आक्रमण किया। सिक्ख बड़ी वीरतासे लड़े। बन्दाके निशानेबाज़ोंने मुसलमान सिपाहियोंमेंसे सैकड़ोंको चुना, परन्तु आक्रमणकारी दलकी संख्या

बहुत अधिक थी, युद्धके साधन और भी अधिक थे। बादशाहकी उपस्थिति और जिहादी जोशका आवेग भी आक्रमणकारियोंकी सहायता कर रहा था। कई दिनोंके निरन्तर और घोर युद्धके पीछे लोहगढ़ सर कर लिया गया और उसके निवासी कैद करके बहादुरशाहके सामने लाये गये।

घोंसला तो हाथ आ गया पर शिकार उड़ गया। वन्दाकी सेनामें गुलाबू नामका एक भक्त सिपाही था जिसकी आकृति अपने स्वामीसे मिलती थी। जब दुर्गकी रक्षाकी कोई आशा न रही तो गुलाबूको गद्दीपर बिठाकर वन्दा वैरागीके भेसमें किलेसे निकल गया। जब पिंजरा खोला गया तो बादशाहने देखा कि पखेरू उड़ गया है। किलेपर आक्रमण करनेवाले वृद्ध सेनापतिको निराश बादशाहने बहुत अपमानित किया। वन्दाने नाहनके पहाड़ोंमें आश्रय लिया था। उसके पकड़े जानेकी शीघ्र ही कोई आशा न देखकर बादशाहने अपना समय पहाड़ी हिरनोंके शिकारमें बिताकर चित्तके खेदको शान्त किया।

बहादुरशाह शिकार खेल रहा था और वन्दा अपनी सेनाओंको तैयार कर रहा था। थोड़े ही समयमें उसने इतना सैन्य-संग्रह कर लिया कि जिला गुरदासपुरमें जम्बूके मुसलमान फौजदार और उसके भतीजेको लड़ाईमें मार दिया और वह लाहौरकी ओर बढ़नेकी धमकी देने लगा। बादशाहको जब यह समाचार मिला तो वह लाहौरकी ओर भागा जहाँ सात मास व्यतीत करनेके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

बादशाहके मरनेपर मुगल राज्यमें जो नाटक सदा होता था वह बहादुरशाहकी मृत्युपर भी हुआ। जैसे खाली रंगस्थलीमें घण्टी बजनेपर एकदम नाटकके पात्र दिखाई देने लगते हैं, मुगल बादशाहके मरनेपर वैसे ही दिल्लीके मंचपर नये नये उम्मेदवार दिखाई देने लगते थे। बहादुरशाहकी मृत्युपर उसके सभी लड़के गद्दीके उम्मेदवार हुए, परन्तु उनमेंसे कुछ समयके लिए बड़ा लड़का मुअज़्ज़ुद्दीन जहाँदारशाह ही भाग्यशाली सिद्ध हुआ। सबको निपटाकर वह गद्दीपर बैठा, परन्तु कमज़ोरके लिए उस सिंहासनपर स्थान कहाँ? जहाँदारशाहसे पूर्व ही मुग़लवंश अपनी अद्भुत जीवनीशक्ति खो चुका था। मुसलमान सरदारोंमें एक ऐसा दल खड़ा हो गया जिसने जहाँदारके भतीजे फर्रुख़सियरके पक्षका समर्थन किया और केवल दस महीनोंतक चमक दिखाकर भाग्यने उसका साथ छोड़ दिया। फर्रुख़सियर सम्राटके सिंहासन बिठाया गया।

फर्रुख़सियरके राज्यारोहणके साथ सिक्ख़ोंके इतिहासका एक नया अध्याय आरम्भ होता है। फर्रुख़सियर औरंगज़ेबका छोटा संस्करण बननेकी चेष्टा कर रहा था। उसने अपने राज्यके प्रारम्भ-कालमें हिन्दुओंके प्रति अत्यन्त कठोर नीतिका आश्रय लिया। बन्दाके लिए वह परीक्षाका समय था, उसे फिर एक बार साम्राज्यकी सम्पूर्ण शक्तिका सामना करना पड़ा। इतनी कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाना भी उसके लिए दुष्कर न होता यदि एक और उलझन बीचमें न आ पड़ती। अपने गुरुके आज्ञानुसार बहादुर बन्दाने पन्थकी रक्षाके लिए जो प्रयत्न किया, उसकी कहानी हम पढ़ चुके हैं। गुरु गोविन्दसिंहने सिक्ख़ोंको किसानसे सिपाही बनाया और सिक्ख-राज्यकी बुनियाद रक्खी, परन्तु उन्हें कभी साम्राज्यकी सेनाओंसे लड़ना नहीं पड़ा था। बन्दाको प्रारम्भसे ही भारतकी सबसे बड़ी शक्तिसे टकराना पड़ा। अनघड़ और अशिक्षित परन्तु उत्साहपूर्ण सेनाओंकी सहायतासे इतने वर्षोंतक बन्दाने जिस चतुरता और वीरतासे मुग़ल साम्राज्यका सामना किया उसकी गवाही इतिहास दे रहा है। परन्तु एक कमी थी, बन्दा नियमपूर्वक सिक्ख नहीं बना था। गुरु गोविन्दसिंहके आज्ञानुसार उसने सिक्खोंका नेतृत्व अवश्य किया, परन्तु उसकी अन्तरात्मा हिन्दू थी। सिक्खोंको भी बन्दाकी प्रारम्भिक विजयोंने ऐसा प्रभावित किया कि वह एक बार तो इस बातको बिलकुल भूल गये कि बन्दा सिक्ख है या बैरागी। जब तक विजयकी लक्ष्मी बन्दापर निरन्तर कृपा करती रही, सिक्खोंसे उसका जोड़ जुड़ा रहा, परन्तु ज्यों ही बादशाहके स्वयं मैदानमें आ जानेसे विजय सन्देहमें पड़ी कि हृदय सन्देहोंसे भर गये। सिक्खोंमें यह चर्चा चल गई कि बन्दा पूरा सिक्ख नहीं है। आपत्तिने परस्पर विश्वासको नष्ट कर दिया। बन्दाको सिक्खोंपर पूरा विश्वास न रहा, और सिक्खोंको बन्दापर। परिणाम यह हुआ कि दोनों ही ओरसे ऐसे कार्य हुए जो सफलताके शत्रु थे। बन्दा मुग़ल साम्राज्यसे लड़ रहा था। उसे धन और सेनाकी आवश्यकता थी। जब सिक्खोंकी ओरसे उसके साथ उपेक्षाका व्यवहार होने लगा तो उसने अन्य हिन्दुओंको भी अपनाना आरम्भ किया। उन्हें भी सेनामें लेने लगा। परिणाम यह हुआ कि सेनामें पन्थके पूरे नियमोंका पालन न हो सका। ऐसे लोग भी सेनामें भर्ती किये गये जो लम्बे केश न रखते थे। गुरु गोविन्दसिंह सिक्खोंको मांस खानेकी प्रेरणा करते थे। बन्दा वैष्णव था। वह स्वयं मांस न खाता था। अब सेनामें ऐसे बहुत-से सिपाही हो गये जो मांससे परहेज़ करते थे। सिक्खोंका नम-

स्कार 'वाह गुरुजीका खालसा, वाह गुरुजीकी फतेह' इन शब्दोंसे होता था, उसे अधिक व्यापक बनानेके लिए बन्दाने बदलकर 'फतेह धर्म, फतेह दर्शन' यह रूप दे दिया।

सिक्खोंमें इन नवीनताओंके कारण बहुत असन्तोष पैदा हो गया। फर्रुखसियरकी सरकारने इस भेदसे खूब लाभ उठाया। पन्थप्रकाशमें लिखा है कि सामयिक सरकारने गुरु गोविन्दसिंहकी विधवाको अपने हाथमें लेकर बन्दाके नाम उससे इस आशयका पत्र लिखवाया कि तुम मुग़ल सरकारकी अधीनता स्वीकार कर लो और लड़ाई छोड़ दो। बन्दाने उस आज्ञाको स्वीकार न किया। सिक्खोंका असन्तोष और भी चमक उठा और मुग़ल सरकारने बन्दासे रूठे हुए ५०० सिक्ख सिपाहियोंको नौकरीमें रख लिया और अमृतसरके समीप झब्बल नामक स्थान सिक्खोंको देकर उनसे अलग सन्धि कर ली। कई प्रभावशाली सिक्ख सरदार अपने सैनिक जत्थोंको साथ लेकर बन्दासे अलग हो गये। सारे मुग़ल साम्राज्यसे शत्रुता बाँधकर बन्दा अकेला रह गया। सिक्खोंने उसका साथ छोड़ दिया। हिन्दू जातिका पुराना शत्रु 'फूट' उन विजयिनी सेनाओंमें भरपूर उत्पात मचा रहा था जब फर्रुखसियरकी आज्ञासे मुग़ल-सेनाका विध्वंसकारी यन्त्र बन्दाके विरुद्ध चलायमान हुआ।

बहादुरशाहकी मृत्यु और फर्रुखसियरके राज्यारोहणके बीचमें बन्दाने फिर सिर उठाया था और कलानौर और बटालामें मुसलमानोंको पराजित करके खूब लूट-मार मचाई थी। पर इसी बीचमें गद्दीका झगड़ा निबट गया। फर्रुखसियरने मज़बूत हाथोंसे राज्यकी बागडोरको सँभाला और लाहौरके सूबेदारको एक बड़ी सेना और तोपखानेके साथ बन्दाके मान-मर्दनके लिए रवाना किया।

अब लड़ाई क्या थी, अब तो शिकार था। शिकारी आगे बढ़ रहा था और मित्रोंसे परित्यक्त शिकार भागा जा रहा था। फिर भी बन्दाने वीरता और धैर्यसे मुसीबतका सामना किया। वह गुरुदासपुरके किलेमें घिर गया। घेरा बड़ा कठोर था। भोजनकी सामग्री तक अन्दर न जा सकती थी। घिरी हुई सेनायें भूखे मरने लगीं तो भी बन्दाने साहस न छोड़ा और सेनाके घोड़ों और गधोंका मांस खिलाकर भी सिपाहियोंकी हिम्मतको कायम रखनेका यत्न किया, परन्तु कब तक? अन्नके बिना कितने दिन प्राण शरीरमें रह सकते थे? कहते हैं कि बन्दा गुरदासपुरमें दस हजार सिपाहियोंके साथ बन्द हुआ था और आठ हजार

अन्नके विना प्राण खो चुके थे। आठ हजार लाशोंमें रहना कब तक सम्भव था, जब कि दो हजारकी आँखोंके सामने भी मृत्यु नाच रही हो? बन्दा और उसके शेष साथी, नंगी तलवारें हाथोंमें लेकर 'मरेंगे या मारेंगे' इस संकल्पके साथ किलेके द्वारसे बाहर निकले। शरीर भूखके मारे काँटा हो रहे थे, कबतक लड़ते? कुछ मारे गये, शेष पकड़े गये, बन्दा भी कैदी बना लिया गया।

बन्दासे मुसलमान बेतरह जल रहे थे। वह सरहन्दका हत्याकाण्ड नहीं भूले थे और न उन्हें यही बात भूल सकती थी कि बन्दाके नेतृत्वमें सिक्खोंने भारतव्यापी मुग़ल साम्राज्यको चुनौती दी थी। वर्षोंसे वह उसपर गुस्सा निकालनेकी धुनमें थे। वह बन्दी हो गया तो क्रोध और प्रतिहिंसाके सब राक्षसीभाव, जो अबतक हृदयोंमें बन्द थे, बरसाती नदीकी तरह बाँधको तोड़कर बह निकले। बन्दाको एक लोहेके पहियेदार जंगलेमें बन्द किया गया। मरे हुए दो ह़ज़ार सिक्खोंके सिरोंको भालोंपर रोपे हुए सिपाही आगे-पीछे चल रहे थे। ७०० से अधिक सिक्ख कैदी साथ थे। ऐसा बीभत्स जलूस बनाकर कैदी दिल्लीमें लाये गये। बहुतसे कैदियोंके शरीर भेड़ोंकी खालोंसे ढककर, उन्हें ऊँटों और गधोंपर बिठाकर, शहरमें घुमाया गया। बन्दाका मुँह काला कर दिया गया, सिरपर ऊँची टोपी पहिनाई गई। इस वेषके साथ हाथीपर बिठाकर उसकी सवारी निकाली गई। तलवार हाथमें लिये जल्लाद हाथीपर खड़ा पहरा दे रहा था। बन्दा और उसके साथियोंने बड़े धैर्यसे इस अपमानको सहन किया। उनमेंसे एक भी पीछे न हटा। किसीने भी कमज़ोर बात न कही। सब एक दूसरेसे पहले पन्थके लिए बलि होनेको तैयार थे।

आठवें दिन अभियोग और न्यायका रोमांचकारी नाटक दिखाया गया। बन्दाको जजोंके सामने पिंजरेमेंसे जंगली जानवरकी तरह घसीटा गया, फिर उसे ज़बरदस्तीसे सुनहरी कामवाली सरकारी पोशाक पहिनाई गई और उसके चारों ओर सिक्ख सैनिकोंके मस्तकोंसे सजे हुए भालोंकी प्रदर्शिनी की गई। जल्लाद नंगी तलवार हाथमें लिये सिर उड़ानेको बन्दाके पीछे खड़ा था। दरबारी न्यायाधीशने पूछा कि तुमने ऐसे विद्वान् और समझदार होते हुए मुसलमानोंपर अमानुषिक अत्याचार क्यों किये? उसने उत्तर दिया कि

> "मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए ईश्वरकी ओरसे कालरूपमें अवतीर्ण हुआ था, परन्तु अब मेरे अपराधोंका दण्ड देनेकी शक्ति दूसरोंको दे दी गई है।"

गुरदासपुरसे लाये हुए सब कैदी बड़ी वीरतासे मृत्युका सामना करते रहे थे। सरकारकी ओरसे कहा गया था कि जो बन्दी इस्लामको स्वीकार कर लेगा उसे छोड़ दिया जायगा। एक भी कैदी मुसलमान होनेको तैयार न हुआ। वह लोग हत्याको 'मुक्ति,' और हत्या करनेवालेको 'मुक्त' कह कर पुकारते थे। जब जल्लाद मारनेके लिए आगे बढ़ता था, तो वह वीर चिल्लाकर कहते थे कि 'ओ मुक्त, पहले मुझे मार।' मुक्ति प्राप्त करनेके लिए वह इतने उतावले थे।

एक नौजवान सिक्खकी माँ अपनी बच्चेकी प्राण-रक्षाके लिए कुतबुल मुल्क तक पहुँच गई। उसने वज़ीरसे कहा कि "मेरा बच्चा सिक्ख नहीं है, वह तो गुरुके यहाँ कैदी था। मैं विधवा हूँ, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं।" वज़ीरको दया आ गई। उसने लड़केकी रिहाईकी आज्ञा दे दी। माँ उस आज्ञाको लेकर कोतवालके पास पहुँची। कोतवालने आज्ञाको पढ़ा, और लड़केको जेलसे बाहर खड़ा करके कहा कि 'तुम स्वाधीन हो।' लड़केने इसे अपने धार्मिक उत्साहका अपमान समझा। उसने कोतवालसे कहा कि 'मैं इस औरतको नहीं जानता, यह मुझसे क्या चाहती है। मैं गुरुका सच्चा शिष्य हूँ। मैं गुरुके लिए अपना जीवन देनेको तैयार हूँ। जो दण्ड गुरुको मिलेगा, वही मैं भी लूँगा।' लड़केको फिर जेलमें डाल दिया गया। जब उसका वध किया गया तो उसके मस्तकपर वही निर्भयता विराजमान थी।

अन्तमें गुरुकी बारी आई। पहले गुरुको भद्दे वेषमें हाथीपर चढ़ाकर शहरमें घुमाया गया, फिर कुतबमीनारके पास ले जाकर हत्याकाण्डका आयोजन किया गया। गुरुको बिठाकर उसके पुत्रको लाकर गोदीमें डाल दिया गया और गुरुको हुक्म दिया गया कि 'अपने पुत्रको जानसे मार डालो।' गुरुने इन्कार कर दिया। तब हत्यारेने एक लम्बे छुरेसे उस नन्हे बच्चेका पेट चाक किया, उसके ज़िगरको निकाला और गुरुके मुँहमें जबर्दस्ती ठूँस दिया। इस पैशाचिक कृत्यके पीछे बन्दाकी अपनी बारी आई। पहले छुरेकी नोकसे उसकी आँख निकाली गई, फिर उसका बायाँ पैर काट दिया गया, उसके पीछे दोनों हाथ शरीरसे अलग किये गये और अन्तमें शरीरके टुकड़े टुकड़े करके फेंक दिये गये। गुरु बन्दाकी स्त्री ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाकर एक राजवंशकी बेगमको गुलामके तौरपर दे दी गई।

आगसे आगको नहीं बुझा सकते। इस तरह वह अधिक प्रज्वलित होती है।

गुरु गोविन्दसिंहके पुत्रोंके बलिदानने गुरु बन्दाके हाथोंसे सरहन्दका सर्वनाश कराया, और हजारों मुसलमानोंकी हत्या हुई। एक बदलेने बदलेकी दूसरी वासनाको जन्म दिया। मुसलमानोंमें प्रतिहिंसाकी तीव्र भावना पैदा हुई जिसमें हजारों सिक्खों और स्वयं बन्दाको आहुति बनना पड़ा। सिक्खोंके इस बलिदानने फिर प्रतिहिंसाकी अग्निको प्रदीप्त किया। उस अग्निका शिकार कौन हुआ, यह इस इतिहासके अगले पृष्ठोंके पढ़नेसे विदित होगा। मुसलमान शासकों और सिक्खोंके संघर्षका वृत्तान्त मनुष्योंकी भावनाओंकी क्रिया-प्रतिक्रियाके सिद्धांतोंके प्रभावका ज्वलन्त उदाहरण है। मनुष्य जातिके भाग्य-विधाता इस उदाहरणसे यथेष्ट शिक्षा ले सकते हैं।

११—रावीकी दलदलमें

मुग़ल बादशाहोंकी प्रचलित पद्धतिके अनुसार बहादुरशाहकी मृत्युपर दिल्लीकी गद्दीके चार उम्मेदवार मैदानमें आये। बहादुरशाहके छह पुत्रोंमेंसे दो मर चुके थे। शेष चारोंके नाम बड़ी शानके थे। प्रायः सभी साम्राज्योंके इतिहासमें देखा गया है कि ज्यों ज्यों साम्राज्यकी सत्ता घटती जाती है त्यों त्यों सत्ताधारियोंके नामोंकी शान बढ़ती जाती है। रस सूखता जाता है,. पँखुडियाँ बढ़ती जाती हैं। चारोंके नाम थे—(१) जहाँदारशाह, (२) अज़ीमुश्शान, (३) रफीउश्शान और (४) जहानशाह।

यह संसार-भरका शासन करनेकी हविस रखनेवाले चार पहलवान थे, जिनके बीचमें साम्राज्यकी गद्दी इनामके रूपमें रक्खी हुई थी। कुश्तीका अखाड़ा लाहौरमें जमा।

प्रायः सभी मुग़ल बादशाह बुढ़ापेमें आकर अपने पुत्रोंका सहारा ढूँढ़ने लगते थे परन्तु उत्तराधिकारके नियमका निश्चय न होनेसे भाइयोंमें परस्पर ईर्ष्याकी आग इतनी तेजीसे जलती थी कि कभी दो पुत्र पिताके पास इकट्ठे नहीं रह सकते थे। पिताको केवल एकका सहारा ढूँढ़ना पड़ता था, शेष पुत्रोंको शत्रुकी तरह दूर रखना पड़ता था। पिताकी मौज़ और पुत्रोंकी परिस्थितिके अनुसार

भाइयोंके भाग्य डावाँडोल होते रहते थे। कभी एकपर पिताकी कृपादृष्टि बनी रहती तो कभी दूसरेपर। मृत्युके समय बहादुरशाहकी कृपादृष्टि दूसरे पुत्र अजीमुश्शानपर बनी हुई थी। कोष और सेनाका जो भाग बादशाहके साथ था, बादशाहके मरनेपर वह स्वभावतः अज़ीमुश्शानके अधिकारमें आ गया। बहादुर-शाहके प्राण अभी निकलकर कुछ हाथ ही दूर गये होंगे कि शहरमें ढोल पिटने लगे, जिन्होंने शेष तीनों भाइयोंतक यह समाचार पहुँचा दिया कि अज़ीमुश्शानने अपने आपको सम्राट् उद्घोषित कर दिया है।

नाटकका पर्दा उठानेसे पूर्व नाटकके प्रधान पात्रोंका कुछ परिचय प्राप्त कर लें तो उत्तम है। सबसे बड़े भाईका नाम जहाँदारशाह था जो कई युद्धोंमें लड़ चुका था और कई सूबोंका सूबेदार रह चुका था, परन्तु दिलका गीदड़ था। पिताकी अन्तिम बीमारीमें जहाँदारशाह और अज़ीमुश्शान रोगीकी खाटके पास बैठे हुए थे। अज़ीमुश्शानको क्या सूझी कि एक जड़ाऊ कटारको म्यानसे निकालकर हिलाने लगा। जहाँदारशाहने जो देखा तो होश उड़ गये। उठकर भागा, भागते हुए जूते पहिननेकी सुध न रही। नंगे पाँव डेरेसे बाहिर निकलने लगा तो सिरकी पगड़ी द्वारमें उलझकर गिर पड़ी। पगड़ीकी ममता त्यागकर आगे चला तो डेरेकी रस्सीमें पाँव अटक गया और मुगल सम्राट्का युवराज औंधे मुँह भूमिपर गिर पड़ा। मुग़ल वंशमें ऐसी सन्तान पैदा हो जायगी, इसका बाबरको कल्पनामें भी ध्यान न आ सकता था। जहाँदारशाहको युद्ध या प्रबन्धका शौक नहीं था, पर दिल लगानेको तो कुछ चाहिए इसलिए युवराजने मनोरंजनके लिए मदिरा और मोहिनीका आश्रय ढूँढ़ लिया था। खूब पीना और खूब सम्भोग करना, यही जहाँदारशाहका काम था। पिताकी मृत्युके समय उसपर लाल कुँअर नामकी एक नर्तकीका पूर्ण अधिकार था, वह तन्मय हो रहा था।

दूसरे भाईका नाम अज़ीमुश्शान था। वह मृत्युके समय बहादुरशाहका प्रेमपात्र होनेके कारण सब दरबारियोंका लाड़ला बना हुआ था। वह ऐसा सोना था जिसकी अभी अग्नि-परीक्षा नहीं हुई थी। वह ऐसा घोड़ा था, जो कभी गाड़ीमें नहीं जुता था। किसी बड़े युद्धमें उसने सेनापतित्व नहीं किया था, परन्तु, न जाने किस तरह, उसके मनमें यह बात समा गई थी कि मैं बहादुर और

सेनापति हूँ। उसे यह भी विश्वास था कि जहाँ मैंने आँखें उठाकर शेष भाइयोंकी ओर देखा कि वह सब पिघल जायँगे। 'जरा ठहरो' यह उसका तकिया कलाम था। वह बहुत सोचता था। इतना सोचता था कि सोचने ही सोचनेमें काम और समय दोनों व्यतीत हो जाते थे।

रफीउश्शानका अधिकांश समय सुन्दर कपड़ों और जवाहिरातके खरीदनेमें, शरीरके सजानेमें, राग-रंगमें व्यतीत होता था। उसके बारेमें निम्नलिखित शेर कहा जाता था—

आईना वशाला गिरिफ़्ता बदस्त
चूँ ज़ने राना शुदा गेसूपरस्त।

(सुन्दर स्त्रीकी तरह हाथमें शीशा और कंघी लेकर वह अपने बालोंको ही बनाता रहता है।)

जहानशाह सबसे छोटा था। वह वीर तो था, परन्तु अनुभव और शक्तिसे हीन था।

यह थे वे पहलवान गद्दीके लिए जिनमें कुश्ती होनेवाली थी। परन्तु युद्ध-नाटकके पात्रोंका परिचय अधूरा रहेगा यदि हम एक और पात्रका वर्णन न करें। यह स्मरण रखना चाहिए कि बहादुरशाहके साथ ही साथ मुग़ल साम्राज्यका राज-काल समाप्त होकर सचिव-काल आरम्भ हो जाता है। अब तक बादशाह नीतिका निर्माण करते थे परन्तु अबसे साम्राज्यका भाग्य-निर्णय वज़ीरोंके हाथमें जाने लगा। इस समय भी राजगद्दीके अधिकार-निर्णयमें सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण हस्तक्षेप करनेवाले सरदारका नाम जुल्फिकारखाँ था।

जुल्फिकारखाँ बहादुरशाहके समयमें अमीरुल उमरा और प्रथम बख्शीके पदपर प्रतिष्ठित था। वह बड़ा धूर्त और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। जब बादशाहकी मृत्यु समीप दिखाई देने लगी तो उसने अपनी नीतिका जाल चारों ओर फैलाना आरम्भ किया। उसने चारों भाइयोंके पास अलग अलग अपनी भक्ति और सेवाके सन्देश भेज छोड़े थे। अज़ीमुश्शानका नक्कारा बजते ही उसने अपने एक दूतको उठते हुए सितारेके चरणोंमें भक्तिकी भेंट रखनेके लिए भेजा, परन्तु वह जिस वज़ीरके पास पहुँचा वह स्वयं प्रधान मन्त्रीकी गद्दीका स्वप्न देख रहा था। उसने जुल्फिकारखाँके दूतको फटकार कर वापिस कर दिया। तब उस चालबाज़ सरदारने शहरसे अपना डेरा

उठाया और बड़े भाई जहाँदारशाहके पास जाकर शरण ली। जहाँदारशाह इस समय बड़ी ही दीन अवस्थामें था। उसके पास न धन था और न सेना थी। मदिरा और स्त्रीकी अत्यन्त सेवाने उसे कंगाल कर दिया था। उसने जुल्फिकारखाँका दिलसे स्वागत किया।

शेष दोनों भाइयोंकी भी लगभग जहाँदारशाह जैसी ही दशा थी। उनमेंसे किसीको भी आशा न थी कि वह अज़ीमुश्शानका सामना कर सकेगा। सब राजगद्दी और साथ ही अपने जीवनसे निराश हो रहे थे। जुल्फिकारखाँने उन सबपर नीतिका ऐसा जाल फैलाया कि वह तीनों भाई मिलकर अज़ीमुश्शानसे लड़नेको तैयार हो गये। धूर्त जुल्फिकारखाँने तीनोंहीको अलग अलग आशायें दिलाकर यह वादा ले लिया था कि प्रधानामात्यका ओहदा उसके लिए सुरक्षित रहेगा। यह समझौता हो गया था कि अज़ीमुश्शानको परास्त करनेपर लूटका जो माल मिलेगा, वह भाइयोंमें बराबर बराबर बँट जायगा और देशका बँटवारा इस प्रकार होगा कि दिल्लीकी गद्दीपर जहाँदारशाह बैठेगा, रफीउश्शानके हिस्सेमें काबुल, काश्मीर, मुल्तान और सिंधके सूबे आयँगे और जहानशाहको दक्षिण सौंपा जायगा। दिलमें तीनों भाई समझते थे कि एकपर विजय पाकर शेष दोनों भाइयोंको भी समाप्त करना होगा, परन्तु कुछ समयके लिए तो जुल्फिकारखाँने तीन चीतोंको एक खूँटेमें बाँध ही दिया।

तीनों भाइयोंकी सम्मिलित सेना मिलकर धीरे धीरे अज़ीमुश्शानके डेरेकी ओर बढ़ने लगी। वह तो हिन्दुस्तानका बादशाह बन चुका था। उसे इन तीन फकीर शाहज़ादोंकी क्या पर्वा थी? उसके पास खज़ाना था, सेना थी, दबदबा था, फिर किसका डर था? वज़ीर आकर कहते 'हुजूर, दुश्मन आगे बढ़ रहा है। उसपर एकदम आक्रमण कर देना चाहिए, ताकि उसकी शक्ति बढ़ने न पाये', तो उत्तर मिलता, 'जरा ठहरो।' वज़ीर चुप होकर सोचने लगते कि आख़िर क्यों ठहरो और किसकी प्रतीक्षामें ठहरो, परन्तु कुछ समझमें न आता। अज़ीमुश्शान बैठा बैठा स्वप्न देखा करता था कि तीन गीदड़ बढ़ते आ रहे हैं, ज्यों ही शेरकी आँखें उठेंगी त्यों ही सब गीदड़ भागते दृष्टिगोचर होंगे, ऐसी दशामें जल्दी क्या है? आँखें ही तो उठानी हैं, जब चाहेंगे उठा देंगे।

कोई पन्द्रह दिन तक यही दशा रही, अजीमुश्शान स्वप्न लेता रहा, परन्तु जब स्वप्न टूटा तो खेत चुगा जा चुका था। तीन दिन तक लड़ाई हुई जिसमें अजीमुश्शानक वज़ीर और साथी खूब वीरतासे लड़े परन्तु भाइयोंकी

सम्मिलित सेनाके सामने न ठहर सके। 'जरा ठहरो' की नीतिने अपना रंग दिखाया। जुल्फिकारखाँको सेना संग्रह करनेके लिए पर्याप्त समय मिल गया। राजकुमार जहानशाह बड़ी वीरतासे लड़ा, चौथे दिन भाइयोंकी सम्मिलित सेना अज़ीमुश्शानके डेरेके सर्वथा समीप तक पहुँच गई। उस दिन खूब घमासान युद्ध हुआ। चारों ओरसे अज़ीमुश्शानपर आक्रमण हो रहा था परन्तु वह अपने तम्बूमें बैठा हुआ स्वप्न ले रहा था कि 'मैंने आँख उठाई और गीदड़ भागे।' दयाबहादर और ज़ालिमसिंह आक्रमणका समाचार लेकर डेरेमें घुस गये, और निवेदन किया कि 'शत्रु बहुत आगे बढ़ आया है, अब तो उसपर प्रत्याक्रमणकी आज्ञा मिलनी चाहिए'। अज़ीमुश्शानने उसी लटकमें उत्तर दिया 'जरा ठहरो'। उस दिन भी अज़ीमुश्शानके सेनापतियोंको स्वामीकी आज्ञाके विना ही लड़ना पड़ा! स्वामीके प्रमादका सेनापर प्रभाव पड़ता ही है। उस रात कैम्पसे लगभग पचास हज़ार आदमी भाग गये थे। अज़ीमुश्शानकी सेनामें १५ दिन पहले सत्तर हज़ार लड़ाके सिपाही गिने गये थे पर उस अन्तिम आक्रमणके दिन उनकी संख्या १० या १२ हजारसे अधिक न थी।

दिन-भर लड़ाई रही। रातके समय अज़ीमुश्शानके शेष सिपाही भी भाग निकले। कठिनाईसे दो हज़ारके लगभग शेष रह गये। प्रातःकाल युद्धका नगाड़ा बजा तो उस प्रमादी राजकुमारको प्रतीत हुआ कि अब ठहरनेके लिए ज़रा-सा भी समय नहीं है। उसे सवार करानेके लिए हाथी लाया गया तो हाथीने सवारी देनेसे इन्कार कर दिया। दूसरा हाथी लाया गया और उसपर सवार होकर अज़ीमुश्शान अपनी विशाल सेनाकी बची हुई दुमके साथ मैदानमें आया। जोरकी आँधी चल रही थी, रावीकी रेत उड़ उड़ कर आँखोंको ढक रही थी, शत्रु और मित्रमें विवेक करना कठिन हो रहा था। उस समय तोपका एक गोला आया और हाथीकी सूँड़के लगा। हाथी चौंक कर भागा। महावत नीचे गिर गया और बेचारा नौकर रस्सियाँ पकड़कर नीचे लटक गया और बच गया। अज़ीमुश्शानको लिये हुए हाथी अन्धाधुन्ध भागा जा रहा था। कुछ सिपाहियोंने देख लिया और वे शाहज़ादेको बचानेके लिए पीछे भागे पर हाथी इस वेगसे भागा जा रहा था कि उसे पकड़ न सके। हाथी नदीकी ओर गया था, जब सिपाही वहाँ पहुँचे तो उन्हें न हाथी दिखाई दिया और न शाहज़ादा। वहाँ तो दलदलकी चादरमेंसे कुछ बुलबुले उठ रहे थे जो बतला रहे थे कि भारतका सम्राट् बननेकी हविस इस जगह दफ़नाई गई है।

१२—मदिरा और मोहिनीका दास

बाबर और अकबरका एक वंशज अपने प्रमादके कारण किस प्रकार बेमौत मरा यह हम सुना चुके, अब दूसरा वंशज मदिरा और मोहिनीके जालमें फँसकर किस प्रकार बरबाद हुआ, इसकी कहानी भी सुनिए। जब अज़ीमुश्शान रावीकी दलदलके रास्तेसे परलोक चला गया तो तीन भाई राजगद्दीको बाँटनेके लिए रह गये। जुल्फिकारख़ाँने तीनों भाइयोंको भरोसा दे रक्खा था, परन्तु उसका दिल बड़े शाहज़ादे जहाँदारशाहके साथ था। जब लड़ाईकी लूटको बाँटनेका समय आया तो जुल्फिकारख़ाँने रफी उश्शान और जहानशाहकी ओरसे आँखें बदल लीं। उनके दूत आते तो डेरेके बाहरसे गल-हत्था देकर निकाल दिये जाते। उस धूर्त सरदारने अपनी बेईमानीको छुपानेका यत्न भी न किया। अन्तमें निर्णय तलवारकी अदालतमें ही हुआ। जहानशाह आयुमें सबसे छोटा था परन्तु साहसमें सबसे बड़ा था। वह वीरतासे लड़ा। जहाँदारशाह अजीमुश्शानके मर जानेपर निश्चिन्त हो गया था। उसने वह रात अलग डेरेमें अपनी नई प्रेमिका लाल कुँअरके साथ बिताई थी। जब प्रातःकाल लड़ाईका डंका सुनाई दिया तो वह घबराकर डेरेसे निकला और हाथीपर सवार होकर सेनाकी संरक्षामें आ गया। परन्तु शत्रुका आक्रमण प्रचण्ड था। हाथी विरोधियोंसे घिर गया। जहाँदारशाहने उस समय जान बचानेके लिए वह काम किया जो उसके पूर्वज बाबर, अकबर या औरंगज़ेबसे स्वप्नमें भी न हो सकता था। वह हौदेमें लेट गया। जब शत्रु पास आये और हौदा ख़ाली देखा तो महावतसे पूछा कि शाहज़ादा कहाँ है? उसने कहा कि मर गया। शत्रु निश्चिन्त होकर दूसरी ओर लड़ने लगे और महावत जहाँदारशाहकी जान बचाकर भाग निकला।

दूसरे क्षेत्रमें जहानशाह स्वयं लड़ रहा था। वह वीर और साहसी था, परन्तु अनुभवशून्यताके कारण जुल्फ़िकारख़ाँके पंजेमें आ गया। अपनी सेनासे अलग होकर वह बहुत आगे बढ़ गया और शत्रुओंसे घिरकर मारा गया। रफीउश्शान पहले तो जहाँदारशाह और जहानशाहके युद्धके परिणामकी प्रतीक्षा करता रहा, जब जहानशाह मारा, गया तो उसने भी लड़नेकी ठानी। उसका लड़ना क्या था, वह तो मरना ही था। न उसके पास सेना थी, न युद्ध-कला। बेचारेके लिए

एक ही रास्ता खुला था कि युद्ध करता हुआ वीर-गतिको प्राप्त होता। जिसने अवतक कंघी और शीशेको ही अपना सबसे बड़ा हथियार बना रखा था, वह खड्ग हाथमें लेकर शत्रु-दलमें घुस जाय और छातीमें गोली खाकर जान दे, यह कुछ कम प्रशंसाकी बात नहीं थी।

सब विरोधियोंको नष्ट करके जुल्फिकारखाँने जहाँदारशाहको साम्राज्यके सिंहासनपर बिठा दिया। जहाँदारशाहने भी उसे वज़ीरे आज़म बनाकर कृतज्ञता प्रकाशित की। २२ जून १७१२ के दिन बादशाह जहाँदारशाह मुग़ल साम्राज्यकी राजधानी दिल्लीमें धूमधामसे प्रविष्ट होकर तख्ते ताऊसपर विराजमान हुआ। जहाँदारशाहको सिंहासनपर पहुँचनेमें जो सफलता प्राप्त हुई, उसके कारणोंपर विचार करें तो यह बात माननी पड़ेगी कि भाग्य भी कोई वस्तु है। भाग्य ही था जिसने उसे विजयी बनाया, अन्यथा जहाँदारशाहने तो असफल होनेमें कोई कसर न छोड़ी थी। उसकी मस्तक-रेखामें कुछ समय तक तख्ते ताऊसपर बैठना लिखा था। वह न टल सका।

जहाँदारशाहने हुकूमत करनेका सबसे सरल उपाय निकाल लिया। उसने हुकूमत करना ही छोड़ दिया। राज्यकी देख-भाल वज़ीरोंपर छोड़ दी और अपने आपको लाल कुँअर नर्तकीके सुपुर्द कर लिया। वज़ीरोंने भी बादशाह सलामतका अनुकरण किया। उन्होंने सल्तनतके कारोबारकी देख-भाल अपने कारिन्दोंपर छोड़ दी और इस प्रकार शासनके धन्धोंसे निश्चिन्त होकर बादशाह और उसके वज़ीर विजयके आनन्द उड़ाने लगे।

जहाँदारशाहने सारे संसारको भुलाकर लाल कुँअरकी सेवामें तन-मन-धन अर्पण कर दिया। उस नर्तकीने भी बादशाहको खूब नचाया। लाल कुँअर महलोंकी स्वामिनी बन गई। बादशाहने उसे 'इम्तियाज़ महल'की उपाधिसे विभूषित करके यह अधिकार दे दिया कि वह जब महलसे बाहिर निकले तो वह छत्र उसके सिरपर रह सकता है जिसे केवल बादशाह ही धारण कर सकता है। बादशाहकी ही भाँति उसकी सवारीके आगे आगे बाजा भी बजने लगा। लाल कुँअरकी इच्छा साम्राज्यका कानून थी। उसे रोशनी देखनेका बहुत शौक था। हुक्म हुआ कि प्रत्येक मासमें तीन बार दिल्लीमें दीवाली हुआ करे। जो दिये न जलाये वह दण्डका अधिकारी हो। तेलका दीवाला निकल गया; रुपयेमें

आध सेर भी नहीं मिलता था। तब हुक्म हुआ कि घीके चिराग जलाये जायँ। राजधानीमें हाहाकार मच गया। इतना घी कहाँसे आये ?

एक दिन जहाँदारशाह और लाल कुँअर महलकी छतपरसे यमुनाकी ओर देख रहे थे। सवारियोंसे भरी हुए एक नौका पार जा रही थी। लाल कुँअर बोली "मैंने सवारियोंसे भरी हुई किश्तीको कभी डूबते नहीं देखा।" बस इतना इशारा काफ़ी था। उसी समय बादशाहकी आज्ञासे मल्लाहोंने यात्रियोंसे भरी हुई एक किश्ती यमुनाकी धारमें ले जाकर उलट दी। बीसियों व्यक्ति डूबकर मर गये। लाल कुँअर मुस्करा दी जिससे जहाँदारशाहका जीवन सफल हो गया ! किले और शिकारगाहके बीचमें जो मैदान था, उसमें बहुत-से ऊँचे और छायादार वृक्ष लगे हुए थे। राहगीरोंको उनकी छायामें बड़ा आराम मिलता था। वह नगरवासियोंके सुख और विनोदके लिए बहुत उपयोगी थे। लाल कुँअरने महलकी छतपरसे एक दिन उस ओर देखा तो मनमें विचार किया कि यदि यह वृक्ष यहाँ न होते तो कैसा लगता ? यह प्रश्न उसने अपने उन्मत्त प्रेमीके सामने दुहरा दिया। उत्तरमें देर न लगी। प्रजाको सुख देनेवाले वह हजारों वृक्ष, जो उपयोगी भी थे और सुन्दर भी, काटकर पृथ्वीपर डाल दिये गये। लाल कुँअर अब शिकारगाहको बिना किसी प्रतिरोधके देख सकती थी। दिल्लीका सम्राट् निहाल हो गया।

नर्तकीकी सत्ताको महल-भरने सिर झुका कर स्वीकार कर लिया क्योंकि बादशाहकी ऐसी मर्जी थी, परन्तु बादशाहकी सगी बुआ बेगम ज़िनातुन्निसा इस अपमानको न सह सकी। वह कभी लाल कुँअरके पास न आती और न उसकी आज्ञाको मानती। लाल कुँअरने न केवल उसपर गालियोंकी भरपूर बौछार ही की बल्कि जहाँदारशाहको भी आज्ञा दी कि वह अपनी बुआसे कोई वास्ता न रक्खे। आज्ञाका शब्दशः पालन हुआ। बादशाहने बुआसे मिलना छोड़ दिया। लाल कुँअरको बादशाहके दोनों छोटे पुत्र नहीं भाते थे। वह उन्हें देखना तक नहीं चाहती थी। बादशाहने उन्हें तुरन्त जेलमें बन्द कर दिया। लाल कुँअरकी प्रबल अभिलाषा थी कि उसके सन्तान उत्पन्न हो जो राज्यकी उत्तराधिकारिणी हो। शाहजहानाबाद(=दिल्ली) से ६ मीलकी दूरीपर चिराग दिल्ली नामका एक गाँव है, वहाँ शेख नसीरुद्दीन अवधीकी कब्रके पास एक तालाब है। मशहूर था कि यदि कोई दम्पति बराबर ४० हफ्तोंतक इतवारके

दिन उस तालाबमें नंगे स्नान करें तो सन्तान अवश्य हो जायगी। बादशाह सलामत अपनी नचनी मित्रके साथ हर रविवारको वहाँ जाते और, जैसे माके पेटसे जन्मे थे वैसे, नंगे होकर स्नान करते। इस तालाबके एक किनारेपर ऊँची चट्टान है जिसपरसे बाज़ारू लड़के पानीमें कूदकर अपना और दर्शकोंका मनोविनोद किया करते थे। जहाँदारशाहको भी वहाँसे कूदनेका शौक चर्राया। आपने भी ऊँचेसे तालाबमें कूदकर लाल कुँअरका मनोविनोद किया।

एक रात तो उस विलासिताकी मूर्तिकी गिरावट सीमाको लाँघ गई। दोनोंके दिमाग़में क्या समाई कि एक बैलगाड़ीपर बैठकर बाज़ारको चल दिये और दूकानोंसे सौदे ख़रीदनेका काम किया। एक दिन दोनोंने इसी प्रकार आवारागर्दीमें व्यतीत किया। रातको घर लौटते हुए एक शराबकी दूकानपर ठहर गये। दूकान लाल कुँअरकी एक सहेलीकी थी। दोनोंने खूब मदिरा पी, यहाँ तक कि बेहोश होकर बैलगाड़ीमें पड़ गये। दूकानदारिनको बेहोश होनेसे पूर्व बादशाह सलामतने एक गाँवकी मालगुज़ारी इनाममें दी। दोनों मदमस्तोंको लिये बैलगाड़ी किलेमें पहुँची तो दासियोंने लाल कुँअरको उठाकर अन्दर पहुँचा दिया। प्रतीत होता है कि रथवानने भी बादशाहका अनुकरण किया था और शराबसे होश खो दिये थे, क्योंकि उसे बादशाहका गाड़ीमें रहना याद ही न रहा। उसने रथको ले जाकर किलेसे बाहिर रथखानेमें खड़ा कर दिया। रथखाना किलेसे लगभग दो मील दूर था। औरंगज़ेबका पोता रातके समय शराबसे मदहोश होकर रथखानेका मेहमान रहा। जब नौकरोंने जहाँदारशाहका पलंग खाली देखा और लाल कुँअरके महलमें भी कोई पता न चला, तब खोज जारी हुई। आखिर लाल कुँअरको रातकी घटना याद आई और उसने नौकरोंसे रथकी तलाशी लेनेको कहा। नौकर भागे हुए रथख़ानेमें गये और बेहोश बादशाहको उठाकर किलेमें ले आये।

जिस साम्राज्यके एकच्छत्र शासककी यह दशा हो, उसकी रक्षा भगवानसे भी नहीं हो सकती। हम कह सकते हैं कि उन पाँच महीनोंमें मुग़ल साम्राज्यका शासन हुआ ही नहीं। बादशाह लाल कुँअरके पीछे पागल हो रहा था। रियासतके बड़े ओहदे उसीकी सिफ़ारिशसे बाँटे जाते थे। मीरासी और भाँड़ रास्तोंपर रईसोंके कन्धे छीलते हुए चलते थे। लाल कुँअरके तीनों भाई, जिनका असली पेशा नाचना और गाना था, नियामतख़ाँ, नामदारख़ाँ, और ख़ानाज़ादख़ाँके

शानदार नामोंसे विभूषित किये गये और सल्तनतके सरदार माने जाने लगे। उन्हें सूबोंकी गवर्नरीके योग्य समझा गया। यथा राजा तथा प्रजा। सल्तनतकी देख-भालका काम प्रधान वज़ीर ज़ुल्फिकारखाँके सुपुर्द था। उसने भी स्वामीका अनुकरण किया। सारा काम राजा सभाचन्दके सुपुर्द करके स्वयं विलासके सरोवरमें मग्न हो गया। सभाचन्दको सुनहरा अवसर मिला। उसने दोनों हाथोंसे लूट आरम्भ की। इस प्रकार राजा, मंत्री और मंत्रीके मंत्रीने साम्राज्यको उसके भाग्योंपर छोड़कर अपने आपको सुख-सम्भोगकी नदीमें डाल दिया।

मुग़ल साम्राज्य अधःपातके मार्गपर सरपट दौड़ने लगा। कोई सारथि नहीं रहा जो घोड़ोंकी लगामें खैंचकर गाड़ीको गढ़ेमें गिरनेसे बचाता।

१३–मन्त्रियोंका आधिपत्य

मुग़ल साम्राज्यके इतिहासमें नरेशोंके दिन हो चुके, अब नरेश-निर्माताओंका युग आ पहुँचा। दिल्लीकी गद्दीपर बैठकर शासन करनेवालोंमेंसे मुहम्मदशाह आखिरी नरेश था। जहाँदारशाह ज़ुल्फिकारका औज़ार था। वह न स्वयं गद्दीपर बैठा और न उसने स्वयं शासन किया। एकसत्तात्मक राज्यमें समझ लो कि अन्त समय समीप आ पहुँचा, जब शासकने शासन करना छोड़ दिया। जहाँदारशाहको राजगद्दीपर बिठानेका श्रेय ज़ुल्फिकारखाँको प्राप्त हुआ था। उसने अपने पाँच महीनेके राज्यकालमें भी कभी शासन करनेका कष्ट नहीं उठाया। ज़ुल्फिकारखाँ कारीगर था और जहाँदारशाह उसका औज़ार। ऐसा शासक देरतक गद्दीपर कैसे रह सकता था? नये कारीगर पैदा हो रहे थे और नया ही औज़ार चुना जा रहा था। जब जहाँदारशाह अपना अमूल्य समय लाल कुँअरके साथ आवारागर्दीमें और मदिरा-पानमें खो रहा था तब सुदूरवर्ती बंगालके आकाशमें उसके नाशके लिए एक भारी तूफ़ान खड़ा हो रहा था।

बहादुरशाहकी मृत्युके पश्चात् जब जहाँदारशाहने तीनों भाइयोंकी हत्या करके राज्यारोहण किया तब उसने पहला काम यह किया कि राज-वंशके उन सब शाहज़ादोंको चुन चुन कर मार डाला जो कभी राज्यके उम्मेदवार हो सकते थे। केवल एक राजकुमार बच गया। अजीमुश्शानका लड़का फर्रुखसियर बंगालका सूबेदार था। उत्तराधिकार-युद्धकी सूचना पहुँचते ही वह दिल्लीकी ओर रवाना हुआ, परन्तु, वह अभी बिहार तक ही पहुँचा था कि अजीमुश्शानकी मृत्युका

समाचार पहुँच गया। विष ही अमृत सिद्ध हुआ। दूरी और विलम्बने उसके प्राण बचा दिये। बिहारका सूबेदार सय्यद हुसैनअली अजीमुश्शानका पुराना सेवक था और महत्त्वाकांक्षी भी था। उसने फर्रुखसियरको सहारा दिया। सय्यद हुसैनअलीका बड़ा भाई सय्यद अब्दुल्ला इलाहाबादका सूबेदार था। वह भी भाईकी बातको न टाल सका। दोनों भाई वीर और साहसी थे। भारतवर्षमें हज़रत मुहम्मदके वंशज ' सय्यद ' नामसे पुकारे जाते हैं। मुसलमानोंमें उनकी बड़ी मानता है। दोनों सय्यद-बन्धु भारतमें विद्यमान सय्यद-समाजके नेता होनेसे प्रभावशाली थे। सय्यद-बन्धुओंने फर्रुखसियरको सम्राट्-रूपमें अंगीकार करके उसे आश्वासन दिया कि वह प्राणपणसे उसका साथ देंगे। सय्यद-बन्धु कारीगर बने और फर्रुख़सियर उनका औज़ार बना। इस प्रकार जहाँदारशाहकी काम-निद्राका भंग करनेके लिए बंगालकी जल-बहुल भूमिमें एक तूफ़ान तैयार हुआ।

सय्यद-बन्धुओंने थोड़े ही समयमें काफ़ी सेना भर्ती कर ली। चढ़ती कलाके सामने सभी प्रणाम करने लगते हैं। बहुत-से सरदार फर्रुख़सियरकी शक्तिको बढ़ते देखकर उसकी सेनामें सम्मिलित होने लगे। उधर जहाँदारशाहके प्रमादकी कोई सीमा नहीं थी। उसे बिहारके समाचार मिले तो वह उपेक्षासे मुस्करा दिया और केवल अपने लड़केको दो अनुभवशून्य खुशामदी सरदारोंकी देख-रेखमें आगरेकी ओर रवाना करके उसने समझ लिया कि अब फर्रुखसियरके दरवाज़ेपर ताला लग गया। वह उसके आगे नहीं बढ़ सकता। यह सोचकर वह विलासी मदिरा और मोहिनीके मोहमें बेहोश होकर फिर सो गया।

उसकी नींद तब टूटी जब बंगालसे उठा हुआ तूफ़ान आगरेकी सीमाओंसे टकरा रहा था। जागकर देखा कि शत्रु द्वारपर खड़ा है, उसको रोकनेके लिए सेना चाहिए, सेनाके लिए धन चाहिए, और खज़ानेमें फूटी कौड़ी भी नहीं। अब क्या किया जाय ? घबराहटमें आकर जहाँदारशाहने आज्ञा दी की खजानेमें, महलमें और दरबारमें जितनी कीमती चीज़ें हैं, सब साबित या तोड़कर बेच दी जायँ। कई पीढ़ियोंके परिश्रमसे संचित धन और शानकी सामग्री मिट्टीके भाव बिक गई और फिर भी सेनाके लिए पर्याप्त धन न मिला। तब आगरेका खज़ाना खोदा गया। वहाँ ताँबेके ढेरके सिवा कुछ न मिला। उसीको बेचा गया। इस प्रकारकी भाग-दौड़से जो अवघड़ सेना एकत्र हो सकी उसकी

सहायतासे जहाँदारशाह और उसके सर्वेसर्वा जुल्फिकारखाँने सय्यद-बन्धुओंकी सेनाका मार्ग रोकनेका यत्न किया।

घमासान युद्ध हुआ। खूब मार-काट हुई। सय्यद हुसैनअली तो घायल होकर गिर पड़ा और मरा हुआ समझकर मैदानमें ही छोड़ दिया गया। परन्तु जहाँदारशाहकी सेनामें सेनापतियोंकी परस्पर स्पर्धाके कारण फूट थी। उन्हें अपना स्वार्थ अधिक और बादशाहका हित कम प्यारा था। कई सेनापति तो युद्धके समय सीधे ही शत्रुके साथ जा मिले। जो शेष थे, उनमेंसे भी बहुत-से बेदिलीसे लड़े। अन्तमें सय्यद अब्दुल्लाखाँने, शत्रुके उस भागपर जिसमें जहाँदारशाह था, एक ज़ोरदार आक्रमण किया। तीरन्दाजोंने चारों ओरसे उस हाथीको बेध दिया जिसमें जहाँदारशाह बैठा हुआ था। हाथी तीरोंकी मार खाकर घबरा गया और चारों ओर भागकर बादशाहके अंग-रक्षकोंको ही पीसने लगा। इस संकटको देखकर जहाँदारशाह हाथीसे उतरकर घोड़ेपर सवार हो गया। इतनेमें लाल कुँअर अपने प्रेमीको तलाश करती हुई वहाँ आ पहुँची और उसने बादशाहको अपने हाथीमें बिठाकर आगरेका रास्ता लिया। बादशाहको मैदानसे भागा हुआ देखकर सेनाका दम उखड़ गया। राजपक्षके अनेक सेनापति रातके जन-कर्दममें मारे गये, शेष जान बचाकर भाग निकले।

जहाँदारशाहने अब यही निश्चय किया कि प्राण बचाकर किसी प्रकार दिल्ली पहुँचा जाय। लाल कुँअरकी सलाहसे उसने दाढ़ी-मूँछ मुड़वा दी और एक छतदार बहलीपर बैठकर यात्रा आरम्भ की। माँगकर भोजन करती और भूमितलपर विश्राम करती हुई यह जोड़ी पाँच दिन बहलीकी यात्रा करके दिल्ली पहुँची।

जुल्फिकारखाँ एक दिन पहले ही घर पहुँच चुका था। वह और उसका बूढ़ा पिता असदखाँ इतिकर्तव्यतापर विचार ही कर रहे थे कि जहाँदारशाहके पहुँचनेकी खबर मिली। जहाँदारशाहको दिल्ली पहुँचनेपर सिवाय इसके कोई रक्षाका मार्ग न मिला कि अपने आपको असदखाँ और जुल्फिकारखाँके अर्पण कर दे। पिता-पुत्रने परिस्थितिपर देरतक विचार किया। उनके सामने दो मार्ग खुले थे। या तो स्वामीके लिए मर मिटते, या शत्रुके सामने सिर झुकाते। पहला मार्ग श्रेयका और दूसरा मार्ग प्रेयका था, परन्तु उन दोनोंने जिस मार्गका अवलम्बन किया वह इन दोनोंसे भिन्न असाधारण गिरावटका था। उन्होंने स्वामीको तो भरोसा दिया कि उसका साथ देंगे, विश्वास देकर उसे क़ैद कर लिया

और शत्रुको सूचना दे दी कि हमने जहाँदारशाहको बन्दी बना लिया है, दिल्ली आनेपर वह आपके सुपुर्द कर दिया जायगा।

स्वामिद्रोहियोंको पापका उचित दण्ड मिल गया। कुछ दिन पीछे फर्रुखसियरने दिल्लीमें आकर अपराधियोंको सज़ा देनेका कार्य प्रारम्भ किया। असदखाँकी बूढ़ी जानपर दया दिखाई गई परन्तु ज़ुल्फिकारखाँको प्राण-दण्ड दिया गया। विजयके समय फर्रुखसियर अपने आपको सँभाल न सका। मुग़ल वंशकी अन्तर्हित क्रूरता पर्देको फाड़कर बाहर निकल आई। सय्यद-बन्धुओंने अपने मार्गको निष्कंटक बनानेके लिए उस क्रूरताकी अग्निको सहमतिका घी डालकर खूब भड़काया। जिस दिन ज़ुल्फिकारखाँको मृत्यु-दण्ड दिया गया उसी दिन कुछ हत्यारे जहाँदारशाहको मारनेके लिए भी भेजे गये। मृत्युके दूतोंको देखकर लाल कुँअर जहाँदारशाहके गलेसे लिपट गई। वह छोड़ती न थी इसलिए उसे घसीट कर कोठरीसे बाहिर निकाला गया और फिर हत्यारोंने पराजित बादशाहका गला घोंट दिया। गला घोंटनेसे भी साँस शीघ्र नहीं निकलती थी, तब एक मुग़लने बेचारेके मर्मस्थानपर कई ठोकरें मारीं। जब शरीर निष्प्राण हो गया तो जल्लादने आकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया। वह कटा हुआ सिर भेंटके रूपमें फर्रुख़सियरकी सेवामें हाजिर किया गया। जहाँदारशाह और ज़ुल्फिकारखाँकी लाशें कई दिनोंतक दिल्ली-दरवाज़ेके बाहिर मैदानमें पड़ीं सड़ती रहीं।

फर्रुखसियर दिल्लीके राजसिंहासनपर आरूढ़ हुआ। शायद ही कोई मुग़ल बादशाह अपने वंशके रक्तमें स्नान किये बिना उस गद्दीपर आरूढ़ हुआ हो। फर्रुख़सियर भी अपवाद न बन सका। गद्दीपर बैठनेके अनन्तर पहला काम जो बादशाहको करना पड़ा वह था अधिकारोंके बँटवारेका। गृह-युद्धके सब सहायकोंको कुछ न कुछ इनाम देना आवश्यक था। सभीको कुछ न कुछ मिला, पर सबसे अधिक अधिकार सय्यद-बन्धुओंको बाँटे गये। बड़े भाई अब्दुल्लाखाँका उपाधि-सहित पूरा नाम अब 'नवाब कुतबुलमुल्क, यमीनुद्दौला, सय्यद अब्दुल्लाखाँ बहादुर ज़फ़रजंग, सिपहसालार यारे वफादार' था। वह प्रधानमन्त्रीके पदपर नियुक्त किया गया। छोटे भाई सय्यद हुसैनअलीको 'उम्दातुलमुल्क, अमीरुल उमरा बहादुर फीरोज़जंग सिपहसालार'की उपाधियोंसे विभूषित करके बख्शीके ओहदेसे सम्मानित किया गया। अन्य आवश्यक पदोंपर लुत्फुल्लाखाँ, मुहम्मद-

फ़र्रुखसियर

अमीनखाँ, तकर्रुबखाँ आदि सरदारोंको नियुक्त किया गया। अधिकारी तो बहुत-से बनाये गये, परन्तु शक्तिका निचोड़ सय्यद-बन्धुओंके हाथोंमें ही रहा।

इस प्रकार एक स्त्री-वशंवद बादशाहके करुणाजनक अधःपातके साथ एक सचिव-वशंवद बादशाहका राज्यारोहण हुआ। क्या उस राजवंशके दुर्भाग्योंके सम्बन्धमें भी कोई मतभेद हो सकता है जिसमें ऐसे निर्बल और नपुंसक शासकोंकी एक परम्परा चल जाय? मुग़ल साम्राज्यके इतिहासमें घोर दुर्भाग्यका क्षण आ पहुँचा था।

१४—फर्रुख़सियरकी हत्या

फर्रुखसियरका भाग्य अच्छा था कि उसे एक विषय-लम्पट निर्बल शत्रुसे वास्ता पड़ा और सहायताके लिए शक्तिसम्पन्न साथी मिल गये। स्वयं उसमें विजय प्राप्त करने या शासनकी बागडोरको सँभालनेके योग्य कोई भावात्मक गुण नहीं था। यह ठीक है कि वह सुन्दर और जड़ाऊ कपड़े पहिननेका बहुत शौकीन था, घोड़ोंपर असीम प्रेम करता था और भिखारियोंको बहुत दान देता था, परन्तु ये गुण राज्यके संचालनमें सहायता नहीं दे सकते थे। उसमें यदि कोई राज्यसम्बन्धी गुण थे तो निषेधात्मक थे। वह बहुत बुरा नहीं था, वह जहाँदारशाह जितना विषयासक्त नहीं था, वह आलमगीर जितना कट्टर नहीं था। इन्हीं निषेधात्मक विशेषताओंकी शृंखलामें आपको यह विशेषतायें भी जोड़ देनी चाहिए कि वह अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति नहीं रखता था, उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता था, उसमें युद्ध या शासनकी कोई योग्यता नहीं थी, वह अपने दिमाग़से अपनी भलाई या बुराईको नहीं सोच सकता था। इन निषेधात्मक विशेषताओंके कारण वह सदा दूसरोंके प्रभावमें आकर काम करता था। दृढ़ इच्छा, और अनन्त महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले मन्त्रियोंसे वह घिरा हुआ था। जिस समय जिस मन्त्रीका बस चलता, फर्रुख़सियरसे वह मनमानी करा लेता। यहाँ तक कि फर्रुख़सियरके राज्यकालमें जो युद्ध हुए वह भी मन्त्रियोंकी महत्त्वाकांक्षाओंके संघर्षके ही परिणाम थे। हुकूमतको उनसे कोई लाभ न हुआ।

हमने पहले अध्यायमें देखा है कि शासनकी बागडोर सय्यद-बन्धुओंने सँभाल ली थी। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनका अबाधित राज्य था, या कि

फर्रुख़सियरपर किसी दूसरेका असर ही नहीं था। कई ऊँचे ओहदोंपर ऐसे सरदार नियुक्त किये गये थे जो सय्यद-बन्धुओंके प्रभावसे डाह रखते थे। उनका भी बहुत असर था और उनकी पीठपर लड़ाकू शक्ति भी कम नहीं थी। मुहम्मद अमीनख़ाँ, जो हिन्दुस्तानके तूरानी सिपाहियोंका नेता समझा जाता था, बख्शीके पदपर नियुक्त किया गया। ख़ानदौरान बादशाहका खास मुसाहिब था। मीर जुमला प्रारम्भमें दक्षिणमें क़ाज़ी था फिर वह फर्रुख़सियरका दोस्त और सलाहकार बन गया। उसकी नैतिक स्थिति बदल गई, परन्तु मानसिक स्थिति वही क़ाज़ीकी बनी रही। उसका हृदय-अनुदार था, दृष्टिमें दरदर्शिताका अभाव था और स्वभावमें वक्रता थी। फर्रुख़सियर सय्यदोंका अनुग्रहीत था और उनकी शक्तिसे डरता था, परन्तु, फर्रुख़सियरको वह अपना अन्तरंग मित्र और सच्चा हितैषी समझता था। उसे हम फर्रुख़सियररूपी दुर्योधनका शकुनि कह सकते हैं।

फर्रुखसियरके सम्पूर्ण जीवनको षड्यन्त्रोंकी एक माला कह सकते हैं। वह स्वयं सर्वथा निर्बल और डरपोक था। सय्यद-बन्धुओंने अपनी शक्तिसे उसपर अधिकार पा लिया था। फर्रुखसियरके अन्य सलाहकार सय्यदाके प्रभावसे जलते थे। स्वयं फर्रुखसियर भी उनके चुंगलमेंसे निकलना चाहता था, परन्तु, उसमें इतना साहस नहीं था कि सीधी तरह सय्यदोंसे कह सके कि 'मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं।' साहसकी कमीको वह विश्वासघात और धोखेसे पूरा करना चाहता था। सय्यद-बन्धु सतर्क और वीर थे। बार बार षड्यंत्र बनता था और बारबार सय्यद-बन्धु उसे काट डालते थे। इसी खेंचातानीमें फर्रुखसियरका राज्य-काल व्यतीत हो गया। फर्रुखसियर और उसके क़ायर सलाहकार सय्यदोंके हाथसे अधिकार न छीन सके। विरोधाग्नि प्रतिदिन अधिकाधिक प्रचण्ड होती गई, यहाँ तक कि स्वयं फर्रुखसियर भी उसकी ज्वालामें जलकर राख हो गया।

उस षड्यन्त्र-शृंखलाका संक्षिप्त किस्सा इस प्रकार है। सय्यद भाइयोंमेंसे बड़ा अब्दुल्लाखाँ बातचीतमें चतुर, नीतिज्ञ और आरामपसन्द था। छोटा भाई हुसैनअली उग्र, वीर और साहसी था। इसी कारण बड़ेने प्रधान-मन्त्रीका और छोटेने सेनापतिका ओहदा पसन्द किया। फर्रुखसियर अब्दुल्लाखाँसे उतना नहीं घबराता था जितना हुसैनअलीसे। छोटे भाईकी महत्त्वाकांक्षा अपरिमित थी। सलाहकारोंने बादशाहको सुझाया कि किसी तरह हुसैनसे पिंड छुड़ाया जाय तो काम चले। बादशाहने सलाहको स्वीकार कर लिया और हुसैनअलीको मारवाड़के

राजा अजीतसिंहको परास्त करनेके लिए रवाना कर दिया गया। इधर तो सेनापतिको रण-यात्राकी आज्ञा दी गई और उधर राजपूत राजाको इशारा भेज दिया गया कि यदि तुम हुसैनअलीसे डटकर लड़ोगे तो बादशाहको बड़ी प्रसन्नता होगी। दोनोंमें कुछ समय तक लड़ाई हुई, पर दोनों ही कायर बादशाहकी चालको समझ गये थे। उन्हें बादशाहकी आज्ञा या इच्छाके लिए लड़ मरना उचित प्रतीत न हुआ, इस कारण दोनों ही सुलहके लिए तैयार हो गये। अजीतसिंहने दिल्लीकी अधीनता स्वीकार करते हुए अपनी कन्याका बादशाहसे विवाह करना अंगीकार कर लिया। हुसैनअलीने इस सन्धिको ग़नीमत समझा और भाईकी सहायताके लिए शीघ्र ही सेनासहित दिल्लीमें प्रवेश किया।

हुसैनअलीके दिल्ली आनेसे फर्रुख़सियरके होश उड़ गये। वह तो समझ रहा था कि उसने हुसैनको राजपूतानेके पहाड़ोंमें दफ़नानेके लिए भेज दिया है, परन्तु वह तो मारवाड़के विजयका सेहरा सिरपर बाँधे दनदनाता हुआ आ पहुँचा। बादशाहका दिल बैठ गया। उसे लेनेके देने पड़ गये। सय्यद-बन्धुओंने भी आँखें फेर लीं और दाँत दिखा दिये। तब घबराकर बादशाहने सुलहका पैग़ाम भेजा जो इस शर्तपर स्वीकार किया गया कि मीर जुमलाको दरबारसे अलग कर दिया जाय। उधर फर्रुख़सियर हुसैनअलीका दिल्लीमें रहना पसन्द नहीं करता था, इस कारण यह समझौता हो गया कि अब्दुल्लाख़ाँ वज़ीरके पद-पर स्थिर रहे, मीर जुमलाको बिहारका और हुसैनअलीको दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेज दिया जाय।

हुसैनअली दक्षिणके लिए रवाना हो गया। उधर षड्यन्त्रकारी बादशाहने गुजरातके सूबेदार दाऊदख़ाँको गुप्त आज्ञा भेज दी कि वह दक्षिण पहुँचनेपर हुसैनसे उलझ जाय और उसे नष्ट कर दे। दाऊदख़ाँ साहसी और दबंग था, वह बादशाहका इशारा पाकर अनायास ही हुसैनसे झगड़ पड़ा और दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। प्रारम्भमें तो दाऊदने हुसैनको बहुत दबा दिया, परन्तु दैवने हुसैनका साथ दिया। सफलताके समय एक तोपका गोला दाऊदके आकर लगा जिससे वह मर गया। सय्यद-बन्धुओंका सितारा चढ़तीपर था। जो षड्यन्त्र उन्हें नष्ट करनेके लिए खड़ा किया गया था उससे उनका दबदबा और भी अधिक बढ़ गया। हुसैनकी छातीपर एक और विजयका तमग़ा दोलायमान होने लगा।

दाऊदके नाशसे हुसैनअली दक्षिणका निर्विवाद सूबेदार बन गया। दक्षिणके सूबेदारका सबसे मुख्य कर्तव्य मराठोंसे लड़ना और उनके आक्रमणोंकी रोक-थाम करना था। हुसैनअलीको भी राजा शाहूकी सेनाओंसे कई जगह युद्ध करना पड़ा। उधर दाऊदके मर जानेपर फर्रुख़सियरके सलाहकारोंने उसे फिर बेचैन करना आरम्भ कर दिया। विजयी हुसैनकी दिल्लीमें वापिसीका ध्यान करके बादशाहकी पार्टीके हृदय काँप रहे थे। अबदुल्लाखाँके दूत दरबार और अन्तः-पुरकी पूरी खबर रखते थे। उन्होंने वज़ीरको सूचना दे दी कि इस बार कोई बहुत गम्भीर षड्यन्त्र तैयार हो रहा है क्यों कि मीर जुमला बिहारसे दिल्लीके लिए प्रस्थान कर चुका था, अम्बरका राजा जयसिंह सय्यद-बन्धुओंका शत्रु था, वह राजधानीमें पहुँच चुका था। चीन कलीचखाँ और सरबुलन्दखाँको भी दूर प्रदेशोंसे दिल्ली आनेके लिए निमन्त्रण भेजे गये थे। इन समाचारोंने अबदुल्ला-खाँको चौकन्ना कर दिया। उसने शीघ्रगामी दूतोंद्वारा यह समाचार हुसैनअलीके पास भेज दिये।

हुसैनअली उस समय मराठोंसे उलझा हुआ था। उसने युद्धको शान्त करनेके लिए झटपट सुलह कर ली जिसके द्वारा राजा शाहूके सब राज्याधिकार स्वीकार कर लिये गये, बदलेमें हुसैनअलीको दस हज़ार मराठा सिपाही सहायताके लिए प्राप्त हुए जिन्हें साथ लेकर वह एक दिनमें तीन तीन पड़ाव लाँघता हुआ दिल्लीकी ओर प्रस्थित हुआ।

इसी बीचमें फर्रुख़सियरने जोधपुरके राजा अजीतसिंहकी कन्यासे विवाह कर लिया था। अम्बरका राजा जयसिंह पहलेसे ही बादशाहकी ओर झुका हुआ था। इन दो हिन्दू राजाओंके अतिरिक्त और भी जिन सरदारोंको फर्रुखसियरने अपना हितैषी या सय्यद-बन्धुओंका शत्रु समझा उन सबको शीघ्र दिल्ली पहुँचनेके आदेश भेज दिये, ताकि हुसैनअलीके आनेसे पूर्व ही अपनी शक्तिको अदम्य बना लिया जाय। परन्तु, लड़ने और जीतनेके लिए तो दिल चाहिए, जहाँ दिल नहीं वहाँ हथियार निष्फल हो जाते हैं और सहायक केवल बोझरूप सिद्ध होते हैं। फर्रुखसियरके पास सुन्दर और सुडौल शरीर था, धन था, सहायक थे, परन्तु दृढ़ और तेजस्वी हृदय नहीं था। वह अविश्वास और दब्बूपनका पुतला था। हुसैनअलीके राजधानीके समीप पहुँचनेके समाचारने ही बादशाहके हृदयमें कँपकँपी पैदा कर दी थी। उसके छक्के-से छूट रहे थे। हुसैनअलीको भी समाचार मिल गया था कि दिल्लीपर उसका आतंक छाया

हुआ है। वह दिल्लीके द्वारमें एक नौकरकी तरह नहीं, प्रत्युत एक विजेताकी तरह नौबत और शहनाईके जयघोषके साथ प्रविष्ट हुआ। उसकी सेनायें शाही इलाकोंको खूब लूटती हुई आ रही थीं।

हुसैनअलीके राजधानी-प्रवेशने सनसनी पैदा कर दी। जिन मित्रों और सलाहकारोंको फर्रुखसियरने सय्यदोंके विरुद्ध लड़नेके लिए बुलाया था, वह शर्म झाड़कर अब्दुल्लाखाँके सामने नाक रगड़ते दिखाई देने लगे। यहाँ तक कि बादशाहके ससुर राजा अजीतसिंहकी भी सय्यदोंकी मण्डलीमें गिनती होने लगी। राजा जयसिंहको छोड़कर सब सरदारोंने बादशाहको छोड़ दिया। जिनपर फर्रुख-सियरने उपकारोंकी अतिवृष्टि की थी, वह शत्रुओंसे जा मिले। मनुष्य-जातिकी कृतज्ञता मेघमें बिजलीसे भी अधिक अस्थिर है।

हुसैनअलीके दिल्ली आ जानेपर बादशाहने सय्यद-बन्धुओंको शान्त करनेके अनेक प्रयत्न किये। कई बार बादशाहने भाइयोंसे भेंट की। सुलहकी बातें भी हुईं, परन्तु दोनों ओर अविश्वासके बादल इस भीषणतासे छा चुके थे कि लीपापोतीकी हल्की हवा उसे उड़ानेमें असमर्थ हुई। फर्रुखसियरको यह विश्वास दिलाना कठिन था कि वह सय्यद-बन्धुओंके जीवित रहते दासतासे छूटकर स्वाधीन बादशाह बन सकता है; और सय्यद-बन्धुओंको यह विश्वास दिलाना असम्भव था कि फर्रुखसियरकी बातपर कोई भरोसा हो सकता है। ज्यों ज्यों सुलहके प्रयत्न हुए ख़ाई गहरी होती गई, यहाँतकको २८ फरवरी १७१९ के दिन बादशाह और वज़ीरोंमें सीधी लड़ाई ठन गई। पहले मौखिक झगड़ा हुआ, फिर गाली गुफ्तारकी नौबत आ गई, और अन्तमें वज़ीरोंने सारे किलेपर कब्ज़ा कर लिया। बादशाह प्राणोंके भयसे अन्तःपुरमें जा छिपा। उसके सहायकोंने कुछ आवाज़ उठाई परन्तु शहरपर और लाल किलेपर सय्यदोंकी शक्तिका इतना आतंक था और हुसैनअलीके क्रोधसे लोग इतना काँपते थे कि वज़ीरके बादशाहपर बलात्कारको साम्राज्यने चुपचाप सह लिया। फर्रुखसियर अन्तःपुरमें क़ैदी हो गया।

एक रात तो इसी अनिश्चयकी अवस्थामें गुज़री, दूसरे दिन हुसैनअलीने अपने डेरेसे अपने बड़े भाईको किलेमें कहला भेजा कि या तो बादशाहका काम तमाम करो, नहीं तो मैं किलेमें आकर स्वयं ही झगड़ा समाप्त कर दूँगा। यह धमकी अटल थी, अब्दुल्लाखाँने दो दल रवाना किये, एक दल तो अन्तःपुरसे बादशाहको घसीटकर बाहर लानेके लिए और दूसरा दल मुग़ल वंशके अन्य

राजकुमारोंमेंसे किसी एकको गद्दीपर बिठानेके निमित्त लानेके लिये। बादशाहको लानेके लिए जो दल भेजा गया उसमें ४०० के लगभग आदमी थे, वह अन्तःपुरकी ओर भागे। वहाँ अन्तःपुरकी सशस्त्र परिचारिकाओंने उनका सामना किया। परन्तु कबतक? बहुत-सी मारी गईं, शेषको रास्ता छोड़ देना पड़ा। फर्रुख़सियर एक कोठरीमें छुपा हुआ था, उसका दरवाज़ा तोड़ दिया गया और अन्दरसे बाबर और अकबरके अयोग्य वंशजको चोरकी तरह घसीटकर बाहर लाया गया। बादशाहने अपने आपको छुड़ानेका प्रयत्न किया तो चारों ओरसे मार पड़ने लगी। किसीने पीछेसे धक्का दिया तो किसीने गर्दन पकड़कर झझकोर दिया। इसी धक्कमधक्कामें मुग़ल बादशाहकी पगड़ी सिरसे गिरकर पैरोंमें जा पड़ी, वह स्वयं भी नीचे गिर गया। बहुत-से लोग उसे घसीटकर क़ुतबुलमुल्कके सामने ले गये। क़ुतबुलमुल्क उस समय दीवाने खासमें दरबार कर रहा था। उसने फर्रुख़सियरकी ओर देखा, अपना क़लमदान खोला, उसमेंसे सुरमा डालनेकी तेज़ सलाई निकाली और एक सेवकको आज्ञा दी कि वह उस सलाईसे बादशाहकी आँखें फोड़ दे। सेवकने मालिककी आज्ञाका पालन किया। फर्रुख़सियरको अन्धा करके त्रिपोलियाद्वारकी हवालातमें बन्द कर दिया गया। उसी समय दूसरा दल किलेके तहखानोंमेंसे रफ़ीउश्शानके पुत्र रफ़ीउद्दर्जातको घसीटता हुआ आ पहुँचा। क़ुतबुलमुल्कने उस बीमार नौजवानके गलेको ख़ाली देखकर अपने गलेकी माला उतार कर पहिना दी और उसे दोनों ओरसे थाम कर उस तख्ते ताऊसपर बिठा दिया, जिसपर उसके पूर्वज अपनी प्रजा और तलवारके बलसे आसीन हो चुके थे।

फर्रुख़सियर लगभग दो मासतक उस गन्दी हवालातमें सड़ता रहा। जितने कष्ट किसी कैदीको दिये जा सकते हैं, उसे दिये गये। कुत्तोंके खाने-योग्य भोजन पेट भरनेके लिए दिया गया, कई कई दिनोंतक पानीको तरसाया गया, यहाँतक कि बेचारेको शौच जानेके पश्चात् पहने हुए कपड़ोंके चीथड़े फाड़कर सफ़ाई करनी पड़ती थी। हल्का ज़हर भी दिया गया, परन्तु प्राणपखेरू शरीरके पिंजरेको छोड़नेको उद्यत न हुआ। तब सय्यद-बन्धुओंने अन्तिम शस्त्रका प्रयोग किया। कुछ हत्यारोंद्वारा फर्रुख़सियरको गला घोंटकर मरवा डाला और उसकी लाश किलेके मैदानमें फिंकवा दी ताकि संसार जीवनकी अनित्यता, शक्तिकी चंचलता और मनुष्य-जातिकी कृतघ्नताके पाठको एक बीभत्स दृष्टान्तद्वारा पढ़ सके।

१५—कठपुतलियोंका तमाशा

फर्रुख़सियरकी मृत्युके पश्चात् तीन वर्षोंमें दिल्लीमें जो घटनायें हुईं, उन्हें हम शक्तिकी अस्थिरताका एक नमूना और भाग्योंकी चंचलताका प्रदर्शन कह सकते हैं। इतिहासने जो सचाई सदियोंमें देखी है, आगामी तीन वर्षोंमें वह दिल्लीके सिंहासनपर संक्षिप्त नाटकके रूपमें खेली गई। उसे पढ़कर यह आश्चर्य नहीं होता कि मुग़ल साम्राज्यका क्षय क्यों हुआ, प्रत्युत आश्चर्यकी वस्तु यह प्रतीत होती है कि यह वंश आगामी लगभग एक सदी तक जीवित कैसे रह सका?

रफ़ीउद्दर्जातको २८ फरवरी १७१९ के दिन सिंहासनपर बिठाया गया। जब सिपाही उस क्षयी बालकको लाल किलेके तहखानेमेंसे निकालकर कुतबुलमुल्कके (=अब्दुल्लाख़ाँके) सामने लाये, तब उसके शरीरपर कोई गहना नहीं था। कुतबुलमुल्कको देखकर दया आ गई, उसने अपने गलेसे मोतियोंका हार उतारकर उसके गलेमें डाल दिया और कठपुतलीकी तरह गद्दीपर बिठाकर सलाम किया।

अब तो सय्यद-बन्धु मुग़ल साम्राज्यके बेताज बादशाह थे, उनकी इच्छा अटल थी। उनके मार्गमें विघ्न डालनेवाले सरदार दिल तोड़ चुके थे। किले और महलोंपर कुतुबुल्मुल्कका निर्द्वन्द्व अधिकार था, सेनापर हुसैनअलीख़ाँकी धाक थी। बादशाह तपेदिकका रोगी था। हिन्दुस्तान बेचारा सय्यदोंके हाथका खिलौना प्रतीत होता था। सल्तनतकी प्रत्येक सुन्दर वस्तु सय्यदोंके लिए थी। किसी दूसरेको क्या अधिकार था कि उधर आँख उठाकर भी देखे? फर्रुख़सियरके शरीरपर या अधिकारमें जितने जवाहिरात पाये गये, उन सबको बिना किसी सोच-विचारके कुतबुल्मुल्कने अपने घरमें डाल लिया। फर्रुख़सियरकी बहुत-सी व्यक्तिगत जागीरें या तो स्वयं ले लीं या अपने पिछलग्गुओंमें बाँट दीं। शाही खजानेकी चाबी कुतबुलमुल्कके बटुएमें ही रहती थी।

बेचारा बादशाह तो सय्यदोंका रत्नोंसे लदा हुआ क़ैदी था। उसे किसी वस्तुको अपना समझनेका क्या अधिकार था? कुतबुल्मुल्क वीर होनेके साथ साथ उस समयके अन्य मुसलमान सरदारोंकी भाँति अति-विलासिताके सरोवरमें गलेतक डूबा हुआ था। उसके अन्तःपुरमें सुन्दर स्त्रियोंकी कमी नहीं थी, परन्तु शाही ख़ज़ाना खुलनेपर

उसकी दृष्टि कई सुन्दरी-रत्नोंपर पड़ी तो उससे रहा न गया। उन रत्नोंको भी चुनकर अपने महलमें ले गया। इतनेसे भी उसे सन्ताप न हुआ। बादशाहकी बेगम इनायत बानू अद्भुत सुन्दरी थी। नवाबकी दृष्टिसे वह भी न बच सकी। नवाबने महलकी परिचारिकाओंसे बेगमके पास प्रेम-सन्देश भेजे। इनायत बानूने सन्देशका तिरस्कार किया और उत्तर न दिया। नवाबकी कामवासना इन्कारसे और अधिक भड़क उठी और उसने फिर एक सन्देशा भेजा जिसमें इनायत बानूकी केश-राशिकी बहुत अधिक प्रशंसा थी। दुर्बल पतिकी स्त्री क्या करे ? बेचारीको सिवा इसके बचनेका कोई उपाय न सूझा कि अपनी प्यारी केश-राशिको काटकर नवाबके मुँहपर फेंक दे।

एक बार बड़ी मज़ेदार घटना हुई। मुगल बादशाहके सामने तब तक कोई बैठता नहीं था जब तक उसे बादशाह-सलामतकी आज्ञा न मिल जाय। परन्तु सय्यद-बन्धु सब नियमोंसे ऊपर हो चुके थे। एक दिन बादशाह अपने आसनपर बैठने लगा तो सामनेके आसनपर हुसैनअलीख़ाँ भी बैठ गया। सिंहासनारूढ़ शासकका इससे बढ़कर अपमान नहीं हो सकता। रफ़ीउद्दर्जातको भी क्रोध आया, पर उस अशक्त नौजवानने एक अनूठे ढँगपर अपनी झेंप मिटाई। अपना पाँव हुसैनअलीकी ओर बढ़ाकर कहा कि ज़रा इस पाँवका मोज़ा तो उतार दो। हुसैनअली हार गया, उसे मोज़ा उतारना पड़ा।

रफ़ीउद्दर्जात क्षयका रोगी था। वह उस समयके मुगल राज्यकी जीवित मूर्ति था। देशके गुलाम बादशाह होनेके कष्टने क्षयकी प्रवृत्तिको और अधिक बढ़ा दिया, और केवल चार मास तक शासन करके उसने सय्यदोंसे प्रार्थना की कि इस बन्धनसे मुझे छुटकारा दिया जाय ताकि मैं शान्तिसे मर सकूँ। प्रार्थना मंजूर हुई। एक कठपुतली गद्दीसे नीचे रख दी गई और दूसरी कठपुतली उसकी जगह बिठा दी गई। किलेके तहख़ानोंमेंसे खोदकर रफ़ीउद्दर्जातके बड़े भाई रफ़ीउद्दौलाको निकाला गया और ४ जून १७१९ के दिन गद्दीपर बिठा दिया गया। सिंहासनारोहणके समय उसे 'शाहजहाँ सानी' की उपाधिसे विभूषित किया गया। यह उपाधि तो इस लिए दी गई थी कि उसकी आकृति अपने पूर्व-पुरुषसे मिलती थी, परन्तु वह

नाम एक और प्रकारसे सार्थक हो गया। शाहजहाँ अपने पुत्रका कैदी होकर मरा, रफीउद्दौला अपने वज़ीरका कैदी रहकर। वह सर्वथा सय्यदोंका बँधुआ था।

परन्तु यह यातना उसे देर तक न भोगनी पड़ी। अपने भाईकी तरह वह भी क्षयका रोगी था। साथ ही उसे अफीम खानेकी भी लत थी। बादशाह होनेकी गुलामीको वह अधिक दिनों तक न सह सका। केवल दो मास तक रंगस्थली-पर शासकका अभिनय करके वह अभागा बादशाह १८ सितम्बर १७१९ को परलोककी यात्राके लिए रवाना हो गया।

दो नट रंगस्थलीपर आये और चले गये। उन नटोंको बनाने-बिगाड़नेवाले सय्यद-बन्धुओंकी शक्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। वह 'राजाओंके निर्माता' कहलाने लगे थे।

एक बादशाह मर गया तो क्या हुआ? उसके स्थानपर दूसरा तैयार था। औरंगज़ेबके पुत्र बहादुरशाहके चौथे पुत्रके पुत्र रोशन अख्तरको कहींसे खोजकर निकाला गया और 'अबुलफ़ज़ल, नसीरुद्दीन, मुहम्मदशाह, बादशाह गाजी' आदि शानदार विरदावलियोंसे भूषित करके गद्दीपर बिठा दिया गया। बहादुर शाहकी उम्र उस समय १८ वर्षकी थी। वह शरीरसे स्वस्थ, और समझनेमें चतुर था, परन्तु उसका प्रारम्भिक राज्य-काल भी वैसा ही गुजरा जैसा उसके दो पूर्वाधिकारियोंका। उसका खाना, पीना, पहिरना, शुक्रवारके नमाजपर या शिकारपर जाना आदि सय्यदोंकी इच्छानुसार और कठोर देख-रेखमें होता था।

शाहजहानाबादके किलेमें बादशाह बनाये और बिगाड़े जा रहे थे, और साम्राज्यनिवासी अपनी अपनी धुनमें मस्त थे। किसी मुग़ल-वंशके बादशाहके साथ क्या गुजरती थी, इसकी प्रजाको चिन्ता न थी। जिस वंशमें पिताको पुत्र कैद कर सकता है और भाईको भाई मार सकता है, और फिर भी आदरके साथ बैठ सकता है, उस वंशमें जन्म लेनेवाले शाहज़ादे यदि शक्तिशाली नवाबोंके पाँवतले रौंदे जायँ तो रियायाको कोई आश्चर्यजनक बात नहीं प्रतीत होती थी। प्रजाने शाही मामलोंमें अनुभव करना ही छोड़ दिया था। मुग़लोंका राजवंश आपसकी फूट और पद्धतिके दोषोंके कारण ऐसी छतके समान हो रहा था जिसकी दीवारें रेतकी बनी हुई हों। किसी बादशाहके गद्दीपर बैठने या मरनेकी खबरको वह उतनी ही पर्वासे सुनते थे जितनी पर्वासे गलीकी किसी पुरानी इमारतके गिरने या नई इमारत बननेकी खबरको सुना जाता है।

१६—सय्यदोंका अधःपात

सय्यदोंकी असाधारण सफलताके प्रधानतः तीन कारण थे। सबसे प्रथम कारण तो यह था कि वह दो थे। दोनोंमें दो गुण थे। अब्दुल्लाखाँ चतुर और मिलानसार था। हुसैनअलीखाँ वीर और लड़ाकू था। एक घरके शत्रुओंको सँभालता था, दूसरा बाहरके। दोनों एक दूसरेकी कमीको पूरा करते थे। दूसरा कारण यह था कि वह मुसलमानोंकी उस श्रेणीमें गिने जाते थे जिन्हें 'हिन्दुस्तानी मुसलमान' कहा जाता था। उस समयके मुसलमान सरदार तीन हिस्सेमें बँटे हुए थे—१ मुग़ल, २ अफ़गान और ३ हिन्दुस्तानी। तीनों ही श्रेणियाँ ज़बरदस्त शासकोंके सामने सिर झुकाती रहीं; परन्तु औरंगज़ेबके पश्चात् उनके भेद बहुत अधिक तीव्र हो गये थे। दिल्लीके दरबारमें उन श्रेणियोंके सरदारोंमें इतना विरोध रहता था कि वे एक दूसरेकी जानके प्यासे बन जाते थे। हिन्दुस्तानी मुसलमान वह कहलाते थे जिनकी कई पीढ़ियाँ हिन्दुस्तानहीमें व्यतीत हो गई हों। उनकी संख्या समयके साथ बढ़ती गई। उनमें धीरे धीरे भारतीयताके अंश अधिकतासे आ गये थे। इस कारण वह हिन्दुओंके अधिक समीप थे और अन्य श्रेणियोंके साथ युद्धमें हिन्दुओंका सहयोग सुलभतासे पा सकते थे। सय्यद-बन्धु हिन्दुस्तानी मुसलमान थे। हिन्दू सेनापतियोंसे उन्हें बहुत सहायता मिल जाती थी। उनका मुख्य सलाहकार और कारकून रतनचन्द्र नामका एक बनिया था। सय्यदोंकी सफलताका तीसरा कारण यह था कि उन्हें किसी मज़बूत आदमीसे वास्ता नहीं पड़ा। फर्रुखसियरकी इच्छा-शक्ति अत्यन्त निर्बल थी, उसे अपने ही मनकी सुध नहीं थी, वह मानसिक नपुंसक था। रफ़ीउद्दर्जात और रफ़ीउद्दौला क्षयरोग और अफ़ीमके मारे हुए थे। दरबारमें कोई चतुर और वीर सेनापति नहीं था जो दोनों भाइयोंकी सम्मिलित शक्तिको पछाड़ सकता। इन कारणोंसे दोनों भाइयोंका विजय-मार्ग निष्कंटक होता गया।

परन्तु ऐसी सफलताकी यही विशेषता है कि वह प्रायः निष्फलताके बीजोंको अपने मार्गमें बखेरती हुई चलती है। सय्यद-बन्धुओंकी क्षणिक सफलता ही उनके नाशका कारण हुई। उनके शत्रुओंकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई। इस समय उनके प्रधान शत्रु निम्नलिखित थे—

निज़ामुलमुल्क

(१) निज़ामुल्मुल्क, (२) मुहम्मद अमीनखाँ, (३) राजा जयसिंह, (४) चबेलाराम और (५) गिरधर बहादुर। इनमेंसे निज़ामुल्मुल्कसे तो सय्यदोंकी प्रारम्भसे ही शत्रुता चली आती थी। मुहम्मद अमीनखाँ मुग़ल दलका अग्रणी था। मुग़ल लोग हिन्दुस्तानी मुसलमानोंकी प्रधानतासे बहुत जलते थे। वह सय्यदोंका अधःपात चाहते थे, केवल अशक्तिके कारण शान्त दिखाई देते थे। मुहम्मद अमीनखाँ उनके मुग़ल शत्रुओंका नेता था। राजा जयसिंह, फर्रुख़सियरका पक्षपाती होनेके कारण, सय्यदोंकी आँखोंमें काँटेकी तरह खटकता था और वह उनके नाशके उपायोंका निरन्तर चिन्तन करता रहता था। चबेलाराम और गिरधरबहादुर फर्रुख़सियरके मुँहचढ़े सरदार थे। फर्रुख़सियरकी मृत्युने उन्हें सय्यदोंका दुश्मन बना दिया। मुहम्मदशाहके राज्यारोहणके समय इलाहाबादके किले और ख़ज़ानेपर उनका कब्ज़ा था।

इन शत्रुओंके अतिरिक्त उनके तीन शत्रु और उत्पन्न हो रहे थे। बहादुरशाहकी माता अपने पुत्रके लिए बड़ी भारी महत्त्वाकांक्षा रखती थी। वह अपने पुत्रको स्वाधीन शासक बननेके लिए बराबर प्रेरणा करती थी। बहादुरशाह स्वयं सय्यदोंके लिए दुश्मन सिद्ध हो रहा था, क्योंकि उस आयुमें उसमें जवानी, सेहत और महत्त्वाकांक्षाके साथ साथ मुग़ल-वंशकी बू भी विद्यमान थी। वह न क्षय रोगका शिकार था और न अफीमका। सय्यदोंके अन्तिम शत्रु वह स्वयं थे। शक्तिने दोनोंको उन्मत्त कर दिया था, उन्नतिने उनकी महत्त्वाकांक्षाको और अधिक भड़का दिया था, यहाँ तक कि कभी कभी वे एक दूसरेको अपने लिए विघ्नकारी समझने लगते थे। अब्दुल्लाखाँ हुसैनअलीको केवल एक अक्खड़ सिपाही समझता था, और हुसैनअली बड़े भाईको अकर्मण्य और लम्पट खुशामदी। लूटके मालको बाँटनेपर उनमें प्रायः लड़ाई हो जाया करती थी। फर्रुख़सियरके सिंहासनच्युत होनेपर उसके निजी ऐश्वर्यपर अब्दुल्लाखाँने जब कब्ज़ा कर लिया तो सय्यद हुसैनअलीखाँ बहुत क्रुद्ध हो गया। भाइयोंकी तकरार यहाँ तक हो गई कि दोनों ओरसे तलवारें म्यानसे बाहिर निकल आईं। तलवारें लड़ जातीं, यदि क़ुतबुलमुल्कका दाहिना हाथ राजा रतनचन्द बीचमें न पड़ जाता। उसने दोनोंको समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। रफीउद्दौलाके राज्य-कालमें औरंगज़ेबके चौथे लड़के मुहम्मद अकबरके बड़े पुत्र नकूसियारने आगरामें विद्रोहका झंडा कर दिया था। हुसैनअलीखाँने आगरेपर आक्रमण करके उसे

स्वीकार किया जिसमें उसे दक्षिणका हाकिम बनाया गया था, परन्तु आलिम-अलीखाँको क्षमा न किया। दोनोंमें लड़ाई हुई जिसमें आलिम मारा गया।

अब तो सय्यदोंके धैर्यका बाँध टूट गया। सय्यद-बन्धुओंका सबसे बड़ा शत्रु निज़ामुल्मुल्क दक्षिणका स्वामी बन गया था। सय्यदोंको यह भी मालूम था कि उनका दूसरा शत्रु मुहम्मदअमीनखाँ दरबारमें उनके प्रभावको कम करनेपर लगा हुआ है। यह समाचार भी उन तक पहुँच चुका था कि स्वयं बादशाह और उसकी माता वज़ीरोंकी डाली हुई बेड़ियोंको काटनेके लिए उत्सुक हैं। ऐसी दशामें उन्होंने यही उचित समझा कि बादशाहको हाथमें रखते हुए दक्षिणपर चढ़ाई की जाय। १७२० ई० के दिसम्बर मासमें बादशाह मुहम्मदशाह अपनी फौजोंके साथ आगरेसे दक्षिणकी ओर रवाना हुआ।

हुसैनअलीखाँ योद्धा था, वह बादशाहके साथ गया, और राजधानीको सँभालनेके लिए अब्दुल्लाखाँ पीछे रह गया। सय्यदोंके दुश्मनोंका गिरोह भी बादशाहकी सवारीके साथ हो गया। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि इस गिरोह या षड्यन्त्रका केन्द्र स्वयं बादशाह और उसकी माता थी।

युद्धकी उस यात्रामें हुसेनअलीखाँने मस्त होकर एक दिन बहुतसे आदमियोंमें घोषणा की कि 'मैं जिसपर जूता रख दूँ, उसीको बादशाह बना सकता हूँ।' उसी रात उसकी हत्याका षड्यन्त्र पक्का हो गया और अगले दिन प्रातःकाल जब हुसैनअली बादशाहकी सेवामें जुहरके लिए हाजिर होकर पालकीमें लौट रहा था, तब हैदरबेग दौलत नामका एक सय्यद, दो तीन और साथियोंके साथ, एक शिकायती दरख्वास्त हाथमें लेकर रास्तेमें आ गया। उस दरख्वास्तमें सय्यदके सबसे बड़े शत्रु मुहम्मदअमीनखाँकी शिकायत थी। हुसैनअलीके दिलमें दुश्मनकी शिकायतपर प्रसन्नता हुई और उसने हैदरबेगको अपने पास बुला लिया, और उसके हाथसे दरख्वास्त लेकर पढ़नी प्रारम्भ की। मौका पाकर हैदरबेगने अपनी कमरसे लम्बा छुरा निकालकर हुसैनअलीकी कोखमें घोंप दिया। हुसैनअलीने घायल होकर हैदरअलीकी छातीपर लात मारी और उसे गिरा दिया, पर हैदरअली फौरन ही उठ खड़ा हुआ और उसने नवाबको पैरसे पकड़कर पालकीसे बाहर घसीट लिया, उसकी छातीपर चढ़ बैठा और उसकी गर्दन काटने लगा। हुसैनअलीके १५ वर्षकी आयुके भतीजे नूरुल्लाखाँने हैदरको गोली चलाकर घायल कर दिया पर हैदरके साथियोंसे वह भी न बच सका। वह भी

वहीं मार डाला गया। इस प्रकार नवाब, उसका भतीजा और हैदर, इन तीनोंकी लाशें उसी पालकीके पास लोट गईं।

हुसैनअलीके मरनेपर षड्यंत्रकारियोंकी बन आई। उसका कैम्प लूट लिया गया, उसकी लाशकी मिट्टीपलीद की गई और उसके अनुयायियोंको या तो जानसे मार दिया गया या लूट-मारकर भगा दिया गया। आठ-दस घण्टेकी लूट-मारके पीछे यह कहना भी कठिन था कि हुसैनअली शाह नामका कोई सरदार बादशाहके साथ आ रहा था और उसका कोई कैम्प लगा हुआ था। मोहरोंसे भरी हुई थैलियोंसे लेकर सन्दूके कालीनतक लूट गये।

अनुयायियोंकी भी यही दशा हुई। राजा रतनचन्द बनिया, जो सैयदोंकी नाकका बाल था, कैद कर लिया, बेइज्जत हुआ और अन्तमें मारा गया। हुसैनअलीका भतीजा सय्यद गैरतखाँ तथा सय्यद करीमुल्लाखाँ आदि सम्बन्धी लड़ते हुए मारे गये या भाग गये। बादशाह बेचारा उस समय डेरेमें था। उसके पास कौन जाय? मुहम्मदअमीनखाँने बड़ी धूर्ततासे काम लिया। आँखोंपर कपड़ा लपेटकर बादशाहके डेरेमें घुस गया और उसे घसीटता हुआ बाहर ले आया जिससे यह प्रतीत हो कि सय्यदकी हत्या बादशाहकी इच्छासे हुई है।

अब्दुल्लाखाँ आगरेके पास एक गाँवमें कैम्प लगाये पड़ा था, जब उसे छोटे भाईकी कृत्ल होनेका समाचार मिला। इस समाचारने उसे क्रोधान्ध बना दिया। उसने पूरा बदला लेनेका निश्चय करके चारों ओर मित्रोंको बुलावा भेज दिया और दिल्लीकी ओर कूच बोल दिया। उसके भेजे हुए आदमियोंने दिल्लीके लाल किलेकी गुफाओंमें टटोलकर बन्दी राजकुमारोंमेंसे शाहज़ादा इब्राहीमको निकाला और उसे राजगद्दीपर बिठा दिया। उन दिनों मुग़ल-वंशके शाहज़ादे तहखानेके जीवनको मरनेसे अच्छा आरामका जीवन समझते थे। उसमें कमसे कम अन्देशा तो नहीं था। जब अब्दुल्लाखाँके दूत उन लोगोंके पास राजगद्दीकी भेंट लेकर पहुँचे तो उन्होंने अपने तहखानेके दरवाज़े बन्द कर लिये और दूतोंको गालियाँ सुनाईं। उन्हें खतरेकी गद्दीकी अपेक्षा आरामका तहखाना अधिक पसन्द था। बहुत समझाने-बुझानेपर शाहज़ादा इब्राहीम सिंहासनके बारूद-घरपर बैठनेको राजी हो गया। अब्दुल्लाखाँ भी दो दिन पीछे दिल्ली पहुँच गया। उसने दिल्लीका सारा खज़ाना खोद डाला और जो धन मिला उससे सिपाहियोंकी भर्ती आरम्भ कर दी। किसीने आपत्ति उठाई कि "क़िबला, इस तरह खज़ानेको क्यों लुटा रहे हो?" तो उसने उत्तर दिया कि, "यदि मैं युद्धमें जीत गया तो

यह ख़ज़ाना क्या चीज़ है, सारी सल्तनत मेरी होगी। और मैं अगर हार गया तो फिर यह ख़ज़ाना शत्रुके हाथ क्यों पड़े?" ख़ज़ानेको पानीकी तरह बहाकर अब्दुल्लाख़ाँने थोड़े ही दिनोंमें ५० हज़ारसे अधिक सिपाही भर्ती कर लिये। १३ नवम्बर १७२० को पलवल ज़िलेके हसनपुर गाँवमें शाही सेनासे अब्दुल्लाखाँकी सेनाओंका युद्ध हुआ। शाही सेनायें सुसंगठित थीं; पुरानी और अनुभवी थीं; और उन्हें यह भी लाभ था कि बादशाह उनके साथ था। सय्यदकी सेनामें रंगरूटोंकी बहुतायत थी, प्रायः सेनापति और सिपाही एक दूसरेसे अपरिचित थे और यह भी सब लोग अनुभव कर रहे थे कि सय्यदोंका सितारा अस्तोन्मुख है। प्रारम्भसे ही सय्यदकी सेनामें क्षीणता आने लगी थी। कुछ भाग गये और कुछ बादशाहकी सेनामें जा मिले। जो बाकी थे उनमेंसे सय्यदोंको छोड़कर शेष सब आधे दिलसे लड़ रहे थे। परिणाम यह हुआ कि दो दिनकी लड़ाईके पीछे अब्दुल्लाखाँ पूरी तरह हार गया और बादशाहका क़ैदी हो गया। शाहज़ादा इब्राहीम पहले ही रणक्षेत्रसे भागकर आगरेके एक झुरमुटमें बैठा हुआ अपने भाग्यकी प्रतीक्षा कर रहा था। बादशाहके आदमी आये और सय्यदोंकी उस नई कठपुतलीको पकड़कर बहादुरशाहके पास ले गये। बहादुरशाहने इब्राहीमका प्रेमसे स्वागत किया, उसे गलेसे लगाया और पास बिठाकर पूछा—

"तुम इस जगह कैसे आये?"

इब्राहीमने उत्तर दिया—

"जिस रास्तेसे तुम आये।"

दोनों ही सय्यदोंके मोहरे थे। बहादुरशाहने फिर पूछा—

"तुम्हें यहाँ कौन लाया?"

इब्राहीमने उत्तर दिया—

"जो तुम्हें लाया।"

चार दिनकी बादशाहतके पीछे बेचारा इब्राहीम फिर अपनी उसी गुफ़ामें क़ैदी बनकर जीवनकी शेष घड़ियाँ काटनेके लिए भेज दिया गया।

अब्दुल्लाखाँ लगभग दो वर्ष तक क़ैदी रहा, परन्तु, जब तक वह जीवित रहा बादशाहके वज़ीर उससे डरते रहे। अन्तको विषवाला खाना खिलाकर धीरेसे उसे मार दिया गया; और, इस प्रकार उन शक्तिशाली सय्यदोंका अन्त हुआ जिन्होंने मुग़ल बादशाहोंकी सन्तानको कठपुतलीकी तरह नचाया था।

चौथा भाग

मुग़ल साम्राज्यका क्षय
और
उसके कारण

१—तीन बड़े शत्रु

अब हम मुग़ल साम्राज्यके इतिहासकी जिस मंज़िलपर पहुँचे गये हैं, वहाँ आगेका रास्ता निश्चित-सा हो गया है। साम्राज्यकी जो निर्बलतायें अब तक प्रारम्भिक रूपमें थीं, वह अब बढ़कर स्पष्ट और उग्र हो गई हैं। जो शत्रु इससे पूर्व बीजरूपमें विद्यमान् थे, वह अंकुरित और पल्लवित होकर आकाशमें लहलहाने लगे हैं। मुग़ल साम्राज्यके क्षयके कारण अब स्पष्ट रूपमें दिखाई देने लगे हैं।

इस समय मुग़ल साम्राज्यके तीन शत्रु पैदा हो चुके थे। उनमेंसे सबसे पहला शत्रु केन्द्रका बोदापन था। दिल्लीकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। साम्राज्यकी बागडोर बहुत कमज़ोर और अस्थिर हाथोंमें थी। जिस साम्राज्यकी स्थापना बाबर जैसे नर-केसरीने की, जिसका विस्तार अकबर जैसे दूरदर्शी और शायद अपने समयके सबसे बड़े राजनीतिज्ञने किया, उसकी रक्षाका बोझ इस समय ऐसे हाथोंमें आ गया था जिनमें न बल था और न बुद्धि; न उनमें स्वयं राज्य

करनेकी शक्ति थी और न दूसरोंसे राज्यका कार्य लेनेके योग्य समझदारी थी। वह वज़ीरोंके दास थे, पर दासताको भी ईमानदारीसे नहीं निभा सकते थे। न उनसे काम ले सकते थे और न उन्हें हटानेका सामर्थ्य रखते थे। या तो वज़ीरोंके गुलाम बनकर रहते थे या वज़ीरके शत्रुओंके गुलाम। स्वयं अपने स्वामी बनकर शासन करना मुग़ल शासकोंके लिए असम्भव-सा हो गया था। हम कह सकते हैं कि इस समय मुग़ल साम्राज्यके सबसे बड़े शत्रु स्वयं मुग़ल सम्राट् थे।

मुग़ल साम्राज्यके दूसरे शत्रु उस समयके मुसलमान सरदार थे। जिन औज़ारोंकी सहायतासे अकबरने साम्राज्यका भवन तैयार किया था वही औज़ार कारीगरोंकी अयोग्यताके कारण मकानको गिरानेके कारण बन रहे थे। न इस समयके मुसलमान सरदारोंके हृदयमें इस्लामके लिए जोश था और न मुग़ल बादशाहके लिए भक्ति। उनके दिलोंमें एक ही भावना थी और वह थी स्वार्थकी भावना। हरेक सरदार अपना काम बनाना चाहता था। चाहे सल्तनत तबाह हो जाय पर उसकी जेब भरनी चाहिए। प्रत्येक मुसलमान सरदार छोटा बादशाह बनना चाहता था। उनमें विरला ही कोई ऐसा होगा जो अपनी समृद्धिके लिए इस्लाम या मुग़ल सल्तनतको कौड़ीके दामों बेचनेको उद्यत नहीं हो।

इन दो शत्रुओंने ही तीसरा शत्रु पैदा कर दिया था। वह शत्रु था बाह्य आक्रमण। जब घर कमज़ोर हो जाय तब बाहरके दुश्मन आक्रमण करनेका साहस किया करते हैं। राज्य-शास्त्रमें राज्यकी वृद्धि और क्षयके कुछ नियम हैं। उनमेंसे एक नियम यह है कि हरेक राज्य एक प्रगतिशील वस्तु है। या तो वह आगेकी ओर चलता है, या पीछेकी ओर। या तो उसे निरन्तर उन्नति करनी चाहिए, अन्यथा वह अवनतिकी ओर चल देगा। उन्नतिका केवल इतना ही अभिप्राय नहीं कि उसकी सीमायें बढ़ती जायँ। सीमायें वही रहें, पर उसका संगठन मज़बूत होता जाय, आर्थिक दशा सुधरती जाय, और अन्य देशोंपर नैतिक धाक जमती जाय तो समझ लें कि राज्य उन्नतिकी ओर जा रहा है। जबतक उन्नति कायम रहेगी राज्यकी सत्ता भी कायम रहेगी, परन्तु ज्यों ही गति रुक गई त्यों ही, उस शरीरकी तरह जिसकी नसोंमें रुधिरकी गति मन्द पड़ गई हो, राज्यपर मुर्दनी छा जाती है और उसकी मृत्यु असन्दिग्ध हो जाती है। हरेक बाह्य शत्रु, वह मौसमी हो या आकस्मिक, उसपर हावी हो जाता है। इस समय मुग़ल साम्राज्यकी दशा भी उसी शरीरकी-सी हो रही थी। जीवन-शक्ति निर्बल हो गई थी, इससे ही शत्रु हावी होनेकी हिम्मत रखता था।

और शत्रुओंकी कमी नहीं थी। बाहरके शत्रु मुग़ल साम्राज्यको नोंचनेके लिए तैयार ही बैठे थे। दुश्मन तो बहुत-से थे, परन्तु उनमेंसे दो इस समय मुख्य हो रहे थे। मुग़ल साम्राज्य दोनों दिशाओंसे दब रहा था। दक्षिण दिशामें मराठा राज्य आत्म-रक्षाकी सीमासे निकलकर अब आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहा था और, अफ़ग़ानिस्तानपरसे मुग़लोंका पंजा उठ जानेसे, उत्तरीय लड़ाकुओंके लिए भारतपर टूट पड़नेका मार्ग खुल गया था। ऊपर और नीचे, दोनों ओरसे, मुग़लोंपर आपत्ति आ रही थी जिससे बचनेके लिए जो केन्द्र-शक्ति चाहिए वह दिनोंदिन क्षीण होती जा रही थी।

मुहम्मदशाह सय्यद बन्धुओंकी गुलामीसे निकलकर आज़ाद नहीं हुआ। जिस बादशाहको अपने वज़ीरको पदच्युत करनेके लिए षड्यन्त्र और छुरेकी शरण लेनी पड़े, समझ लेना चाहिए कि वह नर नहीं, नपुंसक है। जो नर शासक है वह इच्छाशक्ति और तलवारके ज़ोरसे हूकूमत करता है, षड्यन्त्रकारीके छुपे हुए दाव-पेचोंसे नहीं। सय्यद तो समाप्त हो गये, परन्तु, मुहम्मदशाह वज़ीरोंके पंजेसे न निकल सका। अगले घटनाचक्रने बतलाया कि वज़ीर और बादशाहके झगड़ेमें असली दोषी बादशाह था, वज़ीर नहीं।

सय्यदोंके विनाशके पश्चात् मुहम्मदशाहने जो पहला काम किया वह बुरा नहीं था। उसने हिन्दुओंपरसे जिज़िया कर हटा दिया। इस उदारतापूर्ण कार्यसे बादशाह हिन्दू प्रजाको सन्तुष्ट करना चाहता था।

अब्दुल्लाखाँके पश्चात् मुहम्मदशाहने प्रधान मन्त्रीके स्थानपर मुहम्मदअमीनखाँको नियुक्त किया। इसीके षड्यन्त्रसे सय्यदोंका नाश हुआ था, परन्तु अमीनखाँ उस विभूतिको देरतक भोग न सका, वह कुछ महीनोंबाद ही बीमार होकर मर गया। उसके स्थानपर निज़ामुल्मुल्क प्रधान मन्त्री बनाया गया।

निज़ामुल्मुल्ककी चर्चा इससे पहले आ चुकी है। वह सय्यदोंका जवाब था। उसकी प्रतिभा और शक्तिसे दोनों भाई बहुत घबराते थे। दरबारसे टालनेके लिए ही उसे दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा गया था। सय्यद तो उसे दूर भेजकर निर्बल कर देना चाहते थे, पर उसने अपनी दूरदर्शिता और बुद्धि-बलसे दक्षिणमें ऐसा शक्ति-संचय किया कि विरोधी घबरा गये। सय्यदोंका नाश हो जानेपर लोगोंका विचार था कि सम्भवतः निज़ामुल्मुल्कको ही प्रधान-मन्त्री बनाया जायगा, परन्तु, इसे उस चतुर व्यक्तिकी चतुराईका ही एक सुबूत समझना चाहिए

कि उसने काँटोंका ताज स्वयं न पहिनकर मुहम्मद अमीनख़ाँके सिरपर रखना ही उचित समझा। विचारोंमें निज़ामुल्मुल्क कट्टर मुसलमान था। वह सय्यदोंके हिन्दुस्तानीपनको घृणाकी दृष्टिसे देखता था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि उसका इस्लामी जोश उसे नीतिके मार्गसे भ्रष्ट नहीं कर सकता था। वह इतना काफ़ी नीतिज्ञ था कि मज़हबी दीवाना नहीं बन सकता था।

प्रधान-मन्त्री बनकर निज़ामुल्मुल्क दिल्लीमें आ गया, परन्तु, उसने मालवा और दक्षिणका शासन अपने हाथोंमें ही रक्खा। यह भी उसकी दूरदर्शिताका प्रमाण था क्योंकि औरंगज़ेबके पीछे मुग़ल बादशाहोंका वज़ीर बनना नदीके रेतीले किनारेपर खेलनेके समान था। निज़ामुल्मुल्कने एक पाँव दिल्लीमें रक्खा और दूसरा दक्षिणमें, ताकि यदि एक पाँवके नीचेसे रेत सरक भी जाय तो खड़े होनेकी जगह बनी रहे।

दिल्ली पहुँचकर निज़ामुल्मुल्कने सल्तनतके कारबारको सँभालनेकी चेष्टा की। कारोबार दीवालिया हो रहा था। सब जगह अव्यवस्थाका राज्य था। जिधर दृष्टि उठती थी उधर अनियम, रिश्वत और आपापन्थीका राज्य था। निज़ामुल्मुल्क जैसे सुलझे हुए आदमीको भी उसके सुधारका रास्ता नहीं दिखाई देता था। वह जिधरको कदम बढ़ाता उधर ही उसे स्वार्थी सरदारोंके जमे हुए स्वार्थोंसे टकराना पड़ता था। पगपगपर विघ्न थे, और सबसे बड़ा विघ्न था स्वयं मुहम्मदशाह।

मुहम्मदशाहमें मुग़ल बादशाहोंके गुण बहुत कम थे और दोष बहुत अधिक। वह उदार तो था, परन्तु उदारताको निभानेकी शक्ति नहीं रखता था। वह साहसिक तो था, परन्तु साहसके अनुसार वीर नहीं था। विचारोंमें अस्थिर था और तबीयतमें छिछोरा। आज जो आज्ञा निकालता था कल उसे बदल देता था। आज जिसे ऊँचे ओहदेपर बिठा रहा था कल उसे नीचे गिरा देता था। निज़ामुल्मुल्कको यह सब बातें बहुत नापसन्द थीं। वह अनुभव और आयुके लिहाज़से बुजुर्ग था, इस कारण मुम्हमदशाह तकको कभी कभी झाड़ देता था। स्वार्थियों और खुशामदियोंको और क्या चाहिए ? वह बादशाहके कान भरते और वज़ीरके विरुद्ध भड़काते रहते थे। बादशाह तो नासमझ था ही, शीघ्र ही उन आस्तीनके सांपोंका चालोंका शिकार बन गया। पहले तो उसने अपने मुसाहिबोंकी मण्डलीमें निज़ामुल्मुल्कका मज़ाक़ उड़ाना शुरू किया, फिर

बादशाह और उसके मुसाहिब वज़ीरके पीठ पीछे खड़े होकर उसकी नक़लें उतारते और मुँह चिढ़ाते, और अन्तमें वह समय आ गया कि मुहम्मदशाह निज़ामुल्मुल्कको दिल्लीसे दूर हटाकर या नष्ट करके,—किसी भी उपायसे, उससे पिण्ड छुड़ानेके लिए उतावला हो गया।

इस उद्देशकी पूर्तिके लिए मुहम्मदशाहने निज़ामुल्मुल्कको गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया और साथ ही गुजरातके उस समयके सूबेदार हैदरकुलीखाँको गुप्त आज्ञा भेज दी कि वह निज़ामुल्मुल्कको गुजरातपर कब्जा न करने दे और सम्भव हो तो मार डाले। निज़ामुल्मुल्कको बादशाहके विश्वासघातका पहले ही पता लग गया था। वह नीतिज्ञ भी था और योद्धा भी। उसने गुजरात पहुँचकर हैदरकुलीखाँकी सेनामें फूट पैदा कर दी। हैदरकुलीखाँकी प्रायः सारी सेना निज़ामुल्मुल्कसे जा मिली। हैदर बेचारा मुट्ठीभर घुड़सवारोंके साथ जो भागा तो दिल्लीमें आकर शरण ली।

गुजरातपर पूरा अधिकार करके निज़ामुल्मुल्क जब दिल्ली वापिस आया तो उसने अनुभव किया कि बादल और भी अधिक गहरे हो गये हैं। मुहम्मदशाहने समझा था कि गुजरातमें वज़ीरकी कब्र बन जायगी, परन्तु निज़ामुल्मुल्क तो अपनी छातीपर जीतका एक नया तमग़ा लगा लाया। बादशाह और उसके साथी निराश होकर और भी ज़हरीले बन गये। धूर्त निज़ामुल्मुल्कसे यह बात छुपी न रही और उसने साँपोंके बिलमें बैठकर साँपोंसे खेलनेका विचार छोड़कर राजधानीसे किनारा करनेमें ही भलाई समझी। उसने मन्त्रिपदसे त्याग-पत्र देते हुए बादशाहसे दक्षिणकी गवर्नरीपर वापिस जानेकी प्रार्थना की। प्यासेको पानी मिल गया। बादशाहने प्रार्थना मंजूर करते हुए निज़ामुल्मुल्कको आदर-सत्कारसे लाद दिया, उसे 'आसफ़जाह' और 'वकीलुल्मुल्क'की उपाधियोंसे विभूषित किया गया और ख़िलत तथा शुभ कामनाओंके साथ दरबारसे रवाना किया गया।

निज़ामुल्मुल्क दिल्लीसे चला गया तो मुहम्मदशाहके दिलमें फिर बेईमानी पैदा हो गई। कहीं निज़ामुल्मुल्क दक्षिणमें जाकर अधिक भयंकर न हो उठे! दिल्लीसे हैदराबादके सेनापति मुबारिजखाँको गुप्त हुक्म भेजा गया कि जब निज़ामुल्मुल्क वहाँ आये तो उसे मारकर तुम दक्षिणके गवर्नर बन जाओ। निज़ामुल्मुल्क मुहम्मदशाहको खूब पहिचान चुका था। वह ऐसी सम्भावनाके लिए तैयार था। औरंगाबादसे ८० मीलपर, शकरखेड़ामें मुबारिज और निज़ाममें लड़ाई हुई जिसमें मुबारिज मारा गया।

इस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओंको मिटाकर निज़ामुल्मुल्क दक्षिण, मालवा और गुजरातका स्वामी बन गया। यद्यपि नामसे वह मुग़ल बादशाहकी ओरसे सूबेदार ही था परन्तु वस्तुतः इस समयसे वह स्वतंत्र शासक ही बन गया। बनावटी शिष्टाचार, जिसमें सब एक दूसरेको धोखा देना उचित समझते हैं, अब भी जारी रहा। निज़ामुल्मुल्क जानता था कि सब काँटे मुहम्मदशाहके बोये हुए हैं, परन्तु फिर भी, उसने मुबारिजके पराजयके पश्चात् बादशाहको एक खलीता भेजा जिसमें उसे एक विद्रोहीके पराजयपर बधाई देते हुए अपनी अटूट राजभक्तिकी घोषणा की। दोनों जानते थे कि उस बधाई और राजभक्तिकी घोषणामें बहुत भयानक व्यंग छुपा हुआ है तो भी किसीको आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि, उस समयकी राजनीतिमें ईमानदारीकी कोई आशा ही नहीं करता था।

२–मराठोंका शक्ति-संचय

जब मुग़ल साम्राज्यका केन्द्र बादशाहकी अयोग्यता और वज़ीरोंके स्वार्थ और विश्वासघातके कारण निर्बल हो रहा था, तब दक्षिणमें वह तूफ़ान एकत्र हो रहा था जो मुग़ल साम्राज्यपर शीघ्र ही टूटनेवाला था। मराठोंकी शक्ति, जो शिवाजीकी मृत्युके पश्चात् कुछ कालके लिए निर्बल होती प्रतीत होती थी, फिर दिन दूनी रात चौगुनी गतिसे बढ़ रही थी।

सम्भाजीके पश्चात् कई वर्षों तक मराठे राजारामको अगुआ बनाकर मुग़लोंसे संग्राम करते रहे। राजारामकी मृत्युके पीछे छह वर्षतक उसकी विधवा रानी ताराबाई मराठाशाहीकी बागडोरको सँभाले रही। १६८० में शिवाजीकी मृत्यु हुई, और १७०६ तक तीन शासक गद्दीपर बैठे। इन २६ वर्षोंमें मराठोंमें गृह-कलह भी रहा और बहुतसे मराठे सरदारोंने अपनी जातिसे द्रोह भी किया, तो भी शिवाजीके बनाये हुए राज्य-संगठनकी ही महिमा थी कि जो स्वाधीन राष्ट्रका झंडा खड़ा हुआ था वह कभी रुका और कभी आगे चला, परन्तु,—महापुरुषके दिये हुए धक्केमें इतना बल था कि, २६ वर्षों तक वह कभी पीछे नहीं हटा और न नीचे ही झुका।

सम्भाजीके वधके समय मुग़लोंने उसके परिवारपर कब्ज़ा कर लिया था। परिवारमें सम्भाजीका आठ वर्षका पुत्र था जिसका नाम शिवाजी था। मुसलमान

उसे शाहूजीके नामसे पुकारते थे। औरंगज़ेबकी मृत्युके पश्चात् जब शाहज़ादोंमें गद्दीके लिए लड़ाई छिड़ गई तो दूसरे पुत्र आज़मशाहने शाही डेरेपर कब्ज़ा कर लिया। शाहू डेरेमें ही कैद था। आज़मशाहने उसे इस आशासे मुक्त कर दिया कि वह अपने राज्यमें जाकर उसकी मदद करेगा। शाहू कैदसे छूटकर अपने देशकी ओर रवाना हो गया और मार्गमें कई संकटोंको झेलता हुआ कुछ समय पीछे दक्षिणमें जा पहुँचा। परन्तु, वहाँ जाकर उसे मालूम हुआ कि महाराष्ट्रकी गद्दीपर अधिकार करना आसान नहीं है। राज्यपर ताराबाईका प्रभुत्व था, वह आसानीसे शाहूके लिए गद्दी छोड़नेको उद्यत नहीं हुई। कई महीनों तक उसे साथियोंकी तलाश करनी पड़ी। बहुत-से मराठे सरदार ताराबाईसे असन्तुष्ट थे, वह उससे आ मिले और, अन्तमें १७०८ ई० के जनवरी मासमें, सितारामें शाहूका राज्यारोहणोत्सव धूमधामसे मनाया गया और मराठा राज्य फिरसे शाहू महाराजके नेतृत्वमें एकच्छत्रके नीचे खड़ा होकर मुगलोंके साम्राज्यसे भिड़नेको उद्यत हो गया।

सौभाग्यसे शाहू महाराजको एक योग्य मन्त्री मिल गया। बालाजी विश्वनाथ भट्टका जन्म चितपावन ब्राह्मणोंके वंशमें हुआ था। १६९५ ई० में वह मराठा राज्यकी नौकरीमें आया। तीन-चार वर्ष पीछे वह पूनेका सूबेदार बनाया गया और १७०७ में हम उसे दौलताबादकी सूबेदारी करता हुआ पाते हैं। प्रतीत होता है कि अपनी कार्यकुशलता और साहसिकताके कारण बालाजीका उस समय नेताओंमें काफी आदर हो गया था, क्योंकि जब शाहू महाराजको योग्य मन्त्रीकी आवश्यकता हुई तो उसके सामने बालाजी विश्वनाथका नाम पेश किया गया। शाहू महाराजने प्रारम्भमें उसे केवल लगानकी वसूलीके कामपर नियुक्त किया था, परन्तु, उसने ऐसी तत्परता और योग्यतासे काम किया कि उसे शीघ्र ही केवल सेनापतिका पद ही नहीं मिला, अपितु सन्तुष्ट हुए स्वामीने उसे 'सेना-कर्त्ता' (=सेनाओंका बनानेवाला) की उपाधिसे विभूषित किया। बालाजी विश्वनाथ केवल सफल नीतिज्ञ ही नहीं था, वह वीर योद्धा भी था। उसने छह वर्षके अथक परिश्रमसे शाहू महाराजके राज्यकी जड़ें मज़बूत कर दीं। घरके शत्रुओंमेंसे एक एकको या तो नीतिसे जीतकर अपना बना लिया या शक्तिसे जीतकर ख़त्म कर दिया। ताराबाई और उसका पुत्र क़ैद हो गये और विद्रोही सरदार या तो महाराजकी सेनामें भर्ती हो गये या मराठा राज्यकी सीमाओंसे

भागकर मुसलमान शासकोंकी नौकरीमें चले गये। इन सेवाओंसे महाराज शाहू इतने सन्तुष्ट हुए कि १६ नवम्बर १७१३ के दिन बाजीराव पिंगलेको पेशवाके (=प्रधान सचिवके) पदसे हटाकर वहाँ बालाजी विश्वनाथको नियुक्त कर दिया।

पेशवाने भी अपने स्वामीकी शक्तिके बढ़ानेमें कोई कसर नहीं उठा रक्खी। उस समय दिल्लीमें सय्यद-बन्धुओंका दौरदौरा था, दक्षिण हसनअलीखाँके हिस्सेमें आया था। हसनअलीखाँ दक्षिणके शासकोंसे मित्रता करके अपनी शक्तिको बढ़ाना चाहता था। उसने पहले तो शंकर मल्हार नामके एक दक्षिणी सरदारको प्रतिनिधि बनाकर शाहूके दरबारमें भेजा जहाँ उसकी बालाजीसे बातचीत होती रही। बालाजीने शंकर मल्हारके सम्मुख निम्नलिखित शर्तें पेश कीं—

(१) मराठा सरकारको दक्षिणके सूबेसे सरदेशमुखी और चौथ उगाहनेका अधिकार प्राप्त हो।

(२) शिवाजी महाराजका जीता हुआ समस्त प्रदेश मराठा-राज्यके अधिकारमें समझा जाय।

(३) शाहूजी केवल खानदेशको छोड़नेके लिए उद्यत थे, परन्तु उसके बदलेमें पंढरपुर तीर्थके आसपासका प्रदेश चाहते थे।

(४) शिवाजीने कर्नाटकमें जो स्थान जीते थे, वह मराठा-राज्यके भाग समझे जायँ।

(५) शाहू महाराजकी माता और परिवारको दक्षिण जानेकी आज्ञा दी जाय। वह अभीतक मुगल दरबारमें रहनकी तरह रक्खे हुए थे।

इन सब शर्तोंके बदलेमें बालाजीने शाहूजीकी ओरसे यह शर्त पेश की कि वह वार्षिक दस लाख रुपया शाही खज़ानेमें भेजते रहेंगे और जब दक्षिणके शासकको आवश्यकता होगी तब पन्द्रह हजार घुड़सवार पेश कर देंगे। यदि दक्षिणमें कोई गड़बड़ होगी तो उसे शान्त करनेके अतिरिक्त सरदेशमुखीके बदलेमें कुछ वार्षिक फीस भी अदा करेंगे।

हसनअलीखाँ दक्षिणसे निश्चिन्त होकर उत्तरके मामलोंको सुलझाना चाहता था। दिल्लीकी दशा उसे अपनी ओर घसीट रही थी। वह बालाजीकी पेश की हुई शर्तोंको मंजूर करनेके लिए तैयार हो गया, परन्तु, दिल्लीकी गद्दीपर उस समय फर्रुखसियर विराजमान था। जो बात सय्यदोंको पसन्द हो, वह उसे अवश्य नापसन्द थी। उसने उपर्युक्त शर्तोंपर सन्धि करनेसे साफ़ इन्कार कर दिया।

बादशाह और उसके वज़ीरोंके ऐसे मत-भेद दिल्लीकी परिस्थितिमें इतनी खिंचावट पैदा कर रहे थे कि टूटना अवश्यम्भावी था। इस पुस्तकके तीसरे भागमें पाठक फर्रुखसियर और उसके उत्तराधिकारियोंकी दुर्दशाका वृत्तान्त पढ़ चुके हैं। वह कठपुतलियोंकी तरह रंगस्थलीपर आये और विलीन हो गये। उन दिनों बालाजी विश्वनाथ दिल्लीमें ही ठहरा सन्धिकी शर्तोंको स्वीकार करानेकी चेष्टा करता रहा। परन्तु उस क्रान्ति-युगमें सन्धियोंकी चिन्ता किसे थी? समय टलता गया, पर बालाजीने हिम्मत न हारी और धैर्यसे काम लिया। धैर्यका फल भी मीठा हुआ। मुहम्मदशाहके सिंहासनारूढ होनेपर राज्यमें कुछ स्थिरता-सी दिखाई दी और निज़ामुल्मुल्क जैसे कुछेक विरोधियोंके मैदानमें आ जानेसे सय्यद-बन्धुओंको फिरसे मित्रोंकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

अन्तमें १७१९ ई० में सुदीर्घ सन्धि-चर्चाकी समाप्ति हुई। बालाजी विश्वनाथको प्रायः वह चीज़ें मिल गईं जिन्हें वह चाहता था। शाहू महाराजकी माता और परिवारको दक्षिण जानेकी अनुमति मिल गई। दक्षिणके छह सूबोंपर मराठा-राज्यको सरदेशमुखी और चौथके पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। इसके अतिरिक्त उन्हें बब्ती, सहोत्री और नरगोंडाके नामसे लगानका प्रतिशतक हिस्सा लेनेके इतने अधिकार प्राप्त हो गये कि वस्तुतः दक्षिणकी लगभग सारी आय मराठा-राज्यके हाथमें चली गई। बालाजीने जो किले माँगे थे थोड़े-से परिवर्तनके साथ वह भी उसे मिल गये। इस लम्बे सन्धि-सम्बन्धी वार्तालापके लिए दक्षिणसे आने-जानेमें मराठोंकी सेनाका जो खर्च हुआ था, वह भी शाही खजानेसे दिया गया। इस प्रकार असाधारण सफलता प्राप्त करके बालाजी विश्वनाथ जब अपने स्वामीके पास वापिस आया तो सन्तुष्ट होकर स्वामीने लोहगढ़का किला और उसके आसपासके स्थान उसे पारितोषिक रूपमें प्रदान किये। शाहूने बालाजीपर जो उदारता दिखाई, वह उचित ही थी। कोई मंत्री अपने राजाके लिए इससे अधिक और क्या कर सकता था? राज्यके आन्तरिक शत्रुओंको नष्ट करके सिंहासनको दृढ़ नींवपर स्थापित कर दिया और मुग़ल साम्राज्यसे सन्धिकी ऐसी शर्तें प्राप्त कर लीं जो विजयीको ही प्राप्त हो सकती थीं। इस सन्धिने दक्षिणपर मराठा-राज्यके कानूनी अधिकारको पूरी तरह स्थापित कर दिया।

३—महाराष्ट्र-ध्वजा अटककी ओर

सिताराका सभा-भवन था। राजा शाहू गद्दीपर विराजमान थे। राजाके सब प्रमुख सरदार अपने अपने आसनोंपर बैठे हुए थे। सभामें उत्सुकता और सम्भावनाका आतंक था, क्योंकि आज नया पेशवा बाजीराव अपनी भावी नीतिकी घोषणा करनेवाला था।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथकी ई० स० १७२० ई० के प्रारम्भमें मृत्यु हो गई थी। अपने स्वामीकी सेवामें उसने जो कष्ट उठाये थे उन्होंने बालाजीके शरीरको थका दिया था। दिल्लीसे लौटनेपर पेशवाने अनुभव किया कि अब शरीरको विश्रामकी आवश्यकता है। वह राजाकी अनुमतिसे अपने गाँवमें आराम लेनेके लिए चला गया जहाँ हृदयकी गति रुक जानेसे उसकी मृत्यु हो गई। बालाजी विश्वनाथ उन सौभाग्यशाली पुरुषोंमेंसे था जो अपने पीछे अपने स्वामीके हृदयमें कृतज्ञता और साथियोंके हृदयोंमें आदरका भाव छोड़ जाते हैं। उसने शाहूजीके राज्यको अशान्त और छिन्न-भिन्न दशामें पाया था और शान्त, संगठित और प्रतिष्ठित दशामें छोड़ा। वह मराठा-राज्यका पुनर्जन्मदाता था। उसे हम विस्तृत मराठा-राज्यका पिता कह सकते हैं।

बालाजीकी मृत्युके पीछे राजा शाहूने पिताके ताजको पुत्रके सिरपर रखनेका निश्चय किया। राज्य-प्रतिनिधि श्रीपतरावका राजापर बहुत असर था। उसने प्रयत्न किया कि बालाजीके पुत्रको पेशवा न बनाया जाय, परन्तु राजा शाहूके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वह आदमीके चुनावमें कुशल था। उसका चुनाव प्रामाणिक होता था। बालाजीके चुनावमें राजा शाहूकी चतुरता सिद्ध हो चुकी थी। अब उसके उत्तराधिकारीके चुनावमें भी उसने दूरदर्शिताका प्रमाण दिया। प्रतिनिधिके आग्रहकी शिष्टतापूर्वक उपेक्षा करके उसने पेशवाके आसनपर बालाजीके पुत्र बाजीरावको स्थापित कर दिया।

आजके दरबारमें बाजीराव अपनी नीतिकी घोषणा करनेवाला था। बाजीराव अपने पिताकी तरह विद्वान् नहीं था और न कूटनीतिमें निपुण ही था। उसका जीवन लड़ाईके मैदानमें ही व्यतीत हुआ था। उसकी आयु केवल २८ वर्षकी थी। वह खूब ऊँचा कद्दावर जवान था। युद्धमें उसका साहस प्रसिद्ध था। सब लोगोंको मालूम था कि वह राज्यकी भावी नीति पेश करनेवाला है और

बाजीराव

प्रतिनिधि श्रीपतराव उसके विरुद्ध हैं। इस कारण सभासदोंकी उत्सुकता और भी अधिक बढ़ गई थी।

बाजीरावने मराठा-राज्यके सामने आगे बढ़नेकी नीति पेश की। उसने कहा कि अब हम दक्षिणकी सीमामें बँध नहीं रह सकते। हमें हिन्दुस्तानके केन्द्रकी ओर बढ़ना चाहिए और *मुगल-साम्राज्यके हृदयपर कब्जा करना चाहिए।* प्रतिनिधिने इस नीतिका घोर विरोध किया। उसने राजा शाहूका ध्यान दक्षिणकी दशाकी ओर खींचते हुए बतलाया कि राज्यका खजाना खाली पड़ा है उसे सुशासनसे भरना चाहिए, कोंकणमें गड़बड़ हो रही है उसे शान्त करना चाहिए। मराठा राज्यकी स्वतन्त्रता दिल्लीसे मानी जा चुकी है, अब मुगल साम्राज्यसे व्यर्थकी लड़ाई मोल लेनेसे कोई लाभ नहीं, अब तो अपनी दशाको सँभालना और सन्तोषसे बैठना चाहिए।

बाजीरावको यह नीति पसन्द नहीं थी। उसने प्रतिनिधिकी एक एक दलीलका उत्तर दिया। यह ठीक है कि दक्षिणका खजाना खाली है, परन्तु दक्षिणमें धन है कहाँ? यदि दक्षिणका खजाना भरना है तो उत्तरके धनधान्यपूरित स्थानोंपर अधिकार करना होगा। शिवाजी महाराजने दक्षिणके गरीब किसानोंको चूसकर अपना खजाना नहीं भरा था। जब भारी आवश्यकता होती तब महाराज मुगल राज्यके किसी हिस्सेको निचोड़ लेते थे। बाजीरावने यह भी बतलाया कि मुगल राज्य अन्दरसे खोखला हो गया है। उसे घरकी फूट और प्रमादने अधमुआ कर दिया है। उसे तो अब एक धक्का देनेकी जरूरत है, धक्का मिलते ही वह औंधे मुँह गिर पड़ेगा। एक बार महाराष्ट्रके घुड़सवार उत्तरमें जायें तो सही, *विजयलक्ष्मी उनके चरणोंमें लोटने लगेगी।* अन्तमें राजा शाहूको सम्बोधन करते हुए युवक पेशवाने कहा, "महाराज, मुगल-राज्यरूपी वृक्षके तनेपर प्रहार करो, शाखायें तो स्वयं गिर जायँगीं। मेरी बात मानो तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अटककी दीवारोंपर महाराष्ट्रकी ध्वजा गाड़कर छोड़ूँगा।"

राजा शाहूका हृदय इन ओजस्वी शब्दोंको सुनकर उछल पड़ा। उसने उत्तेजित होकर कहा, "हाँ, हाँ, तुम तो महाराष्ट्रकी ध्वजाको हिमालयकी चोटीपर गाड़ दोगे।" इन वीर वचनोंसे महाराष्ट्रके सरदारोंकी तलवारें म्यानोंमें झनझना उठीं। राजाने बाजीरावकी नीतिको स्वीकार कर लिया और उस दिनसे महाराष्ट्र सेनाकी अटककी ओर यात्रा प्रारम्भ हुई।

४—मराठोंका गुजरातमें प्रवेश

उत्तरकी ओर विजय-यात्रा करनेसे पूर्व दो काम आवश्यक थे। सबसे पहले तो विजयका यन्त्र तैयार करना था। विजयके लिए सेना चाहिए, सेनापति चाहिए और कुछ धन भी चाहिए। पेशवाको इन सबके जुटानेमें कुछ समय लगा। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि महाराष्ट्रके राज्य-संगठन और सेना-संगठनमें एक बड़ा परिवर्तन आ गया था जिससे उसका रूपान्तर ही हो गया था। इससे पूर्व महाराज शिवाजीका बनाया हुआ राज्य-संगठन था जिसमें राजाकी सहायताके लिए आठ मन्त्रियोंकी एक परिषद् नियुक्त की जाती थी। उस संघटनमें सारी शक्ति राजामें केन्द्रित रहती थी। वही सब सचिवोंसे काम लेता था। समयके साथ दशायें बदलती गईं। राज्यका विस्तार हो गया और राजा उतने ज़बर्दस्त न रहे। यह तो असन्दिग्ध बात है कि महाराष्ट्रका उत्थान केवल एक राजवंशका उत्थान नहीं था। वह तो एक राष्ट्रका उत्थान था। राष्ट्रके उत्थानमें यह विशेषता होती है कि अवस्थानुसार उसके संगठनमें परिवर्तन होता रहता है। बालाजी विश्वनाथके समयसे महाराष्ट्रका राज-सिंहासन भी बदल रहा था। आठ मन्त्रियोंका स्थान महाराष्ट्रके प्रमुख सरदारोंकी मण्डली (Confederacy) ने ले लिया था। उन सरदारोंको मुग़ल सरदारोंकी तरह जागीरें दे दी जाती थीं। उन जागीरोंसे वह कर, चौथ या सरदेशमुखी वसूल करते थ और वही उस जागीर या सूबेके शासक समझे जाते थे। इस अधिकारके बदलेमें उन्हें राजाके कोषमें निश्चित धन-राशि देनेके अतिरिक्त युद्धके समय घुड़सवारोंकी नियत संख्याके साथ राजाकी सहायताके लिए आना पड़ता था। ऐसे सरदारोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। राजाके व्यक्तित्वके प्रति वह सब भक्तिके भावसे बँधे रहते थे। पेशवामें और सरदारोंसे यह विशेषता थी कि वह राजाका प्रमुख सलाहकार और कार्यकर्ता था। प्रतिनिधि और सेनापतिके दो अलग पद भी कायम थे, परन्तु असलमें पेशवाके हाथमें ही सब शक्ति एकत्र होती जाती थी। वह एक प्रकारसे सारी सरदार-मण्डलीका प्रणेता था।

इस मण्डली-प्रथाका जन्म बालाजी विश्वनाथके समयमें हुआ और विस्तार बाजीरावके समयमें। बाजीरावने शीघ्र ही सरदारोंकी अधिक संख्याको अपने पक्षमें कर लिया और चार वर्षके उद्योगके पश्चात् १७२४ में उसने अपनेको इस योग्य पाया कि महाराष्ट्रकी ध्वजाको दक्षिणकी सीमाओंसे आगे उत्तरीय भारतमें गाड़नेका उपक्रम करे।

मराठोंका गुजरातमें प्रवेश

गुजरात प्रान्त मुगल साम्राज्यके लिए धनकी खान था। उस प्रान्तकी उपजाऊ भूमि साम्राज्यके कोषको भरनेके लिए बहुत बड़ी राशि भेजती थी। मराठोंकी उसपर पहलेसे नजर थी। शिवाजीका सूरतपर आक्रमण तो प्रसिद्ध ही है। सूरतके अतिरिक्त गुजरातके अन्य स्थानोपर समय समयपर छापे होते रहे, परन्तु, स्थायीरूपसे उसके किसी भागपर अधिकार करनेका विचार पैदा नहीं हुआ था। गुजरातमें मराठोंका पहला कदम दिल्लीकी दरबारी उलझनोंसे रक्खा गया। उन दिनों निजामुल्मुल्क प्रधान मन्त्रीके पदपर काम कर रहा था और मुहम्मदशाह, उस समयके नपुंसक बादशाहोंकी रीतिके अनुसार, अपने प्रधान मन्त्रीके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेमें लगा हुआ था। गुजरातका सूबा निजामुल्मुल्कके अधिकारमें था। उसने अपना प्रतिनिधि बनाकर अपने चचा हमीदखाँको गुजरातके लिए रवाना किया। उधर मुहम्मदशाहने काबुलके गवर्नर सरबुलन्दखाँको गुजरातका शासक बनाकर निजामुल्मुल्कके प्रतिनिधिसे भिड़ जानेका आदेश दे दिया। सरबुलन्दखाँ प्रधान मन्त्रीपदका उम्मेदवार था, वह स्वयं तो दिल्लीमें रहा और शुजातखाँको काफी सेनाके साथ गुजरातकी ओर भेज दिया। हमीदखाँ बड़ी मुसीबतमें पड़ गया। जब अधिकारको हाथमें रखनेका उसे और कोई उपाय न दिखाई दिया तो उसने मराठा सरदार कन्थाजी कदम बान्देसे साथ देनेकी प्रार्थना की। बान्दे इस शर्तपर राजी हो गया कि उसे गुजरातसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेका अधिकार दिया जाय। मरता क्या न करता? हमीदखाँ राजी हो गया। दोनोंने मिलकर शुजातखाँपर आक्रमण किया और उसे परास्त करके और मारकर अहमदाबादपर अधिकार जमा लिया।

शुजातखाँका भाई रुस्तमअलीखाँ सूरतका गवर्नर था। उसे भाईके वधपर क्रोध आ गया। उसने एक ओर मराठा सरदार पिलाजी गायकवाड़से मित्रता कर ली और वह हमीदखाँ तथा बान्देसे गुजरात छीननेका प्रयत्न करने लगा। पहले तो रुस्तमअलीखाँको कुछ सफलता मिली, परन्तु शीघ्र ही बान्देने पिलाजीको अपनी ओर मिला लिया। रुस्तमअलीखाँ तीनोंका सामना न कर सका। उसके दो प्रमुख सहायक युद्धमें मारे गये, और वह स्वयं मैदान छोड़नेके लिए बाध्य हुआ। हमीदखाँने अब गुजरातकी चौथ और सरदेसमुखीको दो हिस्सोंमें बाँट दिया। माही नदीके पूर्वीय प्रदेशकी चौथका अधिकार पिलाजीको दे दिया और पश्चिमी भागकी चौथका ८

दरबारकी कूटनीति और मुग़ल सरदारोंकी फूटने महाराष्ट्रके सरदारोंके पैर गुजरातमें जमा दिये।

सरबुलन्दखाँको हमीदखाँकी सफलतासे बड़ा क्रोध हुआ। उसने स्वयं गुजरातको जीतनेका निश्चय किया। प्रारम्भमें उसे सफलता भी हुई, और वह अहमदाबाद तक पहुँच गया, परन्तु वहाँ मराठा सरदारोंने उसे ऐसा दिक़ कर दिया कि उसे हार कर उन लोगोंको गुजरातके सेठोंके नाम हुण्डिया देनी पड़ीं। हुण्डियाँ लेकर मराठा सरदारोंने उनकी वसूलीके लिए अपना रास्ता लिया और बेचारा हमीदखाँ अकेला पड़कर दक्षिणकी ओर भाग गया। अब प्रतीत होने लगा कि सरबुलन्दखाँ पूरी तरह गुजरातपर कब्ज़ा कर लेगा, परन्तु दिल्लीकी भाषा ही निराली थी। सरबुलन्दखाँकी क्षणिक सफलताने दरबारमें उसके दुश्मन पैदा कर दिये। बादशाहसलामतने हुक्म दे दिया कि उसे किसी प्रकारकी सहायता न भेजी जाय। परिस्थितिको अनुकूल देखकर मराठा सरदारोंने उसपर चारों ओरसे आक्रमण जारी कर दिये जिससे घबराकर उस बेचारेने १७२० में स्थायी रूपसे गुजरातकी चौथ और सरदेशमुखी मराठोंको अर्पण कर दी।

५—निज़ामसे झपट

राज्यकी आन्तरिक दशाको सुधारनेसे निवृत्त होकर जब बाजीरावने उत्तरकी ओर अपनी महत्त्वाकांक्षासे भरी हुई आँखें उठाईं तो उसे गुजरात और मालवेका क्षेत्र तैयार दिखाई दिया। गुजरातमें मराठा सरदारोंने कैसे प्रवेश किया, यह हम चौथे परिच्छेदमें दिखा आये हैं। मालवाकी सीमायें महाराष्ट्रकी सीमाओंसे सटी हुई थीं और वहाँ भी मराठा सरदार इससे पूर्व अपना पंजा अड़ा चुके थे। बाजीरावने अपने घोड़ेका मुँह उन्हीं प्रान्तोंकी ओर मोड़नेका निश्चय किया।

परन्तु यह काम आसान नहीं था। उसके और इन सूबोंके बीचमें एक ज़बर्दस्त दीवार खड़ी हुई थी। निज़ामुल्मुल्क दिल्लीके झगड़ोंसे तंग आकर दक्षिणमें ही जम गया था। वह वीर भी था और धूर्त भी। नामको तो वह मुग़ल बादशाहका भेजा हुआ गवर्नर था, परन्तु असलमें अब वह अपने आपको दक्षिण, गुजरात और मालवाका स्वामी ही समझता था। निज़ामुल्मुल्कसे बल-परीक्षा किये विना महाराष्ट्रकी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती थी।

निज़ामुल्मुल्कने बाजीरावके बढ़े हुए मन्सूबोंका समाचार पा लिया था, वह भी समझ गया था कि मराठोंसे दो दो बातें करनेका समय आ गया है और उसने बड़ी चतुराईसे अपनी नीतिका जाल बिछाया था। राजा शाहूका प्रतिनिधि नृसिंहराव बाजीरावसे डाह रखता था। उस डाहसे लाभ उठाकर, और बरारमें एक जागीरका लोभ देकर, निज़ामुल्मुल्कने प्रतिनिधिको तो अपने पक्षमें कर लिया और राजारामके पुत्र सम्भाजीको यह प्रलोभन दिया कि राजा शाहूकी जगह तुम्हें गद्दीपर बिठायेंगे। सम्भाजी चालमें आ गया। निज़ामुल्मुल्कने भेद-नीतिमें सफल होकर राजा शाहूके प्रतिनिधियोंको अपने सूबेमेंसे निकल जानेका हुक्म दे दिया और राजा शाहूको कहला भेजा कि तुम्हें और सम्भाजीको हैद्राबादमें हाज़िर होकर अपना मामला पेश करना चाहिए, तब विश्वास किया जायगा कि तुम दोनोंमेंसे गद्दीका हक़दार कौन है।

राजा शाहूने अपने सलाहकारोंसे सलाह की। प्रतिनिधि तो पहले ही हाथ मैला कर चुका था, उसने राजाको डराकर निज़ामुल्मुल्ककी बात मान लेनेकी प्रेरणा की, परन्तु, बाजीरावका तेजस्वी हृदय इस अपमानजनक प्रस्तावपर भड़क उठा। उसने राजा शाहूको राय दी कि निज़ामुल्मुल्कको उसकी हिमाक़तका उचित दण्ड देना चाहिए। राजाको यह राय पसन्द आई और उसने निज़ामुल्मुल्कसे युद्धकी घोषणा कर दी। निज़ामुल्मुल्कने युद्धके लिए न केवल अपनी सेनाओंको ही एकत्र किया बल्कि सम्भाजीको भी पास बुला लिया जिससे उसे कई हज़ार सुशिक्षित मराठा सिपाही लड़ाईके लिए प्राप्त हो गये।

इधर बाजीराव प्रसन्न था कि उसे अपनी उमंगोंको पूरा करनेका अवसर मिल रहा है। उसके और दिल्लीके बीचमें सबसे बड़ा विघ्न निज़ामुल्मुल्क ही था। उसे परास्त कर दिया तो मुग़ल राजधानीका रास्ता साफ हो जायगा, यह सोचकर पेशवा बड़े उत्साह और तीव्रताके साथ युद्धके मैदानमें उतर आया।

बरसातके दिन थे। निज़ामुल्मुल्कको विश्वास था कि प्राचीन पद्धतिके अनुसार बाजीराव बरसातकी समाप्तिपर ही युद्धकी यात्रा प्रारम्भ करेगा, परन्तु जिसे विजयकी धुन है उसके लिए पद्धतिका पालन कैसा? उसके लिए जैसी सर्दी वैसी बरसात। निज़ामुल्मुल्क बरसात बन्द होनेकी प्रतीक्षा हीं करता रहा और बाजीरावने औरंगाबादके ज़िलेमें घुसकर लूट-मार जारी कर दी। जब निज़ामने सुना तो उसने इवाज़ख़ाँको बहुत-सी सेनाके साथ उससे लड़नेके लिए भेजा। बाजीरावको

इवाज़की गतिका पता चल गया और वह और आगे बढ़कर माहुरपर टूट पड़ा। जब इवाज़ उधरको मुड़ा तो बाजीराव औरंगाबाद लौट आया और मशहूर कर दिया कि अब मराठा सेना बुरहानपुरपर आक्रमण करेगी। बुरहानपुर एक धनी और बड़ा शहर था। ऐसे शहरकी रक्षा करना आवश्यक समझकर निज़ामुल्मुल्क इवाज़खाँसे मिलकर बुरहानपुरकी ओर बढ़ा तो उसे मालूम हुआ कि बाजीराव उसे चकमा देकर इससे पूर्व ही खानदेशसे निकल गया है और गुजरातमें पहुँचकर आफ़त मचा रहा है।

निज़ामको जब यह समाचार मिला तो उसे बड़ा क्रोध आया और बाजीरावको दण्ड देनेके लिए उसने पूनापर आक्रमण करनेका संकल्प कर लिया। बाजीराव इस खबरको सुनकर मुस्कराया और गुजरातसे निकलकर गोदावरीके किनारे निज़ामके राज्यमें घुसकर लूट मचाने लगा। अब तो निज़ाम घबरा गया और पूनाकी चिन्ता छोड़कर गोदावरी-तटके प्रदेशकी रक्षाके लिए रवाना हुआ। इस प्रकार युद्धका आक्रमण अपने हाथमें लेकर बाजीरावने निज़ामको आत्म-रक्षाके लिए मजबूर कर दिया। निज़ामको लेनेके देने पड़ गये। चला था मराठा राज्यको जीतने और गले पड़ गई आत्म-रक्षा। पहली ही झपेटमें बाजीरावने युद्धकी चालमें निज़ामको परास्त कर दिया।

गोदावरीके तटपर दोनों सेनापति आमने-सामने आ गये। बाजीरावने भगा-भगाकर निज़ामकी सेनाको थका दिया था, अब लड़नेका उचित अवसर जानकर वह भिड़ गया। निज़ाम बहुत चतुर सेनापति था परन्तु बाजीरावकी प्रतिभाके सामने उसे हार माननी पड़ी। निज़ामकी सेनाएँ मराठा सेनाओंके घेरेमें आ गईं और यदि तोपखाना मदद न करता तो निज़ाम, सम्भाजी और उनकी सेनाओंमेंसे कोई भी आदमी उस समर-भूमिसे बचकर न निकल सकता।

तोपोंकी मददसे निज़ाम घेरेमेंसे तो निकल गया, परन्तु अब लड़नेकी हिम्मत उसमें नहीं रही थी। वह परास्त हो चुका था, उसने इवाज़खाँको सन्धिका पैग़ाम लेकर बाजीरावके पास भेजा। बाजीरावने जो शर्तें पेश कीं वह एक विजेताके योग्य ही थीं। उसकी शर्तें यह थीं कि सम्भाजीको बाजीरावके कब्ज़ेमें दे दिया जाय, चौथ और सरदेशमुखीकी जितनी रकम शेष है वह चुका दी जाय, राजा शाहूको मराठोंका एक-मात्र शासक स्वीकार दिया जाय और मराठे अफ़सर लगानकी वसूलीके लिए निज़ामके अफ़सरोंके साथ साथ रह

सकें। निज़ामने अन्य सब शर्तें तो कबूल कर लीं, केवल सम्भाजीका समर्पण स्वीकार नहीं किया; क्योंकि, आश्रितको त्याग देना वीरोंका काम नहीं। बाजीरावने निज़ामके इस वीरोचित निश्चयको स्वीकार कर लिया और सम्भाजीको छोड़नेकी शर्तपर ज़ोर नहीं दिया। निज़ामने सम्भाजीको पन्हालाके किलेमें भेज दिया और राजा शाहूसे कहला भेजा कि अब जैसा चाहो, करो।

इस प्रकार, अपनी प्रतिभाके बलसे बाजीरावने उस समयके सबसे चतुर और पराक्रमी मुसलमान सेनापतिको परास्त करके मराठा सेनाकी उत्तर-यात्राका मार्ग सुगम कर दिया।

९—गुजरातपर मराठोंका अधिकार

निज़ामके पराजयने अन्य विरोधियोंकी कमर तोड़ दी। शीघ्र ही गुजरातके गवर्नर सरबुलन्दख़ाँकी ओरसे सुलहका सन्देश आ गया जिसे स्वीकार कर लिया गया।

इससे पूर्व हम देख चुके हैं कि पिलाजी गायकवाड़ और बान्दे गुजरातसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल कर रहे थे। वह उन सरदारोंका अपना अधिकार था, उससे मराठा-राज्यको विशेष लाभ नहीं था। निज़ामसे निबटकर बाजीरावने अपने भाई चिमनाजी अप्पाको विधिपूर्वक गुजरात-विजयके लिए रवाना किया। सरबुलन्दख़ाँ घबरा गया और उसने सुलहकी प्रार्थना की। मराठा राज्यका गुजरातसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करनेका अधिकार स्वीकार किया गया, केवल अहमदाबादको जुदा रक्खा गया और उसकी आयका पाँचवाँ भाग ही मराठोंको देनेका निश्चय हुआ। राजा शाहूने, इस प्राप्तिके बदलेमें, समय पड़नेपर सल्तनतको पच्चीस सौ घुड़सवारोंसे सहायता करनेका वादा किया। यह भी शर्त हुई कि पिलाजी और बान्दे गुजरातमें मनमानी न करने पायें।

देखनेमें तो यह सफलता सुगमतासे मिल गई, परन्तु निज़ामको इससे एक भारी उत्पात खड़ा करनेका अवसर मिल गया। सबसे पूर्व जिस मराठे सरदारने गुजरातमें स्थायी रूपसे पैर जमाये थे वह भूतपूर्व सेनापति खंडेराव दाभाड़े था। पिलाजी गायकवाड़ उसीका अनुयायी था। खंडेरावका पुत्र त्र्यंबकराव दाभाड़े गुजरातपर अपना विशेष अधिकार समझता था। चिमनाजी अप्पाकी सफलतासे त्र्यंबकराव बहुत क्षुब्ध हो गया। धूर्त निज़ामुल्मुल्कने उसके क्षोभसे पूरा लाभ

उठाया और उसे उकसाकर मराठा राज्यसे लड़नेके लिए तैयार कर लिया। निज़ामने एक ओर त्र्यंबकरावको विद्रोहके लिए उद्यत कर दिया और दूसरी ओर सम्भाजीको बुला भेजा। इस प्रकार तीनों ओरसे दबाकर बाजीरावकी महत्त्वाकांक्षाको समाप्त कर देनेका संकल्प करके वह १७३० ई० के अक्टूबर मासमें युद्धके लिए उठ खड़ा हुआ।

बाजीरावके लिए संकटका समय था। तीन ज़बरदस्त शत्रुओंका सामना था। उनमेंसे भी त्र्यंबकरावसे विशेष डरनेकी आवश्यकता थी क्यों कि उसका मराठोंमें बड़ा मान था। वह साहसी वीर योद्धा होनेके अतिरिक्त एक पराक्रमी पिताका पुत्र था। बाजीरावके पास केवल २५ सहस्र सेना थी जिसकी प्रतिद्वन्द्वितामें त्र्यंबकराव ४५ सहस्र सिपाहियोंको लेकर मैदानमें उतरा था। कठिनाइयाँ बड़ी थीं, परन्तु बाजीराव उनसे भी बड़ा था। मराठा वीरोंकी राज-भक्ति और अपनी भुजाओंका अवलम्ब लेकर वह तीनों शत्रुओंसे जूझनेके लिए मैदानमें उतर आया। कुछ समय तो दोनों सेनाओंमें दूर दूरसे झपट होती रही, परन्तु अन्तमें बड़ोदेके समीप दभोईके मैदानमें घनघोर लड़ाई हुई। दोनों ही सेनापति वीर थे, हठीले थे और सेनाओंकी श्रद्धाके पात्र थे। त्र्यंबकरावकी सेनामें बहुत-से कोली और भील सिपाही थे, वह पहली टक्करमें ही भाग निकले, परन्तु जब दोनों ओरके मराठे सिपाहियोंकी भिड़न्त हुई तब तो गहरी भयानकता पैदा हो गई। दोनोंमेंसे कोई पीछे पैर रखना नहीं जानता था। सब मरने-मारनेके लिए कटिबद्ध थे। त्र्यंबकरावने बड़ी दृढ़तासे सेना-नायकका काम किया। उसने अपने हाथीके पाँवमें जंजीरें बाँध दी थीं ताकि वह भाग न सके। सेनापतिकी दृढ़तासे प्रभावित होकर सिपाही भी असाधारण वीरतासे लड़े। यहाँ तक कि बाजीरावको अपनी विजय सन्दिग्ध प्रतीत होने लगी। परन्तु वह घबराया नहीं। वह हाथीसे उतरकर घोड़ेपर सवार हो गया और कुछ चुने हुए सिपाहियोंको साथ लेकर उसी स्थानकी ओर लपका जहाँ हाथीके हौदेपर बैठा हुआ त्र्यंबकराव शत्रुकी सेनापर बाण-वर्षा कर रहा था। त्र्यंबकरावने उस दिन इतने तीर बरसाये कि उसकी अँगुलियाँ घायल हो गईं। बाजीराव शत्रु-सेनाको चीरता हुआ वहीं पहुँच गया जहाँ त्र्यंबकरावका हाथी चट्टानकी तरह जमा खड़ा था। बाजीरावको राजा शाहूकी आज्ञा थी कि त्र्यंबकरावको जानसे न मारा जाय। बाजीरावने एक साँडनी-सवारके हाथ लिखकर उसे सन्देश भेजा कि "युद्ध बन्द

कर दो और सुलहका रास्ता निकालो क्यों कि तुम्हारे जैसे वीरकी वीरता राजा शाहूके शत्रुओंको परास्त करनेके काममें आनी चाहिए, राजाकी सेनाओंसे लड़नेके काम नहीं।" परन्तु त्र्यंबकराव बड़ा हठी था। उसने घृणापूर्वक उस सन्देशकी अवहेलना करके और भी अधिक वेगसे बाण-वृष्टि आरम्भ कर दी। बाजीरावने चिल्लाकर अपने आदमियोंसे कहा कि दाभाड़ेको जीतेजी गिरफ्तार कर लो, परन्तु यह असम्भव था। वह अकेला बहादुर सैकड़ोंसे लड़ रहा था और हथियार छोड़ने या थकनेका नाम नहीं लेता था। बाजीराव परेशान हो रहा था कि इतनेमें एक विश्वासघातीकी गोलीने त्र्यंबकरावका अन्त कर दिया। त्र्यंबकरावका मामा भावसिंहराव शत्रुसे मिला हुआ था। उसने अवसर पाकर पीछेसे निशाना लगाकर जो गोली छोड़ी तो दाभाड़ेके सिरके आर-पार हो गई। सेनापतिके गिरते ही सेना तितर-बितर हो गई और मैदान बाजीरावके हाथमें रहा।

इस विजयने गुजरात और मालवेमें राजा शाहूकी स्थितिको बहुत मज़बूत कर दिया। राजाने निश्चय किया कि गुजरात और मालवेके करकी आधी आय राज्यके खज़ानेमें जाय और आधीको पेशवा तथा दाभाड़े-वंशमें इस प्रकार बाँटा जाय कि गुजरातकी आयका आधा दाभाड़े और मालवेकी आयका आधा बाजीरावको मिला करे। इस प्रकार राजा शाहूने उदारता और दूरदर्शितासे रुष्ट हुए दाभाड़े-परिवारको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया। त्र्यंबकरावके भाई यशवन्तरावकी सेनापति-पदपर नियुक्ति कर दी गई और त्र्यंबकके वधके लिए राजाने मन्दिरमें जाकर देवतासे क्षमा-प्रार्थना की।

दिल्लीके देवता अब तो घबराये। जब सरबुलन्दखाँ घिर रहा था तब तो दिल्लीने सहायता भेजनेसे इन्कार कर दिया, और जब उसने जान बचानेके लिए मराठोंको चौथ और सरदेशमुखीका अधिकार दे दिया तो बादशाह बहुत नाराज हो गया और सरबुलन्दखाँको गुजरातकी शासकतासे हटाकर उसके स्थानपर राजा अभयसिंहको नियुक्त कर दिया। राजा अभयसिंह जोधपुरके राजा अजीतसिंहका उत्तराधिकारी था और साम्राज्यके विश्वासपात्र सेवकोंमें गिना जाता था। राजा अभयसिंहने सेना लेकर सरबुलन्दखाँपर चढ़ाई की। सरबुलन्द-खाँने पहले तो बादशाहकी आज्ञाको अनुचित समझकर अभयसिंहसे लड़ाई की और उसे परास्त भी कर दिया, परन्तु फिर शायद यह सोचकर कि एक ओर मुग़ल

सल्तनत और दूसरी ओर मराठा सरदार, इन दो धारोंमें पड़कर पिसना पड़ेगा, उसने राजा अभयसिंहसे सुलह कर ली और गुजरातकी बागडोर उसके हाथमें सौंपकर दिल्लीकी ओर प्रयाण किया। उसके दिल्लीमें पहुँचनेपर बादशाहने कुछ दिनतक तो कोप-लीलाका अभिनय किया और सरबुलन्दखाँको मुलाकातसे वंचित रहना पड़ा परन्तु अन्तमें लीला समाप्त हो गई और सरबुलन्दखाँको इलाहाबादका गवर्नर नियुक्त कर आदर-सत्कारपूर्वक दिल्लीसे विदा किया गया।

अभयसिंहने गुजरातके अधिक भागको मराठोंके हाथमें पाया। सरबुलन्दखाँका पूरा प्रभाव शायद अहमदाबादतक ही परिमित था। बड़ोदामें पिलाजी गायकवाड़का दौरदौरा था और राजा शाहूके एजेण्ट प्रान्त-भरमें चौथ और सरदेशमुखीके उगाहनेके लिए फैले हुए थे। राजा अभयसिंहने सबसे पहले बड़ौदाको हस्तगत करनेका निश्चय किया। समय भी अनुकूल था, क्योंकि बाजीराव और चिमनाजी मालवा और दक्षिणकी उलझनोंमें फँसे हुए थे। अभयसिंहको बड़ौदाके सर करनेमें कोई कठिनाई भी न हुई। परन्तु, इससे गुजरातकी समस्या हल नहीं हुई। बड़ौदासे हटाये जाकर पिलाजी और भी अधिक भयानक हो गया, क्यों कि कोली भील आदि जंगली जातियोंपर उसका गहरा प्रभाव था, उनकी सहायतासे उसने अभयसिंहकी नाकमें दम कर दिया। कोई स्थान सुरक्षित नहीं था। आज यहाँ तो कल वहाँ। मराठोंके रात-दिनके आक्रमणों और छापोंसे राजपूत सेनापति तंग आ गया और अन्तमें उसने एक ऐसा नीच काम किया जिसने न केवल राजपूत नामपर ही कलंकका टीका लगा दिया वरन् गुजरातको भी सदाके लिए मुगलोंके हाथसे निकाल दिया। उसने पिलाजीको सुलहकी बातचीतके लिए निमंत्रित किया और विश्वासमें लाकर एक दिन हत्यारेकी छुरीका शिकार बना दिया। अभयसिंह पिलाजीके डेरेपर जाकर देरतक बैठा बातें करता रहा, जब उठ कर बाहर आया तो अपने एक आदमीको पिलाजीसे गुप्त बात करनेके बहानेसे अन्दर भेज दिया। पिलाजी आराम कर रहा था। उसके कानमें बात करनेके मिषसे अभयसिंहका आदमी पास चला गया और उसने कमरसे पैनी छुरी निकाल कर पिलाजीकी छातीमें घुसेड़ दी। पिलाजी उसी समय मर गया।

पिलाजी तो मर गया, परन्तु अभयसिंहको कुछ न मिला। पिलाजीके भाई महादजी और लड़के दामाजीके नेतृत्वमें सारा गुजरात उठ खड़ा हुआ और

थोड़े ही दिनोंमें अभयसिंहके लिए भागनेके सिवा आत्म-रक्षाका कोई उपाय शेष नहीं रहा। दामाजी गायकवाड़ बहुत ज़बर्दस्त योद्धा था। उसने बड़ोदेको जीत कर अपनी राजधानी बना लिया और सारे गुजरात-प्रान्तपर अधिकार जमा लिया। बड़ौदाके वर्तमान राजवंशका यही प्रारम्भ था।

इस प्रकार, लम्बे संघर्षके पश्चात्, १७३५ ई० में गुजरात मुग़ल साम्राज्यसे जुदा होकर पूरी तरह मराठोंके अधिकारमें आ गया।

७–बुन्देलखण्डमें महाराष्ट्रकी ध्वजा

जिस वृक्षकी जड़ें निर्बल हो जायँ उसके पत्ते और शाखाओंमें भी कमज़ोरी आ जाती है और शीघ्र ही वह समय आ जाता है जब उसके फूल और पत्ते झड़कर गिरने लगते हैं। मुग़ल साम्राज्यकी उस समय यही दशा हो रही थी। जड़ें बेजान-सी हो रही थीं जिसका फल यह हो रहा था कि साम्राज्यके अंग टूट टूट कर गिर रहे थे। गुजरातका किस्सा आप सुन चुके, अब बुन्देलखण्डकी कहानी सुनिए।

इस पुस्तकके दूसरे भागके आठवें खण्डमें हमने बुन्देलखण्डपर राजा छत्रसालकी ध्वजाको फहराते हुए देखा था। औरंगज़ेबने अपने अन्तिम वर्षोंमें अनुभव कर लिया था कि अब सब विद्रोहोंको दबा देनेकी शक्ति उसमें नहीं है। इस कारण वह विद्रोहियोंके साथ सुलह करने लगा था। छत्रसालको भी उसने दक्षिणमें बुलाकर आदर-सत्कारसे विभूषित किया था और बुन्देलखण्डका शासक स्वीकार कर लिया था। औरंगज़ेबके पीछे उस पराक्रमी राजाका मार्ग प्रायः निष्कंटक-सा बना रहा। किसीने उससे छेड़छाड़ न की और न उसने ही मुग़लोंसे उलझनेकी चेष्टा की। सय्यद-बन्धुओंके नाशके पश्चात् जब उन सरदारोंको इनाम बाँटे गये जिन्होंने सय्यदोंके साथ विश्वासघात किया था तो मुहम्मदख़ाँ बंगश नामके पठान सरदारको इलाहाबादका गवर्नर बनाया गया। मुहम्मदख़ाँ बंगश बहुत महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। मुग़ल लेखकोंका तो कहना है कि वह इलाहाबादको केन्द्र बनाकर दूसरा रुहेलखण्ड स्थापित करनेकी उमंग रखता था। उसने इलाहाबादके हाकिमकी गद्दीपर बैठकर सीमायें बढ़ानेकी लालसासे दृष्टि दौड़ाई तो उसे बुन्देलखण्ड दिखाई दिया। बुन्देलखण्डसे दिल्लीकी कुछ नाराज़गी भी थी। १७२० में बुन्देला लोगोंने मुग़ल गवर्नर दिलेरख़ाँको मारकर स्वतन्त्रताका झंडा

खड़ा कर दिया था। जब राजा गिरधर बहादुरने इलाहाबादमें मुग़ल बादशाहके विरुद्ध बगावत की तो राजा छत्रसालने उसे सहायता भेजी। दिल्लीकी नाराज़गी और मुहम्मदशाहकी महत्त्वाकांक्षाने मिलकर शीघ्र ही ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि लड़ाईका प्रारम्भ हुआ।

१७२३ से निरन्तर ६ वर्षतक मुग़ल सेनायें बुन्देलखण्डपर आक्रमण करती रहीं। राजा छत्रसालकी आयु उस समय ७० वर्षसे ऊपर चली गई थी, परन्तु, उस आगके परकालेके तेजमें कोई भेद नहीं आया था और न उसका धैर्य ही टूटा था। मुसलमानोंके पास सेना और धनका बहुत अधिक बल था, इस कारण उन्हें सफलता होती रही, परन्तु, वह सफलता केवल सरकारी खरीतोंतक ही परिमित थी। मुहम्मदशाह हर महीने दिल्लीको इस आशयके खरीते भेजा करता था कि हमारी सेना आगे बढ़ी, दुश्मनने रास्ता रोकनेका यत्न किया, हमने उसे हटा दिया और दुश्मनकी जगहपर कब्ज़ा कर लिया, परन्तु फिर क्या हुआ? खरीते इस सम्बन्धमें चुप थे क्यों कि छह वर्षतक निरन्तर आक्रमण करके आगे बढ़ने और बुन्देलखण्डकी भूमिपर अधिकार जमानेके पश्चात् भी मुग़लोंकी सेना लगभग उसी जगह थी जहाँ प्रारम्भमें। राजा छत्रसालने अपने बूढ़े शरीरके साथ ऐसी चतुराई और मुस्तैदीके साथ युद्ध किया कि मुहम्मदशाहका जीतते जीतते नाकमें दम आ गया परन्तु जीतनेकी आवश्यकता फिर भी बनी रही!

लड़ाई लम्बी होती जा रही थी और मुहम्मदख़ाँका ख़ज़ाना ख़ाली हो रहा था। उस बेचारेने दिल्लीसे सहायता माँगी तो कोई उत्तर ही नहीं मिला। और अधिक उलझना व्यर्थ समझकर मुहम्मदख़ाँने छत्रसालसे सुलहकी बातचीत जारी कर दी। छत्रसालने भी संधिके प्रस्तावका स्वागत किया। दोनोंने मिलकर संधिकी शर्तें तय कीं और उन्हें लेकर विशेष दूतको दिल्ली रवाना किया गया। किसी भी संधिका दिल्लीसे प्रमाणित होना आवश्यक था, इस कारण बड़ी उत्सुकतासे मुहम्मदख़ाँ और छत्रसाल दिल्लीके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु रेतमें तेल कहाँ? दिल्लीकी दशा ही विचित्र थी। वहाँ अव्यवस्था और अविश्वासका राज्य हो रहा था। ज्यों ही यह समाचार पहुँचा कि मुहम्मदख़ाँ बंगश और छत्रसालमें मेल हो गया है त्यों ही दिल्लीके षड्यन्त्रकारियोंकी तारें खटखटाने लगीं। उन्होंने बादशाहको यह सुझाना प्रारम्भ कर दिया कि बंगश पठान है। पठानोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। वह तो स्वतन्त्र हुकूमतकी

स्थापना करना चाहता है और कोई आश्चर्य नहीं कि छत्रसालसे मिलकर वह दिल्लीपर आक्रमण कर दे और बादशाह बननेका प्रयत्न करे। बादशाह तो काठका उल्लू था ही। निर्बल मनुष्य सदा अविश्वासी होता है। वह बुरीसे बुरी आशंकाको स्वीकार करनेको उद्यत रहता है। मुहम्मदशाहने भी षड्यन्त्र-कारियोंकी सब बातें सच मान लीं और मुहम्मदखाँकी भेजी हुई संधिकी शर्तोंको स्वीकार करनेसे इन्कार कर दिया।

इधर तो अविश्वास और आशंकाके कारण घरमें फूट पड़ रही थी और उधर बाजीराव पेशवा बुन्देलखण्डपर आँधीकी तरह उमड़ा हुआ चला आ रहा था। जब छत्रसाल युद्ध-क्षेत्रमें बंगशको पराजित न कर सका और हीन-संधि करनेपर लाचार हुआ तो उसने बाजीराव पेशवाको एक पत्र लिखकर सहायताकी प्रार्थना की। उस पत्रका एक अंश सुरक्षित है। छत्रसालने बाजीरावको लिखा था—

जो गत ग्राह-गजेन्द्रकी सो गत भइ है आज।
बाजी जात बुँदेलकी राखो बाजी लाज॥

गजेन्द्रकी पुकारका भगवानपर जो असर हुआ था, बाजीरावपर छत्रसालकी पुकारका उससे कुछ कम असर नहीं हुआ। बाजीराव एक बड़ी सेनाको लेकर बुंदेलखण्डके उद्धारके लिए रवाना हो गया।

जिस समय छत्रसालको बाजीरावके समीप आनेकी सूचना मिली, वह बंगशके डेरेके समीप ही अपने डेरे जमाये हुए दिल्लीके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने जब सुना कि पेशवा आ रहा है तो मुहम्मदखाँसे यह कहकर छुट्टी ले ली कि होलीका त्योहार है, उसमें हिन्दुओंको कुछ आज़ादी चाहिए; मुग़ल सेनाओंके समीप रहना अच्छा नहीं होगा। मुहम्मदखाँ अपनी सफलतासे इतना मस्त हो रहा था कि उसे न तूफ़ानकी खबर थी और न भूचालकी। न उसे यही पता था कि बाजीराव सिरपर आ पहुँचा है और न यही मालूम था कि दिल्लीमें उसका गला काटनेकी मन्त्रणायें चल रही हैं। उसने अपने बहुत-से सिपाहियोंको छुट्टीपर घर भेज दिया था और स्वयं निश्चिन्त होकर रंगरलियाँ मना रहा था। इधर दिल्लीमें प्रतिस्पर्द्धी लोग छत्रसालको गुप्त चिट्ठियाँ लिख रहे थे कि अगर हो सके तो मुहम्मदखाँको मार डालो, इससे बादशाह बहुत खुश होगा।

मुहम्मदखाँको मराठोंकी सेनाका समाचार तब मिला जब वह २२ मीलकी

दूरीपर रह गई। जब समाचार मिला तब भी वह माननेको तैयार नहीं हुआ। उसे विश्वास नहीं आया कि बाजीराव इतनी दूरीकी यात्रा करके बुन्देलखण्डपर टूट पड़ेगा। जब बला सिरपर आ गई तो मानना ही पड़ा, परन्तु तब तो आग लग चुकी थी, कुआ खोदनेसे भी कुछ काम बननेकी आशा नहीं रही थी। बहुत प्रयत्न करके वह केवल नौ हज़ार सिपाही एकत्र कर सका।

उधर विजयकी मस्तीमें झूमता हुआ बाजीराव स्वयं सेनाको लिये आ रहा था। सेनाकी संख्या बढ़ते बढ़ते ७० हजार तक पहुँच गई थी। बाजीरावने उस विशाल सेनासे मुहम्मदखाँकी छोटी-सी सेनाको चारों ओरसे घेर लिया। मुसलमान सेना बहुत बुरी तरह घिर गई। मुहम्मदखाँके लड़के कायमखाँको जब मालूम हुआ कि बाप संकटमें है तो वह बहुत-सी सेना लेकर सहायताके लिए आया, परन्तु, मराठोंकी एक बड़ी सेनाने उसे रास्तेमें ही रोक लिया और बुरी तरह परास्त करके भगा दिया। उधर मुहम्मदखाँकी सेना भूख-प्याससे लाचार होकर जैतपुरके किलेमें चली गई, परन्तु मराठोंने वहाँ भी घेरा डाल दिया और सब ओरके रास्ते बन्द कर दिये।

तंग आकर मुहम्मदखाँने बादशाहके पास दरख्वास्तपर दरख्वास्तें भेजीं कि मदत भेजो, पर वहाँके महापुरुष तो कानमें तेल डाले पड़े थे। वह तो चाहते ही थे कि मुहम्मदखाँ नष्ट हो जाय। कायमखाँ बेचारा हारकर भागा तो कई स्थानोंपर सहायता माँगने गया। सब जगह उसे टकेसा कोरा जवाब मिला, प्रत्युत कई स्थानोंपर तो उसके प्राण संकटमें आ गये। अन्तमें जातिके नामपर प्रोत्साहन दिलाकर उसने कुछ पठानोंको एकत्र किया और लगभग ३० हज़ार सिपाहियोंको लेकर जैतपुरके मोक्षके लिए रवाना हुआ।

इधर मराठे बुन्देलखण्डसे जाना चाहते थे, बाजीरावको अभी बहुत दूरदूरकी दौड़ लगानी थी। मराठोंके डेरेमें बीमारी फैल जानेसे बहुत-से आदमी मर गये, इसलिए भी सेनाको अन्यत्र ले जाना आवश्यक हो गया। उधर कायमखाँ आ रहा था। इस परिस्थितिपर विचार करके छत्रसालने मुहम्मदखाँसे सुलह कर लेनेका ही निश्चय किया और मुहम्मदखाँको इस शर्तपर जैतपुरसे निकलनेकी आज्ञा मिल गई कि वह बुन्देलखण्डपर अपना कोई दावा न रक्खे और चुपचाप घरको वापिस चला जाय। 'जान बची लाखों पाये'के सिद्धान्तके अनुसार मुहम्मदखाँने मराठोंके

पंजेसे निकलके अपने भाग्यको सराहा और कभी बुंदेलखंडकी ओर मुँह न करनेका संकल्प कर लिया।

सहायताके बदलेमें छत्रसालने अपने राज्यका एक तिहाई हिस्सा मराठोंको दे दिया जिसकी वार्षिक आय ३३ लाख रुपयोंसे अधिक थी।

कुछ समय पीछे राजा छत्रसालकी ८२ वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गई। कृतज्ञ राजाने अपनी वसीयतद्वारा राज्यके तीन हिस्से कर दिये जिनमेंसे दो अपने दो पुत्रोंको और तीसरा हिस्सा बाजीरावको दे दिया। राजा छत्रसालने बाजीरावको अपना पुत्र घोषित कर दिया था। वसीयतमें राजाने मुग़लोंके आक्रमणोंसे अपने पुत्रोंकी रक्षाका भार पेशवापर डाल दिया था।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड भी मुग़ल साम्राज्यसे अलग होकर मराठोंके साम्राज्यमें शामिल हो गया।

८–दिल्लीके द्वारपर मराठा घुड़सवारोंकी टाप

मालवेका हरा-भरा समृद्धिशाली प्रान्त कई वर्षोंतक नये नये शासकोंकी महत्त्वाकांक्षाओं और दिल्ली-सम्राट्की तरंगोंका खिलौना बना रहकर अन्तमें सय्यद-बन्धुओंकी कृपासे राजा गिरधररायके अधिकारमें आ गया। राजा गिरधरराय एक धूर्त और कर्मठ शासक था। उसने मालवेपर खूब गहरा पंजा डाल लिया और संभव था कि उस प्रान्तके शासनमें कुछ स्थिरता आ जाती परन्तु शीघ्र ही मराठोंके नये पेशवाने विस्तार-नीतिको स्वीकार कर लिया और मराठा सरदार दूर-दूरके प्रान्तोंमें विजयकी इच्छासे घूमने लगे।

मराठोंको दो सहायक भी मिले गये। यह मानी हुई बात है कि मुग़लोंके राज्यकी स्थिरताका एक प्रधान कारण राजपूत राजाओंका सहयोग था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँने राजपूतोंके साथ अपनावटका व्यवहार किया और उत्तम फल पाया। राजपूत मुगल साम्राज्यरूपी भवनके मुख्य स्तंभ बने रहे। औरंगज़ेबकी हिन्दू-विरोधिनी नीतिने राजपूतोंके मनोभावोंको बदलना आरम्भ कर दिया था और अब तो १७ वीं सदीके अन्तिम भागमें मराठोंके सफल स्वाधीनता-संग्रामने राजपूतोंके हृदयोंमें भी हलचल मचा दी थी,—वह भी पराधीनताके कालेपनको अनुभव करने लगे थे। उनमें भी हिन्दू-जाग्रतिकी भावना

पैदा हो गई थी। उस लहरका नेता जयपुरका महाराज सवाई जयसिंह था। उसके मनमें यह बात जम गई थी कि मालवेमें मुग़लोंकी अपेक्षा मराठोंकी सत्ता होना राजपूतोंके लिए अधिक उपयोगी है। स्वयं मालवेमें राजा गिरधरके शत्रु पैदा हो गये थे। राजा वसूलीमें बहुत सख्त था। इन्दौरका चौधरी नन्दलाल मंडलोई एक प्रभावशाली व्यक्ति था। नर्मदाके तटकी रक्षा करना उसका काम था। वह राजा गिरधरसे बहुत नाराज़ हो गया था। नाराज़ होकर उसने महाराज जयसिंहसे सहायताकी प्रार्थना की और महाराज जयसिंहने उसे पेशवासे प्रार्थना करनेको कहा।

शीघ्र ही मराठा सरदारोंने अपने घोड़ोंका मुँह मालवेकी ओर फेर दिया। एक ओरसे मल्हारराव होल्कर और दूसरी ओरसे पिलाजी गायकवाड़ मालवेमें घुसकर उत्पात मचाने लगे। चिमनाजी अप्पा भी बीचबीचमें उस धनी प्रान्तपर कृपादृष्टि करता रहता था। अन्तमें तंग आकर राजा गिरधररायने दिल्लीसे सहायताकी प्रार्थना की, परन्तु वहाँ क्या धरा था? कानोंमें तेल पड़ा हुआ था और हाथ अर्धांगने मार दिये थे। सहायता तो क्या, कोई उत्तर भी न मिला। अन्तमें राजा गिरधरने स्वयं ही युद्ध करनेकी ठानी। चिमनाजी अप्पा और ऊदाजी पँवारसे उसकी देवासके समीप मुठभेड़ हुई। राजा गिरधरराय और उसके बहुत-से सिपाही मारे गये, शेष सेना मैदान छोड़कर भाग निकली।

राजा गिरधरके मरनेपर सोये हुए बादशाहकी नींद खुली और राजाके भतीजे दयाबहादुरको मालवेका गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। गवर्नर ही नियुक्त कर दिया, परन्तु सहायता देनेका नाम न लिया! उस बेचारेकी भी वही गति हुई जो उसके चचाकी हुई थी। मल्हारराव होल्कर और दयाबहादुरमें धार नगरके समीप लड़ाई हुई जिसमें दयाबहादुर मारा गया।

इधर १७३१ में निज़ामुल्मुल्कको बाजीरावने नीचा दिखाकर हीन-सन्धि करनेके लिए बाधित कर दिया और निज़ामने बाजीरावको मालवेमें यथेष्ट करनेकी अनुमति दे दी।

दयाबहादुरकी मृत्युपर फिर बादशाह सलामतकी नींद टूटी। इस बार इलाहाबादके सूबेदार मुहम्मदखाँ बंगशको मालवेका सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। बंगशके पाँव दो जगह उलझे हुए थे। उसका विचार ऐसा था कि पहले बुन्देलखण्डको जीता जाय और उसके पीछे मालवेपर अधिकार जमाया जाय।

बुन्देलखण्डमें उसकी जो गति हुई, वह हम इसके पहले अध्यायमें देख चुके हैं। बेचारा कठिनतासे अपनी जान बचाकर बुन्देलखण्डसे निकल सका। जिस बादशाहने उसकी अभ्यर्थनाओंकी कोई पर्वा नहीं की थी, अब उसका क्रोध उबल पड़ा और मुहम्मदखाँ केवल मालवेकी ही नहीं, इलाहाबादकी गवर्नरीसे भी पृथक् कर दिया गया।

उस समयकी दिल्लीकी हुकूमतकी अयोग्यताके सैकड़ों दृष्टान्त इस इतिहासमें आ चुके हैं जो सब एक दूसरेसे बढ़िया हैं, परन्तु, बंगशको मालवेकी सूबेदारीसे हटाकर मुहम्मदशाहने उसके स्थानपर जो नई नियुक्ति की, उसका नम्बर सबसे ऊँचा है। बंगशके स्थानपर मालवेका सूबेदार सवाई महाराज जयसिंहको नियुक्त किया गया। हम देख चुके हैं कि जयसिंह मुसलमान हुकूमतका गुप्त विरोधी था। उसके दिलमें राजपूती स्वाधीनताकी भावना विद्यमान थी। राजा गिरधर और दयाबहादुरके नाशकी तहमें उसका हाथ था। ऐसे विरोधीको मालवेका शासक बनाकर तो मुहम्मदशाहने अपनी राजनीतिक अदूरदर्शिताका अकाट्य प्रमाण दे दिया। मालवेका शासक बनकर जयसिंहने पहला काम यह किया कि बादशाहसे पेशवाको ही मालवेका सूबेदार बना देनेकी प्रार्थना की। अब तो बादशाह घबराया और उसने अपने वज़ीर खानदौरानको प्रेरणा की कि वह मालवेकी मराठोंसे रक्षा करे।

उन दिनों मुग़ल साम्राज्यके सब काम एजेण्टोंद्वारा चलते थे। बादशाह वज़ीरको हुक्म देता था, वज़ीर अपने किसी सम्बन्धी या पिट्ठूको आज्ञा देता था, और वह उस कामको अपने किसी नौकरके सुपुर्द कर देता था। कहाँ वह दिन थे कि हरेक विद्रोहको कुचलनेके लिए बाबर और अकबर स्वयं जाते थे (उन्होंने साम्राज्यकी स्थापना की थी,) और कहाँ यह दिन आ गये कि हरेक आदमी दूसरेके कन्धेपर रखकर बन्दूक चलाना चाहता था! रणक्षेत्रके झमेलेसे हरेक बचता था, हरेक यही चाहता था कि किसी दूसरेके द्वारा शत्रुका नाश हो जाय। बादशाहने मराठोंको परास्त करनेका काम अपने प्रधान मन्त्री ख़ानदौरानको सौंपा, और ख़ानदौरानने उसे अपने भाई मुज़फ्फ़रखाँपर डाल दिया।

मुज़फ्फ़रखाँ धूमधामसे मालवेके विजयके लिए रवाना हुआ। बाजीरावने तब तक उसका रास्ता न रोका जब तक वह मध्य-भारतके मध्यतक न खिंच आया। जहाँ मध्यमें पहुँचा कि अवसर देखकर पेशवाने पूरी शक्तिके साथ उसपर आक्रमण कर

दिया। मुज़फ्फरखाँ चारों ओरसे घिर गया, यहाँ तक कि बाहरसे खानेका सामान तक जुटना कठिन हो गया। उधर रात और दिन मराठा घुड़सवारोंके धावोंके मारे नाकमें दम था। तंग आकर उसने अपने भाई खानदौरानके पास सहायताकी प्रार्थना लेकर दूत भेजा। कुछ समय तक तो खानदौरानने उस प्रार्थनाकी उपेक्षा की क्योंकि उस समय सेनापतियोंकी सहायताके लिए की गई प्रार्थनाओंपर ध्यान देना मुग़ल दरबारमें अनावश्यक समझा जाता था। परन्तु फिर भी, मुजफ्फरखाँ भाई था, इस कारण खानदौरानके दिलमें चिन्ता पैदा हो गई और उसने एक दिन धूमधामसे दरबारमें घोषणा की कि 'मैं स्वयं जाकर मराठोंको सजा दूँगा।'

कई दिनोंकी तैयारीके पश्चात् खानदौरानके तम्बू दिल्लीसे बाहर भेजे गये। ख़ानदौरान और भी एक-दो दिन पीछे राजधानीसे रवाना हुआ। कुछ दिनोंतक दिल्लीके आसपास सेना-सहित चक्कर काटकर उसे कुछ अपनी विजयका इतना विश्वास हो गया कि उसने बादशाहको रिपोर्ट भेज दी कि 'मराठे कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे हैं।'

जब खानदौरानका भेजा हुआ समाचार दिल्ली पहुँचा तो दरबारमें उत्सवका समा बँध गया! बादशाहकी प्रसन्नता किनारोंको लाँघ कर बहने लगी। पेशवाकी ओरसे दिल्लीमें धोंडो नामका एक योग्य दूत रहता था। उसने यह समाचार पेशवाको लिख दिया। पेशवाको जब यह खबर मिली तो उसे मुग़ल शासककी मानसिक दशापर हँसी आई। इस सम्बन्धमें बाजीरावके मनमें जो विचार उठे उन्हें उसने अपने भाई चिमनाजीको एक पत्रमें निम्नलिखित शब्दोंमें प्रकट किया था, "सादतखाँने बादशाहको और उसके दरबारियोंको लिखा कि 'मैंने यमुनासे पार आई हुई मराठोंकी सेनाको मार भगाया है, दो हज़ार घुड़सवारोंको नदीमें डुबो दिया है और दो हज़ारको तलवारके घाट उतार दिया है; और मल्हारजी होल्कर और विठोबा बूले जानसे मारे गये हैं। बाजीरावके आक्रमणका यह हाल हुआ है।' सादतखाँने यह भी लिखा है कि 'मैं यमुना नदीको पार करूँगा और मराठोंका पराभव करके उन्हें चम्बलके उस पार धकेल दूँगा।' बादशाह इन समाचारोंको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सादतखाँके लिए इनामके तौरपर एक ख़िलत, एक मोतियोंका हार, एक हाथी और एक हौदा रवाना कर दिये। दिल्लीके दरबारमें सादतखाँका प्रतिनिधि था, उसे भी एक कीमती पोशाक पारितोषिकके तौरपर दी गई। इस प्रकार सादतखाँने दरबारमें अपने प्रभावके

बढ़ाया। उसने मराठोंके सम्बन्धमें बहुत-सी तिरस्कारयुक्त बातें अन्य सरदारोंको भी लिखीं।......तुम्हें मालूम है कि मुग़लोंके यहाँ राजनीतिकी क्या दशा है? बड़ी बड़ी बातें और काम कुछ नहीं, यह उनका मूल मंत्र है। बादशाह उन सब बातोंको सच मान रहा है, परन्तु समय आ गया है कि उसका भ्रम निवारण किया जाय। यह दो प्रकारसे किया जा सकता है। या तो सादतख़ाँको चारों खाने चित किया जाय अथवा दिल्लीपर चढ़ाई कर उसे आग लगा दी जाय और, इस प्रकार, बादशाहको विश्वास दिला दिया जाय कि मराठा घुड़सवार अभी जीवित हैं।"

इन दोनों मार्गोंमेंसे बाजीरावने दूसरेको ही पसन्द किया, क्योंकि वह उसकी तबीयतके अनुकूल था। उधर सादतख़ाँ मराठोंके कल्पित पराजयसे फूलकर कुप्पा हो रहा था और शराबकी नदियाँ बहा रहा था, इधर बाजीराव दिनमें चालीस मीलकी गतिसे अपनी सेनाको घसीटता हुआ दिल्लीके दरवाज़ेकी ओर बढ़ रहा था! बादशाह जीतके सुख-स्वप्न ले रहा था कि एक दिन उसे समाचार मिला कि मराठा घुड़सवार दिल्लीसे बारह मीलकी दूरीपर पहुँच गये हैं। बाजीरावने अपना कैम्प तुग़लकाबादके किलेमें डाल दिया था और मराठे घुड़सवार दिल्लीकी शहर-पनाहके नीचे पहुँचकर लूट-मार कर रहे थे। बादशाहके कानोंतक मराठा घोड़ोंकी टापोंका शब्द पहुँच रहा था, और महलोंकी छतोंपरसे मराठोंके जलाये हुए घरोंका धुँआ दिखाई देता था। मुहम्मदशाहने देख लिया होगा कि मराठा घुड़सवार अभी ज़िन्दा हैं!

बादशाहकी घबराहटका कोई ठिकाना नहीं था। दिल्लीमें 'मराठा' नामका आतंक छाया हुआ था। बाजीरावका रास्ता रोकनेके लिए शहरसे जो सेना भेजी गई वह बुरी तरह काट डाली गई, कई सौ मुग़ल सिपाही मारे गये, कई सरदार धराशायी हुए और बाकी जान बचाकर भागे। अब तो राजधानीमें भी भगदड़ पड़ गई।

बाजीरावका दिल्ली तक आनेका जो प्रधान उद्देश था, वह पूरा हो गया। बादशाहको विश्वास हो गया कि मराठा घुड़सवार अभी जीवित हैं और उसने बाजीरावको मालवेका सूबेदार बनाना स्वीकार कर लिया। बाजीरावने चिमनाजीको लिखा था कि वह राजधानीको जला देगा, परन्तु, राजधानीके पास आकर उसने अनुभव किया कि दिल्लीको जलाकर राख कर देनेकी अपेक्षा उसे जीतकर

भारतपर शासन करना अधिक उपयोगी होगा, इस कारण उसने दिल्लीको जलानेका विचार छोड़ दिया।

परन्तु दिल्लीपर अधिकार जमानेका विचार भी अभी छोड़ना ही पड़ा। बाजी-रावने बड़े ही साहसका काम किया था। उसके और पूनाके बीचमें कई मुग़ल सेनापति अपनी सेनाओंके साथ इस ताकमें पड़े हुए थे कि कहीं मराठे मिलें तो उनका सर्वनाश कर दें। खानदौरान केवल ६० मीलकी दूरीपर था, सादतखाँ भी उसके साथ मिल चुका था। उन दोनोंको दिल्लीसे बुलावा जा चुका था। बादशाहने मुहम्मदखाँ बंगशको भी अपराध क्षमा करके बुला भेजा था। यह अन्देशा बना हुआ था कि कहीं मराठा सैन्यका पीछे जानेका रास्ता ही बन्द न हो जाय। एक चतुर सेनापतिकी भाँति बाजीरावने परिस्थितिको शीघ्र ही पहिचान लिया और दिल्लीके पास अधिक देरतक ठहरनेमें भय देखकर डेरा उठानेमें ही बुद्धिमानी समझी। कुछ दिनोंतक तो मराठा सैन्यका डेरा तुग़लकाबादके किलेमें रहा, उसके पीछे उपनिवेश कुतुबमीनारकी ओर डाले गये और अन्तमें कुछ दिनोंतक उस मैदानमें, जहाँ आजकल अँग्रेज़ वायसरायका भव्य भवन खड़ा हुआ है, ठहरकर पेशवाने दक्षिणकी ओर प्रयाण किया। आई बलाको टालनेके लिए बादशाहने बाजीरावको मालवेका सूबेदार नियुक्त कर दिया और, कई इतिहासलेखकोंने लिखा है कि, कुछ नक़द भेंट भी चढ़ाई।

मालवेपर मराठोंका पूरा अधिकार तो तीसरे पेशवा बालाजीके समयमें हुआ परन्तु उनका कानूनी अधिकार इसी समयसे आरम्भ हो गया था।

९—निज़ामुल्मुल्कका पराजय

आपत्ति तो टल गई, परन्तु उसका आतंक रह गया। बाजीराव तो वापिस चला गया, पर दिल्लीके शासकोंके दिलकी धड़कन दूर न हुई। मुग़ल बादशाहके अपमानमें कसर ही क्या रही थी? शहर लुट जाता या बादशाह शत्रुओंके हाथ पड़ जाता तो कोई आश्चर्यकी बात न होती। इस सम्भावनासे मुग़ल दरबार चिन्तित होकर स्थायी उपाय सोचने लगा।

उधर निज़ामुल्मुल्कने भी देखा कि अच्छा अवसर है अपने अपराधोंकी क्षमा करानेका। उसने बादशाहके पास सन्देश भेजा कि कई भूलें कर चुकनेपर भी

मैं आपका दास हूँ। आपकी सेवाके लिए सदा तत्पर हूँ। प्यासेको मानों पानी मिल गया। बादशाहको इस समय अनुभवी सहायकोंकी आवश्यकता थी। उसने निज़ामुल्मुल्कको दिल्ली पहुँचनेका हुक्म भेज दिया।

निज़ामुल्मुल्क दक्षिणके शासनके बोझको अपने विश्वासपात्र मन्त्रियोंपर डालकर, १७२६ के अप्रैल मासमें, दिल्लीके लिए रवाना हो गया। दिल्लीमें उसका बहुत शानदार स्वागत हुआ। वज़ीर और बादशाह मानों बाजी लगाकर निज़ामका सत्कार कर रहे थे। कई पड़ाव आगे जाकर वज़ीरने अगवानी की, फिर हरेक पड़ावपर बादशाहकी ओरसे खिलत लेकर दूत मिलते रहे। दिल्ली पहुँचनेपर बादशाहने निज़ामपर कृपाओंकी बारिश कर दी। उसे 'आसिफजा'की उपाधिसे भूषित किया गया, तरह तरहके इनाम दिये गये, सबसे बढ़िया अतिथि-महलमें ठहराया गया। और, जब तक निज़ाम वहाँ ठहरा तबतक बादशाहके खास रसोई-घरसे बने हुए तरह तरहके खाने प्रतिदिन उसके लिए भेजे जाते थे। निज़ाम दिल्लीके बादशाहका मुख्य सलाहकार समझा जाने लगा।

बादशाहने निज़ामके सुपुर्द सबसे पहला काम यह किया कि वह मराठोंको मालवेसे मारकर भगा दे। बरसातके समाप्त होनेपर, मुग़ल साम्राज्यकी सब प्राप्तव्य सेनाओंको लेकर, निज़ामुल्मुल्कने मालवाके उद्धारके लिए दिल्लीसे प्रयाण किया। मुग़ल-शक्तिका थोड़ा-सा अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि उस समय राजधानीसे प्राप्तव्य सब सेनायें केवल ३४ हज़ार थीं।

इधर निज़ामकी चढ़ाईका समाचार बाजीरावको भी मिल गया। मुख्य शत्रुसे आखिरी फैसला करनेका अच्छा अवसर देखकर बाजीरावने भी मालवेकी ओर दल-बलसहित प्रयाण कर दिया। निज़ामने अपने दक्षिणके सहायकोंको कई सन्देश भेजे कि वह आगे बढ़कर बाजीरावका रास्ता रोकें, परन्तु बाजीरावकी गति बाज़की तरह तेज थी। इससे पहले कि निज़ामके आदमी अपने हथियार सँभालें पेशवाने अपनी ८० हज़ार सेनाके साथ नर्मदा नदीको पार कर लिया। दोनों सेनापति एक दूसरेपर नज़र जमाये आगे बढ़ रहे थे। तीन महीनोंकी भाग-दौड़के पश्चात् आखिर दिसम्बर मासमें भोपालके समीप दोनों सेनायें आमने-सामने आ गईं और अपने समयके दो प्रमुख भारतीय सेनापतियोंमेंसे कौन बड़ा है यह निश्चय करनेका समय आ पहुँचा।

ऐसा क्यों हुआ, यह तो निश्चयसे नहीं कहाँ जा सकता, परन्तु प्रारम्भसे ही

निज़ामुल्मुल्कपर बाजीरावका तेज-सा छा गया। शायद शाही सेनाओंकी निर्बलताका अनुभव ही इसका कारण हो। सम्भवतः निज़ामको अपने तोपखानेके सिवा शाही सेनाके और किसी भी टुकड़ेपर पूरा भरोसा नहीं था। भोपाल पहुँचकर निज़ामने आगे बढ़ना उचित नहीं समझा और किलेके घेरेमें अपनेको बन्द कर लिया। बाजीरावके लिए यह सुनहला अवसर था। उसने भोपालके किलेको चारों ओरसे घेर लिया। यदि तोपखानेकी मदद न होती तो मुग़ल सेना मराठे आक्रमणोंको सहकर किलेकी रक्षा न कर सकती। निज़ाम अपने समयका सबसे बड़ा भारतीय मुसलमान सेनापति था। उसकी ऐसी त्रुटिपूर्ण युद्ध-नीतिपर स्वयं पेशवाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि निज़ाम एक अनुभवी योद्धा है। मुझे आश्चर्य है कि उसने अपने आपको इस कठिनाईमें कैसे डाल लिया? इससे हिन्दुस्तानमें वह बदनाम हो जायगा।

निज़ामने दक्षिण और दिल्लीको सहायताके लिए सन्देश भेजे। दिल्लीसे वही उत्तर मिला जो संकटके समय अन्य सेनापतियोंको मिलता था।—कहींसे कोई उत्तर नहीं मिला। कहा जाता है कि खानदौरानके अन्दर फिर ईर्षा-राक्षसी जाग उठी थी और वह निज़ामके संकटसे खुश हो रहा था। दक्षिणसे निज़ामके लड़के नासिरजंगने और उत्तरसे सफदरजंगने कुछ सहायता पहुँचानेका यत्न किया परन्तु नासिरजंगका रास्ता पेशवाके भाई चिमनाजी अप्पा, और सफदर जंगका रास्ता मल्हारराव होल्कर आदि सेनापतियोंने बन्द कर दिया। उधर बाजीराव भोपालके किलेके घेरेको अधिकाधिक कड़ा बना रहा था। वह चाबी कसता जा रहा था।

अन्तमें सहायतासे निराश होकर निज़ामने किलेमेंसे निकल भागनेका प्रयत्न जारी किया। वह तोपखानेकी छत्रच्छायामें किलेसे निकला और दिनमें तीन मीलकी गतिसे राजधानीकी ओर बढ़ने लगा, परन्तु यह काम आसान नहीं था, उसके दायें और बायें मराठा घुड़सवार मँड़रा रहे थे। एक एक क़दम कई सिर देकर ख़रीदना पड़ता था। अब तो निज़ामुल्मुल्ककी सेनाओंकी हिम्मत टूट गई और उसे हीन-सन्धिके लिए तैयार हो जाना पड़ा। उधर मराठे भी निज़ामके तोपख़ानेसे परेशान थे, निज़ामने सुलहकी प्रार्थना की, पेशवाने उसे स्वीकार कर लिया। यह सन्धि सिरोंजमें हुई। निज़ामने अपने हस्ताक्षरोंमें यह शर्तें बाजीरावको लिख कर दीं-(१) सारे मालवा प्रान्तपर (२) और नर्मदा

नादिरशाह

और चम्बलके मध्यवर्ती देशपर मराठोंका पूरा राज्य हो, (३) निज़ाम इन शर्तोंकी मंजूरी बादशाहसे लेकर देगा, और (४) यह भी यत्न करेगा कि बाजीरावके खर्चके लिए ५० लाख रुपया बादशाहसे दिलाये।

यह हीन-सन्धि करके निज़ामुल्मुल्क दिल्ली चला गया और उसका वहाँ जाना आवश्यक भी था, क्योंकि, उस समय जर्जरित मुग़ल साम्राज्यको खूनी वर्षासे आप्लावित करनेके लिए उत्तर दिशामें वह भयानक लाल बादल उठ रहा था जिसका नाम नादिरशाह था।

१०—उत्तरका लाल बादल : नादिरशाह

नादिरशाहका असली नाम नादिर कुली था। वह एक ग़रीब बापका बेटा था। उसका बाप भेड़के चमड़ेसे कोट और टोपियाँ बनाकर जीवन निर्वाह करता था। बचपनमें नादिर कुलीको उन सब कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा जो एक ग़रीब कुलमें पैदा हुए महत्त्वाकांक्षी लड़केके सामने आया करती हैं। एक बार उसे उजबक डाकू पकड़ कर ले गये और चार सालतक ग़ुलामीमें रक्खा। जब ग़ुलामीसे छूटा, तो संसार उसके लिए सूना था। कोई आगे बढ़नेका सीधा रास्ता खुला न देखकर नादिरने डाकाज़नीका काम शुरू किया। एक साहसिक डाकूके साथ बहुत-से साथी लग ही जाया करते हैं। थोड़े समयमें वह एक डाकुओंके गिरोहका सरदार बन गया।

फारस उस समय राजनीतिक क्रान्तिकी दशामेंसे गुज़र रहा था। १८ वीं शताब्दिमें फारसके राजवंशको गद्दीसे हटाकर अफ़ग़ान लोग उस देशके स्वामी बन गये थे, परन्तु अफ़ग़ान लोग शासनमें उतने प्रवीण नहीं होते जितने युद्धमें। फारसके लोग विदेशी राज्यसे असन्तुष्ट थे और समय-समयपर विद्रोहकी ज्वाला जलाते रहते थे। देशमें अराजकता छा रही थी। उससे लाभ उठाकर नादिर कुलीने कलातके किलेपर कब्ज़ा कर लिया और थोड़े ही समयमें इतनी शक्ति सम्पादित कर ली कि खुरासानके अफ़ग़ान हाकिमको मार भगानेमें समर्थ हो गया। फारसके देशभक्तोंको नादिरके इस कार्यसे बड़ा सन्तोष हुआ और नादिर देश-भरका दुलारा अग्रणी समझा जाने लगा।

फारसका असली राज्याधिकारी शाह तहमास्प छिनी हुई राज्य-सम्पत्तिको फिरसे प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहा था, परन्तु, अच्छे सहायकोंके अभावके

कारण आगे बढ़नेमें असमर्थ था। नादिरकी कीर्ति उसतक पहुँची तो वह खिल उठा। उसने नादिरसे सहायता ली और फारसको अफ़ग़ानोंके हाथोंसे स्वतंत्र करा लिया। नाम शाहका था, परन्तु फारसनिवासी जानते थे कि काम नादिरका ही था, शाहने कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए आधे फारसका राज्य नादिरको सौंप दिया।

परन्तु शाह तहमास्प बहुत निर्बल आदमी था। नादिरकी तुलनामें वह बिलकुल अपाहिज था। फारसके निवासी एक वीर नेताके लिए तरस रहे थे। परिणाम यह हुआ कि तहमास्पको गद्दीसे उतार कर १७३७ के फरवरी मासमें नादिर स्वयं संपूर्ण फारसका बादशाह बन गया। फारसने इस परिवर्तनका हृदयसे स्वागत किया और झुण्डके झुण्ड लोग एकत्र होकर अपने देशके विजयी शाह नादिरशाहकी सेनामें भर्ती होने लगे।

नादिरशाह कई दृष्टियोंसे असाधारण व्यक्ति था। वह पहले दर्जेका साहसी था। बहुत चतुर और प्रतिभासम्पन्न नीतिज्ञ था। एक ऐसा सेनापति था जिसकी नस-नसमें युद्ध-कला समाई हुई थी। इन सब वस्तुओंके साथ एक विशेष बात यह भी थी कि सीमासे अधिक महत्त्वाकांक्षी था। उसकी कामनाओंका पारावार नहीं था।

नादिरशाहका चित्र अधूरा ही रहेगा यदि उसके स्वभावकी एक विशेषताका वर्णन न किया जाय। उसके धूर्त और प्रतिभाशाली मनके अन्दर एक राक्षसी हृदयका निवास था। जब उसकी इच्छाका प्रतिघात होता, या उसका हृदय किसी चीज़से उत्तेजित हो उठता, तो वह महामारीका रूप धारण कर लेता था। उस समय उसकी दृष्टिमें मनुष्यके जीवनका कोई मूल्य नहीं रहता था। डाकूकी अन्तरात्मा शासकपर हावी हो जाती थी।

गद्दीपर बैठकर नादिरशाह अपने और देशके सब पुराने हिसाब चुकाने लगा। पड़ोसी देशोंने जो प्रदेश फारससे ले लिये थे उन सबको वापिस लेकर १७३७ में नादिरने अफ़ग़ानिस्थानपर आक्रमण करनेका संकल्प किया। एक वर्षमें अफ़ग़ान-शक्तिका केन्द्र-भूत नगर कन्दहार जीत लिया गया। दण्डके तौरपर शहर और किलेको तोड़-फोड़कर मिट्टीमें मिला दिया गया और उसके स्थानपर नादिराबाद नामका नया शहर आबाद किया गया।

इस प्रकार कन्दहारके विजयने नादिरशाहको मुग़ल साम्राज्यके सीमा प्रान्तपर

लाकर खड़ा कर दिया। इस समय उसकी शक्ति बहुत बढ़ चुकी थी। मध्य एशियाके चुने हुए लड़ाकू उसकी ध्वजाके नीचे इकट्ठे हो गये थे। नादिरकी युद्ध करनेकी जन्मसिद्ध योग्यता, अनुभव और सफलताकी शानपर चढ़कर, और भी अधिक चमक उठी थी। उसके नामकी धाक सेनासे भी आगे चलती थी और शत्रुओंके दिलोंको दहला देती थी। सब सिंहासनारूढ राजा काँपते हुए हृदयोंको थाम कर यह जाननेको उत्सुक थे कि नादिरशाह अपने घोड़ेका मुँह किस ओरको मोड़ेगा।

भारतवर्ष और मुग़ल साम्राज्यके दुर्भाग्य थे कि नादिरके घोड़ेका मुँह दक्षिणकी ओर मुड़ गया। वह लाल बादल, जिससे सब डर रहे थे, आग और लहू वरसानेके लिए भारतकी ओर उमड़ पड़ा।

११—मुग़ल साम्राज्यकी जर्जरित दशा

जब नादिरशाहने भारतपर आक्रमण करनेका विचार किया तब भारत किसी ज़ोरदार आक्रमणको रोकनेमें सर्वथा असमर्थ था। मुग़ल सल्तनतकी जो दशा थी वह हम पहले देख आये हैं। एकसत्तात्मक राज्योंके बलाबलका मुख्य आधार राजाका व्यक्तिगत बलाबल होता है। औरंगज़ेबके पीछे मुग़ल बादशाह ऐसे निर्बल और व्यक्तित्वहीन हो गये थे कि उन्हें बाबर या अकबरकी छाया भी नहीं कह सकते। न उनके अन्दर इच्छाशक्ति रही थी और न शारीरिक साहस। मुहम्मदशाहको औरंगज़ेबके वंशजोंमेंसे कुछ अच्छा ही समझना चाहिए,—उसकी भी यह दशा थी कि एक प्रान्तके पीछे दूसरा प्रान्त हाथसे निकलता जा रहा था और वह दिल्लीकी चहारदीवारीमें बैठा चैन उड़ा रहा था।

कमज़ोर राजाका आधार अपने वज़ीरोंपर होता है। वज़ीरोंकी जो दशा थी, वह इसीसे स्पष्ट है कि सब बड़े वज़ीर एक दूसरेसे जलते थे और एक दूसरेको नष्ट हुआ देखना चाहते थे। खानदौरान, ऊपरसे चाहे कितना ही मीठा हो, अन्दरसे निज़ामुल्मुल्कसे जलता था। अवधका सूबेदार सादतख़ाँ दोनोंसे ख़ार खाता था। सब शक्तिसम्पन्न थे, परन्तु अपनी शक्तिका व्यय केवल अपने वार्थके लिए करते थे। बादशाहके काम वहीं तक आते थे जहाँ तक उनका

अपना प्रयोजन सिद्ध होता था। वे अपने प्रयोजनके लिए किसी भी वज़ीर या बादशाहका गला काटनेको तैयार रहते थे।

कई प्रान्त दिल्लीके अधिकारसे निकल चुके थे। गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड लगभग स्वाधीन हो चुके थे, शेष प्रान्तोंमें अव्यवस्था थी। केन्द्रका डर न होनेके कारण रुपया वसूल नहीं होता था। शासक लोग मनमानी करते थे, प्रजाको चूसते थे, परन्तु दिल्लीतक बहुत कम धन-राशि पहुँचती थी। परिणाम यह था कि दिल्लीके जिस ख़ज़ानेमें शाहजहाँके समय ५० करोड़के लगभग रुपया जमा था, वहाँ अब पचास लाखसे अधिक धन-राशि विद्यमान नहीं थी।

प्रजाकी दशा बहुत ही दयनीय थी। प्रबल और शान्त शासनमें प्रजा फलती-फूलती है। गत ३० वर्षोंकी उथल-पुथलने यह हालत पैदा कर दी थी कि कोई किसान विश्वासपूर्वक जमीनको नहीं बो सकता था। उसे विश्वास नहीं था कि मैं बोकर काट भी सकूँगा या नहीं। मुग़ल परिवारके घरू युद्धोंके अतिरिक्त रात-दिनके विद्रोह और लूट-मारके मारे राजधानीसे दस मीलकी दूरीपर रहनेवाला व्यक्ति भी यह नहीं समझता था कि उसका जान-माल सुरक्षित है। प्रजामें असन्तोष था, आशंका थी और भय था, जिसका आवश्यक फल यह था कि साधारण लोगोंकी राज्यमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। सल्तनत उजड़ जाय तो उनकी बलासे। उन्हें न अब चैन थी और न आगे चैनकी आशा थी।

मुग़ल-शक्तिको मुख्य भरोसा दो प्रकारके योद्धाओंपर था। एक तो उत्तरसे आई हुई बलिष्ठ और लड़ाकू मुसलमान जातियोंपर जिनमेंसे तुर्क, पारसी और अफ़ग़ान मुख्य थे, और दूसरे उन हिन्दू राजाओं और उनके अनुयायियोंपर जिन्हें अकबरकी उदार नीतिने साम्राज्यका मित्र बना लिया था। उनमेंसे राजपूत अलग हो चुके थे। औरंगज़ेबके समय उनके हृदयोंको जो ठेस पहुँची उसके प्रभावको औरंगज़ेबके उत्तराधिकारियोंके अधूरे प्रयत्न नहीं मिटा सके। मराठे तो मुग़ल शक्तिको शून्य बना देनेपर तुले हुए ही थे। बुन्देले, जाट और गूजर अपने अपने प्रदेशमें मुग़ल शक्तिको समाप्त-सा कर चुके थे। इस प्रकार हिन्दुओंसे मुग़ल बादशाहको सहायताकी कोई आशा नहीं थी। मुग़ल साम्राज्यका दूसरा सहारा उत्तरसे आये हुए मुसलमान योद्धाओंपर था। कुछ वर्षोंसे वह आमद भी बहुत-कुछ बन्द हो चुकी थी। नये लोग आते नहीं थे और पुराने प्रायः उन

सब निर्बलताओंके शिकार हो चुके थे जो आराम-तलबीके जीवनके साथ आ जाया करती हैं।

भारतके मुसलमानोंमें भी उस समय भेदभाव पैदा हो चुका था। औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसके बुरे व्यवहारने शीया मुसलमानोंके दिल खट्टे कर दिये थे। औरंगज़ेबके उत्तराधिकारियोंमें इतना प्रतापी कोई नहीं हुआ कि वह बिगड़ी हुईको बना सकता। जो प्रवृत्तियाँ औरंगज़ेबके समय पैदा हुई थीं वह रुक नहीं सकीं, प्रत्युत बुरे रूपमें बढ़ती ही गईं। शिया लोग साम्राज्यकी ओरसे बहुत कुछ विमुख हो गये थे।

इस प्रकार साम्राज्यके सब स्तम्भ हिल चुके थे। विशेषतः जिधरसे नादिर-शाह चढ़ाई कर रहा था उधर तो राज्यकी शक्ति बहुत शिथिल हो चुकी थी। काबुलका सूबेदार नसीरखाँ मुग़ल सम्राटका छोटा संस्करण था। वह प्रमादी और अय्याश था। या तो शिकार खेलता था और या तसबीह फेरता था। शासनका काम खुदाके भरोसेपर छोड़ा हुआ था। सूबेके कर्मचारियों और सिपाहियोंको पाँच सालोंसे तनख्वाह नहीं मिली थी। गवर्नरने रुपयोंके लिए दिल्लीको लिखा। दिल्लीके दरबारमें तो शब्द भी दुर्लभ थे रुपयोंका तो कहना ही क्या! सालोंतक कोई उत्तर न मिला। जब बड़ा तकाजा किया गया तो अमीरुल उमराने उत्तर दिया कि "हमने बंगालके गवर्नरको रुपयोंके लिए लिखा है, जब वहाँसे रुपया आ जायगा तो काबुलको भेज दिया जायगा।" न बंगालसे धन आया और न काबुलको भेजा गया। परिणाम यह हुआ कि जब नादिर-शाहने काबुलपर आक्रमण किया तब कोई सामना करनेवाला नहीं था। सेनायें भूखी, नंगी और असन्तुष्ट थीं; और सेनापति प्रमाद और विलासमें फँसे हुए थे।

पंजाबकी भी वैसी ही दशा थी। वहाँके सूबेदार जकरियाखाँपर ख़ानदौरानका अविश्वास था, इस कारण उसकी हरेक माँगका दिल्लीमें विरोध किया जाता था। यहाँ तक कि जब नादिरशाह पंजाबकी सीमापर पहुँच गया और पंजाबके सूबेदारने दिल्लीसे सहायता माँगी, तो उसका उत्तर तक न दिया गया। यदि यह आलस्य था तो अपराध था और यदि उपेक्षा थी तो पाप था। नादिरशाह मानो मुग़ल साम्राज्यको उसके अपराधों और पापोंकी सजा देनेके लिए प्रकृतिका दूत बनकर ही अवतीर्ण हुआ था

१२–काबुलसे कर्नाल

नादिरशाहने भारतपर आक्रमण क्यों किया, इसके दो कारण बतलाये जाते हैं। एक कारण तो राजनीतिक था। जब नादिरशाहने अफगानिस्तान-पर आक्रमण किया तो उसने अपने दूतको इस सन्देशके साथ दिल्ली रवाना किया था कि यदि गज़नीसे भागकर कोई अफ़ग़ान सिपाही मुग़ल राज्यकी सीमाके अन्दर जाना चाहे तो उसे रोका जाय। नादिर अफ़ग़ानोंकी शक्तिका सर्वनाश कर देना चाहता था। वह दूत दिल्लीमें पहुँचे तो उन्हें अद्भुत कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। पहले तो उनकी बात ही ऊपर तक नहीं पहुँची। बेचारे दरबारके चारों ओर चक्कर काटते रहे। जब वज़ीरों तक पहुँच हुई तो वहीं समाप्त भी हो गई। 'जवाब दिया जायगा' इसी जवाबमें महीनों बीत गये। नादिरशाहने गज़नीकी ईंटसे ईंट बजा दी, अफ़ग़ान लोग भागकर मुग़ल सीमाके अन्दर भी आ गये पर दिल्लीके दरबारसे नादिरके सन्देशका कोई उत्तर न मिला।

नादिरशाह इससे झल्ला उठा और उसने ग़जनीपर धावा बोल दिया। गज़नीके गवर्नर बक़ीखाँके पास न धन था और न सेना थी कि लड़नेकी हिम्मत भी कर सकता। वह भाग निकला। नादिरने अनायास ही गज़नीपर कब्ज़ा कर लिया। जिन कबीलोंने स्वयं अधीनता स्वीकार कर ली वह छोड़ दिये गये, परन्तु जिन्होंने आनाकानी की वह तलवारके घाट उतार दिये गये। नादिर-शाहके पास एक ही सज़ा थी और वह थी सर्वनाश।

गज़नीके पश्चात काबुलकी बारी आई। काबुलके गवर्नरने थोड़ी-बहुत रुकावट डालनी चाही, परन्तु कबतक? छह-सात दिनमें ही किलेकी दीवारें गोलोंकी चोटसे जर्जर होकर गिरने लगीं और रक्षकोंने हथियार डाल दिये। जूनका महीना समाप्त होनेसे पहले ही काबुलपर नादिरशाहका अधिकार हो गया।

काबुलमें नादिरशाहको दिल्लीसे समाचार मिला कि मुहम्मदशाहने उसके सन्देशोंका कोई उत्तर नहीं दिया और न उत्तर मिलनेकी कोई आशा ही है। इसपर नादिरशाहने एक लम्बा ख़त मुहम्मदशाहके नाम लिखा जिसमें अपनी शिकायतोंको दुहराते हुए छुपी धमकी भी दी। उस पत्रको लेकर जो राजदूत जा रहे थे उनके साथ नादिरशाहने काबुलके कुछ प्रतिष्ठित निवासियोंको भी रवाना किया ताकि वह मुहम्मदशाहके सामने असली परिस्थिति रख सकें। पत्र

लेकर वह काफ़िला अभी जलालाबाद तक ही पहुँचा था कि एक दुर्घटना हो गई। जलालाबादके सूबेदारने काबुलके निवासियोंको वापिस जानेके लिए बाधित कर दिया और दूतोंको मार डाला। इस समाचारका नादिरशाहपर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। उसने आपेसे बाहर होकर भारतवर्षपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया।

नादिरशाहको भारतपर आक्रमण करनेकी प्रेरणा करनेवाले कारणोंमें एक और भी कहा जाता है। कई इतिहास-लेखकोंने लिखा है कि नादिरशाहको भारतमें निमन्त्रण देनेवाले निज़ामुल्मुल्क और सफदरजंग थे। उन दिनों दिल्लीके दरबारमें खानदौरानकी तूती बोलती थी। निज़ामुल्मुल्क और सफदरजंग उससे जलते थे, उधर मराठोंके आक्रमणोंके मारे निज़ामका नाकमें दम था। कुछ लेखकोंने लिखा है कि काबुलमें निज़ाम और सफदरजंगके दूतोंने जाकर नादिरशाहको हिन्दुस्तानकी निर्बल दशासे परिचय कराते हुए उसे दिल्लीपर आक्रमण करनेकी प्रेरणा की। यह बात कहाँ तक सच है, यह नहीं कहाँ जा सकता। इसके पक्षमें सीधे प्रमाणोंका अभाव-सा है, परन्तु, आगे जो घटनायें हुई उनसे यह सन्देह होता है कि उपर्युक्त दोनों रईसोंका नादिरके आनेमें थोड़ा-बहुत हाथ अवश्य था।

भारतके जिस शहरपर सबसे पहले वज्र गिरा वह जलालाबाद था। उस शहरमें नादिरके दूत मारे गये थे। नादिरके पास आनेका समाचार सुनकर जलालाबादका सूबेदार भाग गया, शहरवालोंने अधीनता स्वीकार कर ली और किलेपर कज़लबाशी (नादिरशाहके सिपाहियोंका) कब्ज़ा हो गया, परन्तु नादिरके क्रोधका यह हाल था कि शहरमें कत्ले आमकी आज्ञा दे दी गई। मर्द सब मार डाले गये और औरतें गुलाम बना ली गईं। पेशावर बिना किसी विरोधके नादिरशाहके हाथ आ गया और १७३९ का सन् आरम्भ होनेसे पूर्व ही फारसकी सेनायें पंजाबके हृदयमें घुस गईं।

जनवरीके शुरूमें नादिरशाहकी सेनाके अग्रभागने लाहौरके दरवाज़े खटखटा दिये। वहाँके सूबेदार ज़करियाखाँने वह सब-कुछ किया था जो दिल्लीकी सहायताके न होते एक सूबेदार कर सकता था, परन्तु विजयके मदमें मस्त अपने समयके सर्वश्रेष्ठ सेनानायकका प्रतिरोध करनेकी शक्ति उसमें कहाँ थी? बेचारा कुछ समय तक तो उस बाढ़को रोकता रहा, परन्तु जब देखा कि लड़ना व्यर्थ

है तो एक ओर अपने लड़केको समाचार देनेके लिए दिल्ली रवाना कर दिया और दूसरी ओर लाहौरके किलेकी चाबी नादिरशाहकी सेवामें उपस्थित कर दी। ज़करियाखाँकी दूरदर्शिता और नम्रताने लाहौरवालोंका बड़ा भला किया, क्योंकि, वह लोग केवल २० लाख रुपया भेंट देकर उस महाभूतसे छुटकारा पा गये।

दिल्लीकी नपुंसकताका अनुमान तो लगाइए कि जब तक नादिरशाहने लाहौरपर कब्ज़ा नहीं कर लिया तब तक मुहम्मदशाहको यह विश्वास नहीं आया कि उत्तरकी ओरसे कोई ख़तरा आ रहा है! लाहौरके समाचार पहुँचनेपर दिल्लीके वायुमण्डलमें कुछ हलचल पैदा हुई। इतनेहीमें नादिरशाहका लाहौरसे भेजा हुआ खत पहुँचा जिसमें उसने अपनी सब शिकायतोंको दुहराते हुए मुहम्मदशाहको आशा दिलाई थी कि यदि तुम झुक जाओ और अपने अपराधोंके लिए क्षमा माँग लो तो लड़ाईसे बच सकते हो, क्योंकि हम-तुम दोनों तुर्क वंशके हैं। हम मुग़ल-सल्तनतके दोस्त बने रहना चाहते हैं।

परन्तु मुहम्मदशाह और उसके सलाहकार युद्ध करनेका निश्चय कर चुके थे। तीर कमानसे निकल चुका था, उसे वापिस लेना असम्भव था। यों तो दिसम्बरमें ही मुहम्मदशाहने तीन बड़े सरदारोंको हुक्म दे दिया था कि वह नादिरशाहका रास्ता रोकें और उसे गुस्ताखीकी सजा दें, परन्तु वह तीनों सरदार महीनों तक दिल्लीके आसपास उद्यानोंमें ही नादिरकी फौजोंको तलाश करते रहे। शायद बादशाह और उसके सलाहकारोंका विचार था कि नादिरशाह काबुलसे या बहुत हुआ तो लाहोरसे वापिस चला जायगा। उन्हें विश्वास था कि 'मुग़ल' नामकी धाक उसके छक्के छुड़ानेके लिए पर्याप्त है। उन्हें क्या मालूम था कि बला बढ़ती ही आयगी।

वह बला अन्धड़की तरह बढ़ती आ रही थी। उसकी सेना जहाँ जाती वहाँ लूट-मार और हत्याका बाज़ार गर्म हो जाता। अटक, वज़ीराबाद, यामिनाबाद, गुजरात आदि बड़े शहरोंको नादिरशाहकी सेनाओंने जलाकर राखके ढेरोंमें परिणत कर दिया था। माल लूट लिया जाता, मर्द मार दिये जाते, और औरतें या तो भ्रष्ट करके छोड़ दी जातीं या गुलाम बनाकर फारस भेज दी जातीं। जब नादिरकी सेना कहर ढाकर आगे चली जाती तो देशके चोर-डाकू रहे-सहे कामको पूरा कर देते। इस प्रकार आग और तलवारकी वह आँधी घोर अराजकताको पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ती गई, यहाँ तक कि वह कर्नालके पास आ पहुँची, जहाँ मुहम्मदशाहने अपना मोर्चा जमाया था।

जब मुहम्मदशाहके दिमाग़में यह बात उतर गई कि नादिरशाह सचमुच चढ़ाई कर रहा है, तो उसने निज़ामुल्मुल्कको याद किया। वह उस समयके मुग़ल सरदारोंमें सबसे पुराना और प्रभावशाली व्यक्ति था। खानदौरानका हाल तो हम देख ही चुके हैं। वह बादशाहका सबसे अधिक मुँहचढ़ा था, परन्तु था बिल्कुल आराम-तलब और निकम्मा। उसने बादशाहकी ओरसे सब राजपूत राजाओंको सहायताके लिए आनेके सन्देश भेजे जिनके उत्तरमें टालमटूलकी चिट्ठियोंके सिवा कुछ न मिला। मुहम्मदशाहने एक दूत बाजीरावके पास भी भेजा जिसके उत्तरमें बाजीरावने कहला भेजा कि मराठोंकी सेना पड़ाव करती हुई बादशाहकी मददके लिए पहुँच जायगी। कर्नालमें बहादुरशाह उस सेनाकी प्रतीक्षा ही करता रहा, वह न पहुँची।

मुग़ल सेना कर्नाल तक पहुँचकर रुक गई। कुछ दिन पीछे मुहम्मदशाह भी दिल्लीसे रवाना हुआ और २६ जनवरी सन् १७३९ के दिन पानीपत पहुँच गया। वहाँ उसे मालूम हो गया कि नादिरशाहकी सेनाका अग्रभाग पंजाबके मध्यको पार कर चुका है, इसलिए निश्चय हुआ कि कर्नाल-पानीपतके मैदानमें ही मोर्चा-बन्दी करके शत्रुकी प्रतीक्षा की जाय। यह समाचार पहुँच चुका था कि अवधका सूबेदार सादतखाँ ३० हज़ार घुड़सवारोंके साथ तीव्र गतिसे सहायताके लिए आ रहा है। उसकी प्रतीक्षा करनी भी आवश्यक थी।

कर्नालमें जो शाही फौज इकट्ठी हुई थी उसका पूरा हिसाब लगाना कठिन है। नादिरके मंत्रीने अनुमान लगाया था कि मुग़ल बादशाहके झण्डेके नीचे लड़नेवाले सिपाहियोंकी संख्या कमसे कम ३ लाख थी। रुस्तमअलीने आँखों देखा वृत्तान्त लिखते हुए लिखा है कि शाही सेनाकी गिनती २ लाख थी। १५०० हाथी इससे अलग थे। उस समयके कुछ लेखकोंने सिपाहियोंकी संख्या ५ लाख तक बतलाई है। सब वर्णनोंको मिलाकर और अत्युक्तिकी गुंजायश रखकर मुग़ल राज्यके इतिहास-लेखक इर्विनका यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है कि मुग़ल सेनाके लड़ाकुओंकी संख्या ७५ हजारके लगभग थी, परन्तु बारबरदारी, हरम और सेनाकी संख्याको जोड़कर कैम्पमें विद्यमान सब मनुष्योंकी संख्या १ लाखसे कम नहीं थी।

नादिरशाहकी सेनामें सब मिलाकर लगभग १ लाख ६० हजार आदमी थे। इनमेंसे एक तृतीयांश नौकर थे। वह सभी घुड़सवार थे और हथियारबन्द थे,

इस कारण उन्हें भी सिपाही समझना चाहिए। ६००० के लगभग औरतें थीं। वे भी मर्दाना वेषमें रहती थीं और समय पड़नेपर लड़ाईके काम आ सकती थीं। शेष सब सिपाही थे जिन्हें योग्य सेनापति इच्छानुसार काममें ला सकता था।

दोनों सेनाओंका अनुपात देखकर तो प्रतीत होता है कि भारतीय सेना बहुत ज़बर्दस्त होगी, परन्तु उन दोनोंमें वही भेद था जो एक भेड़ोंके रेवड़ और गाड़ीमें जुते हुए बैलोंमें होता है। हजारका रेवड़ भी गाड़ीको आगे नहीं ले जा सकता, और केवल दो रस्सेसे बँधे हुए और वाहक द्वारा चलाये हुए बैल हजारों कोसकी मंज़िल तय कर सकते हैं। भारतीय सेना रेवड़के समान थी और फारसकी सेना जुते हुए बैलोंके समान।

फरवरीके प्रथम सप्ताहमें कर्नालके ऐतिहासिक मैदानमें दोनों सेनायें एक दूसरेके सामने आ गईं। महाभारतके युद्धसे लेकर १८ वीं शताब्दि तक कई बार इसी १०० मीलके घेरेमें सदा भारतके भाग्योंका निर्णय होता रहा है। कुरुक्षेत्र, पानीपत और कर्नाल एक ही घेरेमें हैं। भारतकी किस्मतका फैसला प्रायः इसी घेरेमें होता रहा है।

१३—मुग़ल सम्राट्का पराजय

कर्नाल पहुँचकर युद्धके लिए जो कुछ किया उससे, मुहम्मदशाहकी अयोग्यता और अनुभवशून्यता स्पष्टरूपसे प्रमाणित होती थी। मुग़ल सेनामें लगभग १० लाख आदमी थे। वहाँ बादशाह था, उसकी बेगमें थीं और उसके हज़ारों नौकर थे। उसके रहनेके लिए रत्नजटित खेमे लगे हुए थे, और महलोंका पूरा साजोसामान था। बादशाहके साथ जो वज़ीर थे वह भी छोटे बादशाह ही थे। उनके साथ भी वह सब सामान था जो युद्धक्षेत्रको हरमके रूपमें परिणत कर सके। हरेक सिपाहीके साथ नौकर था और हरेक नौकरके साथ थोड़ा-बहुत अय्याशीका सामान भी था।

बहादुरशाहका प्रधान सलाहकार निज़ाम था। निज़ाम युद्ध-क्षेत्रका पुराना खिलाड़ी था। कह नहीं सकते कि उसने क्या सोचकर बादशाहको यह सलाह दी कि वह अपनी सारी सेनाको मिट्टीकी दीवारोंमें बन्द कर ले। भारतकी सेना यमुनाकी नहरके किनारे किनारे कई मीलोंके घेरेमें डेरा डाले पड़ी थी। चारों

और मिट्टीकी दीवारें खड़ी कर दी गई थीं, ता कि दुश्मन अनजानेमें आक्रमण न कर सके।

उधर नादिरशाहके घुड़सवार बिल्कुल खुले, शहर और जंगलके स्वामी बने हुए, बढ़ रहे थे। उनके लिए सारा मैदान और रास्ते खुले हुए थे। वह जिधरसे चाहते आगे बढ़ सकते थे। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भसे ही भारतीय सेना दीवारोंमें घिरकर अपनी रक्षा करनेमें लग गई और नादिरशाहके घुड़सवार जिधरसे चाहते उनपर आक्रमण करने लगे।

भारतीय सेनाको अपने हाथियोंपर बड़ा भरोसा था। मुग़ल सेनापति समझते थे कि वह हाथियोंके आक्रमणसे घोड़ोंको भगा देंगे। यह वही भूल थी जो सिकन्दरकी सेनासे लड़ते समय पंजाबके राजा पोरसने की थी। उसने भी हाथियोंपर भरोसा किया था। बहादुरशाहने उसी भूलको दुहराया। नादिरशाहने हाथियोंका बढ़िया जवाब निकाल लिया था। दो दो ऊँटोंकी पीठपर ऐसे मचान बनाये गये थे जिनपर आतिशबाज़ीका सामान रक्खा गया था। उन ऊँटोंको हाथियोंकी भीड़को तितर-बितर करनेके लिए तैयार किया गया था। इस दावमें नादिरशाहको पूरी सफलता मिली। जहाँ हाथियोंके सामने बारूद जलाया गया वहाँ वह अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए भागे। जलते हुए बारूदको पीठपर लादे हुए ऊँटोंने उनका पीछा किया तो फिर हाथियोंद्वारा मुग़ल सेनाका दलन निश्चित ही हो गया।

दोनों सेनाओंमें एक और बड़ा भेद था। हिन्दुस्तानी सेनाओंको अपनी तलवार और तीरोंपर भरोसा था। वही उनके मुख्य हथियार थे। उधर फारसी सेनाके पास इन दोनों चीज़ोंके अतिरिक्त बन्दूकों और तोपोंका भी बढ़िया प्रबन्ध था। बन्दूकें और तोपें भारतीय सेनामें भी बहुत थीं, परन्तु वह बहुत घटिया नमूनेकी और सुस्त थीं। क़ज़लबाशोंके आग बरसानेवाले शस्त्र ऊँचे दर्जेके, तेज़ और हल्के थे।

इन सब भेदोंके अतिरिक्त, और इनसे बढ़कर, एक भेद ऐसा था जिसका कोई उत्तर ही नहीं था। भारतीय सेनाका नेतृत्व उन सेनापतियोंके हाथोंमें था जिनमें प्रतिभाका सर्वथा अभाव था और जो अपनी रही-सही शक्तिको एक दूसरेसे प्रतिस्पर्धा करनेमें ही लगा देते थे। सेनापति अयोग्य थे और उनका अगुआ मुहम्मदशाह युद्धकी अयोग्यतामें अपना सानी नहीं रखता था। दूसरी ओर नादिरशाह था जो अपने समयका सर्वोत्कृष्ट योद्धा तो था ही, संसारके उन

प्रमुख सेनापतियोंमें भी उसका नाम लिया जा सकता है जिनमें जीतनेकी प्रतिभा रहती है और जो पराजयकी रेतमेंसे विजयका तेल निकालनेकी शक्तिके साथ पैदा होते हैं।

नादिरशाहको यह जाननेमें देर न लगी कि हिन्दुस्तानी सेना कितनी है और किस तरह मैदानमें पड़ी हुई है। हिंदुस्तानी सेनाका समाचार-विभाग इतना सुस्त था कि उसे तब तक फ़ारसी सेनाके पास पहुँचनेका पता न चला जब तक नादिरशाहके घुड़सवार कर्नालसे तीन मीलकी दूरीपर न मँड़राने लगे। नादिरशाहको ऐसा सस्ता और सुस्त शत्रु भी कहीं न मिला। हिन्दुस्तानी सेनाके कैम्पसे कुछ लोग घोड़ेका चारा लेने शहरसे कुछ दूर निकल गये तो उनकी घुड़सवारोंसे मुठभेड़ हो गई। बेचारे घायल दशामें डेरेमें वापिस आये तो एकदम हाहाकार मच गया। शेरके आनेपर गाय-भैंसोंके रेवड़की जो हालत हो जाती है वही हिन्दुस्तानी सेनाकी हो गई। 'नादिरशाह आ गया,' 'नादिरशाह आ गया।' का कँपानेवाला नाद चारों ओर गूँजने लगा। खबर बादशाह तक भी पहुँची और उसने सब वज़ीरोंको बुलाकर सलाह-मश्विरा करना शुरू किया।

सब वज़ीर अपनी अपनी राय दे रहे थे और अगले दिन नियमपूर्वक व्यूह-रचना करके युद्ध प्रारम्भ करनेका मन्सूबा बाँधा जा रहा था कि इतनेमें हिन्दुस्तानी सेनाके आश्चर्यचकित सेनापतियोंको समाचार मिला कि नादिरशाहके सिपाही शाही कैम्पको तरह देकर आगे निकल गये हैं और कर्नाल और दिल्लीके बीचमें पानीपतके पास अवधके सूबेदार सादतखाँके माल-असबाबपर टूट पड़े हैं। सादतखाँ पहली रातको कई हजार सेनाके साथ शाही डेरेपर पहुँचा था। उसका सामान पीछे आ रहा था। फारसी सिपाही उसपर टूट पड़े और हर तरहके कीमती सामानसे लदे हुए ५०० ऊँटोंको पकड़ ले गये।

इस खबरको सुनते ही सादतखाँ तलवार लेकर खड़ा हो गया और उसने बादशाहसे शत्रुपर आक्रमण करनेकी आज्ञा माँगी। बादशाह और उसके साथी अभी लड़ाईके लिए तैयार नहीं थे। दो पहर होनेको था, लड़ाईका कार्यक्रम तय नहीं हुआ था! ऐसे समय बेढंगे तरीकेपर युद्ध कैसे लड़ा जाय? पर सादतखाँको कौन समझावे? वह उबला पड़ता था। उसे निश्चय था कि जहाँ वह हाथीपर चढ़कर मैदानमें निकला कि नादिरशाहके पाँव उखड़ जायँगे। उसने एक न

मानी और अपने थके-माँदे सिपाहियोंको हुक्म भेज दिया कि तैयार होकर एकदम युद्ध-क्षेत्रमें बढ़ जाओ।

बादशाह और निज़ाम ऐसी जल्दीमें युद्ध करना नहीं चाहते थे, परन्तु उनकी कुछ न चली। लड़ाईका बिगुल बज गया। सादतखाँके मैदानमें निकलनेका समाचार पाकर उसका दोस्त खानदौरान भी तत्काल हाथीपर सवार होकर फारसी सेनाकी ओर रवाना हो गया। तब तो बादशाह और निज़ामको भी हाथियोंपर सवार होना ही पड़ा। वह भी अपनी सेनाओंको लेकर आगे बढ़ गये और नहरके किनारे मोर्चा जमाकर खड़े हो गये।

नादिरशाहको मनचाहा शिकार मिला। वह तो इस अवसरकी प्रतीक्षा ही कर रहा था कि हिन्दुस्तानी सेना अपने डेरेसे बाहर मैदानमें आये और खुला युद्ध हो। हिन्दुस्तानी सेनाको आगे बढ़ते देखकर उसने अपनी सेनाकी व्यूह-रचना की और स्वयं पूरा लड़ाकू वेष और शाही ताज पहिन कर १००० चुने हुए घुड़सवारोंके साथ समर-भूमिमें उतर आया।

युद्धका श्रीगणेश सादतखाँने किया। वह इतने जोशमें था कि किसी औरकी प्रतीक्षा किये बिना ही, तीन चार हज़ार सिपाहियोंको साथ लेकर, मैदानमें उतर आया। नादिरशाहने २ हज़ार सिपाहियोंका एक दस्ता उससे लड़नेके लिए रवाना किया। वह दस्ता सादतखाँके सामने आया और थोड़ी-सी लड़ाई करनेके पश्चात् पीठ दिखाकर भागने लगा। सादतखाँको विश्वास हो गया कि फारसी लोगोंकी हेकड़ी ही हेकड़ी है, उनमें दम कुछ भी नहीं है। उसने बादशाहके पास सन्देश भेज दिया कि नादिरकी सेना भाग रही है, जल्दी कुमुक भेजो तो उसका सर्वनाश कर दिया जाय। यह सन्देश भेजकर उसने उत्तरकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता न समझी और भागते शत्रुका वायु-वेगसे पीछा किया।

लगभग दो मीलतक शत्रु भागता गया। सफदरजंग भी उसके कदमोंपर था। अब वह ऐसी जगह पहुँच गया था जहाँ मुग़लोंकी तोप मार नहीं कर सकती थी और उन्हें सहायता भी आसानीसे नहीं मिल सकती थी। वहाँ पहुँचना था कि नादिरकी भागनेवाली सेना दायें बायें हो गई और न जाने किस जगहसे निकलकर फारसी निशानचियोंने हिन्दुस्तानी फौजपर दनादन गोलियाँ दाग़नी शुरू कर दीं। दायें, बायें और सामने, तीनों ओरसे सादतखाँकी फौजपर मार पड़ने लगी। वह लड़ाई न रही फौजका कत्ले

आम-सा हो गया। थोड़ी ही देरमें सादतख़ाँकी सेनाका वीरतम भाग नष्ट-भ्रष्ट हो गया। सादतख़ाँ कुछ देरतक तो अड़ा रहा, परन्तु अन्तमें उसे लाचार होकर मैदान छोड़ना पड़ा।

स्वयं सादतख़ाँकी वीरतामें कोई सन्देह नहीं था। जब वह चारों ओरसे घिर गया और शत्रु वारपर वार करने लगे, तो देरतक वह अकेला ही तीरोंकी बौछारसे उनके प्रहारोंको रोकता रहा। शत्रुके सेनापतिने उसे ललकार कर कहा कि "क्या तू पागल हो गया है, तू किसके लिए लड़ रहा है? तेरा किसपर सहारा है?" तो भी सादतख़ाँका धनुष्य शान्त नहीं हुआ और हौदेपरसे तीर बरसते रहे। अन्तमें विरोधी नवयुवक सेनापतिने अपना बर्छा जमीनमें गाड़ दिया, घोड़ेकी लगाम उसके गलेपर फेंक दी और हौदेकी रस्सीको पकड़कर हाथीपर चढ़ गया। सादतख़ाँने तब लड़ते रहना बेकार समझा और आत्म-समर्पण कर दिया।

ख़ानदौरानकी भी यही गति हुई। सादतख़ाँका सन्देश पहुँचनेपर मुहम्मदशाहने उसे आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। उसे भी नादिरशाहने सादतख़ाँकी तरह प्रलोभन देकर दूर तक खेंच लिया और अकेला करके कुचल डाला। ख़ानदौरानकी सजीली फौज थोड़े ही समयमें तीर और गोलीका शिकार बनकर पिघल गई। ख़ानदौरान मारा गया।

दोपहर बाद बादशाह और निज़ाम बड़ी सजधजके साथ डेरेमेंसे निकले और उन्होंने कई हजार सिपाहियों और तोपख़ानेके साथ नहरके किनारे जाकर छावनी डाल दी। वह लोग दिनभर लड़ाईके लिए तैयार खड़े रहे, उनसे कुछ ही दूर सादतख़ाँ और ख़ानदौरानकी फौजें नष्ट होती रहीं, परन्तु मुहम्मदशाहमें इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि उनकी रक्षाके लिए चार कदम आगे बढ़ता। इस आशासे कि नादिरशाह आक्रमण करेगा, बादशाह किलेबन्दीसे सुरक्षित होकर प्रतीक्षा करता रहा और नादिरशाहने उसकी सेनाओं और सेनापतियोंको नष्ट करके मुग़ल बादशाहके ताजको धूलमें मिला दिया।

लगभग तीन घण्टेमें सारी कहानी ख़त्म हो गई। हिन्दुस्तानी सेनाके लगभग २० हजार आदमी मारे गये जिनमेंसे कमसे कम १०० सरदार थे। फारसी सेनाके कोई ढाई हज़ार आदमी मारे गये। दोनों ओरके घायलोंकी संख्या मृतोंकी संख्यासे लगभग दुगनी होगी। शाही सेनाका जो माल फारसी

सेनाके हाथ लगा, उसका हिसाब लगाना कठिन है। पूरी लूट हुई। जिसके हाथ जो कुछ लगा, ले भागा।

इस सारे नाश और लूट-मारके दृश्यमें सबसे अधिक भयानक हँसीके योग्य चीज़ यह थी कि बाबर और अकबरका वंशज अपने ताज और तख़्तकी बरबादीको टुकर टुकर देखता रहा, और उसकी रक्षाके लिए एक बार भी हाथ न उठा सका।

१४–नादिरशाहका कैदी

सादतखाँ युद्धमें नादिरशाहका कैदी हो गया था। छावनीमें आकर नादिरने सादतखाँको बुलाया और सलाह की। हिन्दुस्तानी सेनाके सम्बन्धमें उसने बहुत रद्दी राय प्रकट करते हुए कहा कि ' वह सेना क्या थी, वह तो एक फकीरोंकी भीड़ थी, और उसका सेनापति ख़ानदौरान केवल मरना जानता था, लड़ना नहीं। " सादतखाँसे उसने यह पूछा कि मुग़ल बादशाहसे अधिकसे अधिक तावान कैसे वसूल हो सकता है? सादतखाँने सलाह दी कि मुहम्मद शाह निज़ामके वशमें है। यदि बादशाहसे कोई फैसला करना हो तो निज़ामसे बातचीत करनी चाहिए।

नादिरशाहने सादतखाँकी सलाह स्वीकार करके शाही कैम्पमें एक दूत भेजा जिसके हाथ एक कुरानकी कापीके साथ इस आशयका पत्र रवाना किया कि हम मुग़ल बादशाहको कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहते क्योंकि हम और वह दोनों तुर्क वंशमेंसे हैं। हम तो रुपया चाहते हैं। रुपया मिलनेपर वापिस चले जायँगे। शर्तें तय करनेके लिए नादिरशाहने निज़ामको बुला भेजा था।

पहले तो मुहम्मदशाहको घबराहट हुई कि कहीं नादिरशाहसे धोखा न मिले, परन्तु, अन्तमें दूसरा कोई उपाय न होनेके कारण उसे सर्वाधिकार देकर शत्रुके कैम्पमें भेज देना पड़ा। नादिरशाहने निज़ामका अच्छा स्वागत किया। बातचीतमें उसने निज़ामसे पूछा, " यह आश्चर्यकी बात है कि जब मुहम्मदशाहके पक्षमें तुम्हारे जैसे सरदार विद्यमान हैं, तो नंगे मराठे दिल्लीकी दीवारतक आकर लूटमार मचायें और ख़िराज ले जायें। "

निज़ामने उत्तर दिया, "जबसे नये नये सरदार पैदा हो गये, बादशाह मनमानी करने लगा। मेरी सलाह नहीं मानी गई, तब तंग आकर मैंने दिल्लीको छोड़कर दक्षिणमें डेरा जमाया।"

नादिरशाहने फिर पूछा कि "इतने दिनों तक मेरे ख़तोंके उत्तर क्यों नहीं दिये गये?" निज़ामने उत्तर दिया कि "फर्रुख़सियरके मरनेके बाद राज्यका सब कारोबार सरदारोंके आपसके झगड़ेकी वजहसे नष्ट-भ्रष्ट हो गया, इस कारण वज़ीर लोगोंने हुजूरके पत्रोंतकका जवाब नहीं दिया।"

बहुत देर तक बातचीत हुई। अन्तमें निश्चय हुआ कि यदि दिल्लीकी हुकूमत ५० लाख तावान देनेका निम्नलिखित प्रकारसे वायदा कर ले तो फारसी फौज अपने देशको वापिस चली जायगी। सब ५० लाख रुपया लिया जायगा, जिसमेंसे २० लाख वहीं मिल जाना चाहिए। १० लाख लाहौर पहुँचनेपर मिल जाय, १० लाख अटकमें और शेष १० लाख काबुलमें पहुँच जाना चाहिए।

सस्तेमें ही छूट गये, इस भावनाके साथ निज़ाम नादिरकी छावनीसे रवाना हुआ। वह नादिरकी ओरसे बादशाहके नाम निमंत्रण भी लेता गया। अगले दिन बादशाह नादिरके डेरेपर आ गया। नादिरने उसका आदर-सत्कारसे स्वागत किया, साथ खाना खिलाया और शिष्टाचारकी बातोंके पश्चात् वापिस कर दिया।

ऊपरसे देखनेमें यह सब सुलहकी बातें चल रहीं थीं, परन्तु अन्दर दूसरी ही खिचड़ी पक रही थी। सादतखाँ घरका भेदी बनकर लंकाको ढानेकी योजना कर रहा था। उसने नादिरको समझाया कि ५० लाख रुपया तो कोई चीज़ नहीं है, यदि मज़बूतीसे माँग पेश की जाय तो मुहम्मदशाहसे २० करोड़ नक़द और माल वसूल किया जा सकता है। कुरानको बीचमें रखकर कसम खा चुका था कि कोई धोखा न होगा, तो भी नादिर २० करोड़के लोभको न रोक सका। उसके दिलमें पाप आ गया और जब अगले दिन निज़ाम बातचीत करनेके लिए आया तो वह नादिरशाहके हुक्मसे बन्दी बना लिया गया। उसके सामने शर्त पेश की गई कि मुहम्मदशाहकी ओरसे २० करोड़ रुपया और २० हजार सिपाही नादिरशाहकी भेंट होने चाहिए। निज़ाम इस माँगको सुनकर काँप उठा। उसने नादिरशाहको विश्वास दिलाना चाहा कि जबसे चग़ताई वंशका राज्य हिन्दुस्तानमें स्थापित हुआ है, कभी २० करोड़ रुपया खज़ानेमें जमा

नहीं हुआ। शाहजहाँने बड़ा यत्न किया तो १५ करोड़ तक जुड़ सके और वह भी औरंगज़ेबके दक्षिणी युद्धोंमें व्यय हो गये। परन्तु नादिरको विश्वास हो गया था कि २० करोड़की रक़म दिल्लीपतिकी शक्तिसे बाहर नहीं है। उसने निज़ामपर ज़ोर दिया कि इन नई शर्तोंपर विचार करनेके लिए मुहम्मदशाहको फारसी डेरेपर बुलानेके लिए चिट्ठी लिखे। निज़ाम बहुत छटपटाया परन्तु जंगली विजेताके सामने उसकी एक न चली और उसने अपने बादशाहको नादिरकी छावनीमें आनेके लिए पत्र लिख दिया।

उधर हिन्दुस्तानी सेनाकी हालत दिनोंदिन बिगड़ती जा रही थी। नादिरके सिपाही चारों ओर फैल गये थे। उन्होंने हिन्दुस्तानी सेनाके पास भोजन तथा अन्य सामग्री पहुँचनेके सब रास्ते बन्द कर दिये थे। पाँच-छह दिनोंतक सिपाहियोंको फ़ाक़ा ही करना पड़ा। एक सेर अनाज छह-सात रुपयेमें भी नहीं मिल सकता था। घीका बिलकुल अभाव था। चारेके बिना जानवर तड़प रहे थे। *मुहम्मदशाह और उसकी सेना सर्वथा नादिरशाहके चुंगलमें थी। उसे जिलाना* या मारना नादिरशाहकी मर्ज़ीपर था।

ऐसी दशामें मुहम्मदशाहके पास सिवाय इसके कि वह नादिरशाहकी आज्ञा मानकर उसके डेरेपर चला जाता, दूसरा कोई रास्ता नहीं था। डरता-काँपता फारसी सेनाकी छावनीमें पहुँचा, तो बन्दी कर लिया गया। जो सरदार उसके साथ गये थे, वह भी रोक लिये गये। अगले दिन मुहम्मदशाह और उसके सरदारोंके परिवार भी नादिरशाहके डेरेमें पहुँचा दिये गये। इस प्रकार मुग़ल बादशाह अपने सलाह-कारों और सहायकोंके साथ फारसके बादशाहका कैदी बन गया। जो लोग दुश्मनके कैदी नहीं बने थे उनके सम्बन्धमें हिन्दुस्तानी सेनाकी छावनीमें, ढिंढोरा पीट दिया गया कि वह जैसा चाहें करें, कर्नालमें ही रहें, दिल्ली चले जायँ या अपने अपने घरोंका रास्ता लें।

उन लोगोंकी जो दुर्दशा हुई उसका अनुमान लगाया जा सकता है। चारों ओर नादिरशाहके क़ज़लबाश (फारसी सिपाही) फैले हुए थे। वह खुली लूट-मार कर रहे थे। यदि कोई उनसे बच जाता तो अड़ोस-पड़ोसके डाकू लुटेरोंसे जान छुड़ाना मुश्किल था। चारों ओर अराजकताका राज्य हो रहा था। उससे जो जान बचाकर निकल गया, वह बहुत ही सौभाग्यशाली था।

१५—नादिरशाह दिल्लीमें

जमे हुए संस्कार बड़ी कठिनतासे मिटते हैं। दिल्लीवालोंके हृदयोंपर भी मुग़लोंके गौरवकी बड़ी गहरी छाप थी। उन्हें निश्चय था कि कोई शत्रु दूर-दूरसे चाहे कितना ही उपद्रव करे, पर राजधानीकी दीवारें अभेद्य हैं और बादशाह अजेय है। इस कारण जब उन्होंने सुनहरी हौदोंसे सजे हाथियों, रत्नजटित मोतियोंसे चमचमाते साजवाले घोड़ों और बहुमूल्य पालकियोंमें बैठे हुए सरदारोंको हज़ारों सिपाहियोंके साथ दिल्लीके द्वारसे कर्नालकी ओर रवाना होते देखा, और फिर कुछ दिन पीछे मालूम हुआ कि स्वयं बादशाह, उसका परिवार और उसकी पूरा लश्कर नादिरशाहको परास्त करनेके लिए प्रस्थान कर गया है तो वह निश्चिन्त हो गये। उन्होंने समझ लिया कि दुश्मन हार गया और विजयका उत्सव मनानेका समय पास आ रहा है।

परन्तु, धीरे धीरे कर्नालसे भागे हुए लोग आकर भयानक समाचार सुनाने लगे। पहले पराजयकी ख़बर मिली, फिर बादशाहके बन्दी होनेका समाचार पहुँचा। सारे शहरमें सन्नाटा छा गया, नगरके और अड़ोस-पड़ोसके बदमाश लोग उभर आये और यदि शहरका बूढ़ा कोतवाल चौकन्ना होकर स्थितिको न सँभालता तो शायद नादिरशाहके आनेसे पहले ही दिल्ली लुट जाती। दिल्लीके जल-वायुका असर हो, या साम्राज्यका केन्द्र होनेके कारण सुरक्षित होनेकी भावनाका परिणाम हो, इसमें सन्देह नहीं कि दिल्ली शहरके निवासी सदा लुटनेके लिए तैयार रहते हैं। उनमें प्रतिरोधकी शक्तिका सदा ही अभाव रहा है। यह तो बहुत समझो कि कोतवाल हाज़ी फ़ौलादख़ाँ बहुत चतुर और वीर आदमी था। उसने शहरको लूट-मारसे बचाये रक्खा। फिर भी शहरकी बस्तियोंमें तो उपद्रव होने ही लगे थे।

नादिरशाहने अपने विश्वासपात्र सेनापति तहमास्पख़ाँको, सादतख़ाँके साथ, दिल्लीका कब्ज़ा लेनेके लिए बादशाहको कैद करते ही रवाना कर दिया था। सादतख़ाँ मुहम्मदशाहका प्रतिनिधि बनकर गया था ता कि सूबेदारको लड़ाई-झगड़ेसे रोके। सूबेदार लुतफ़ुल्लाख़ाँ शहरके चारों ओर खाइयाँ खोदकर लड़नेकी योजना कर रहा था जब उसे सादतख़ाँका पत्र मिला। सादतख़ाँने बादशाहकी ओरसे गवर्नरको लिखा था कि लड़ाई व्यर्थ है, किलेकी चाबी तहमास्पख़ाँके अर्पण कर दी जाय। लुतफ़ुल्लाख़ाँने आज्ञाका पालन किया और शान्तिपूर्वक

फारसकी सेनाके लिए दिल्लीके द्वार खोल दिये। २८ फरवरी १७३९ के दिन लाल किलेपर फारसका झण्डा फहराने लगा।

आठ दिन पीछे मुहम्मदशाहको लिये हुए नादिरशाह भी दिल्लीके उत्तरमें फैले हुए शालेमार बागमें आ पहुँचा। ७ मार्चको बागमें ही डेरा जमाया गया। मुहम्मदशाह कुछेक सरदारोंके साथ चुपचाप किलेमें चला गया ताकि विजेताके स्वागतकी तैयारी करे। अगले दिन जब पूरे ठाठबाटके साथ सफेद घोड़ेपर सवार होकर नादिरशाह भारतकी राजधानीमें प्रविष्ट हुआ तब मुग़ल बादशाहकी शाही उसके पैरोंमें लोट रही थी। बाबर और अकबरके वंशजने अपने विजेताके स्वागतकी खूब तैयारी की थी। बहुमूल्य सुनहले गालीचे शाही गोदाममेंसे निकालकर बिछाये गये थे और बादशाह झुककर सलाम कर रहा था जब फारसके बादशाहने घोड़ेपरसे उतरकर भूमिपर पाँव रक्खा। नादिरशाहको बादशाहके महलोंमें उतारा गया और स्वयं बादशाहका बिस्तर डयोढ़ीपर डाला गया। अगले दिन जब दरबार लगा तो नादिरशाह तख्ते ताऊसपर बैठा था और बादशाह उसकी अधीन प्रजाकी भाँति नीचे आसनपर। बाबरने जिस स्वाधीन मुग़ल राज्यकी स्थापना की थी, हम कह सकते हैं कि, नादिरकी तलवारने उसे नष्ट करके कर्नालकी मिट्टीमें गाड़ दिया था। मुग़ल साम्राज्य मर चुका था, केवल उसका अस्थि-पंजर शेष था।

सुलहकी मुख्य शर्त यह थी कि मुहम्मदशाह २० करोड़ रुपया भेंट चढ़ा दे तो उसका ताज वापिस मिल सकता है। इसी समझौतेपर नादिरशाह दिल्ली आया था। जब तक हर्जानेका रुपया नहीं मिला, और जब तक ताज मुहम्मदशाहको वापिस नहीं मिला, तब तक नादिरशाह ही हिन्दुस्तानका बादशाह है, यह सिद्ध करनेके लिए ईदके दिन मस्जिदोंमें नादिरशाहके नामका खुतबा पढ़ा गया। अब मुहम्मदशाहके लिए आवश्यक था कि वह अपनी गद्दीको वापिस ले, इस कारण ख़ज़ानेसे और शहरसे तावानकी वसूली आरम्भ की गई।

निज़ाम और सफदरजंगने इस युद्धमें और युद्धके पीछे जो व्यवहार किया, उसकी झलक इस इतिहासमें दी जा चुकी है। निज़ामने साम्राज्यकी रक्षाके लिए न स्वयं तलवार उठाई और न अपने मालिकको उठाने दी। सफदरजंगने नादिरशाहकी लोभवृत्तिको भड़का कर हर्जानेकी रकमको ५० लाखसे २० करोड़ तक पहुँचा दिया। इसके जवाबमें दोनों रईस क्या इनाम चाहते थे यह तो

मालूम नहीं, परन्तु उन्हें मिला वही इनाम जो उचित था। नादिरशाहने दिल्ली पहुँचकर उन दोनोंको अपने पास बुलाया और अपमानपूर्वक कहा—

" मैं तुम दोनोंपर लानत भेजता हूँ, और मेरा यह क्रोध तुम्हारे लिए खुदाके कहरकी निशानी है। "

यह कहकर उसने दोनों विश्वासघातियोंकी दाढ़ियोंपर थूक दिया और उन्हें बाहर निकलवा दिया।

कहते हैं कि दोनों अपमानित रईसोंने बाहिर जाकर निश्चय किया कि इतनी बेइज़्ज़तीके पीछे जीना असम्भव है। इस कारण दोनोंको ज़हर खाकर प्राण छोड़ देने चाहिए। निज़ामने पहल की। उसने घर जाकर ज़हर पी लिया और धड़ामसे ज़मीनपर गिर पड़ा। सादतख़ाँका दूत यह सब-कुछ देख रहा था। उसने अपने मालिकको सूचना दी कि निज़ाम मर गया। तब सादतख़ाँको पीछे रह जानेपर बड़ी ग्लानि हुई और उसने तेज ज़हरकी खुराक पीकर तत्काल ही आत्म-हत्या कर ली। उसका मरना था कि न जाने कैसे निज़ामके प्राण वापिस आ गये, और वह उठ खड़ा हुआ! कहते हैं, निज़ाम जीवन-भर इस बातको साभिमान सुनाया करता था कि उसने खुरासानके भोंदूको कैसा गधा बनाया।

नादिरशाह दो महीने तक दिल्लीमें रहा। दिल्लीके मुसलमान विशेषकर दरबारके आदमी शिष्टाचार और तकल्लुफके अवतार थे। उनके रहन-सहन, खान-पान और चाल-ढालमें एक खास तरहकी नफ़ासत आ गई थी। नादिरशाहके जंगली रँग-ढँग उन्हें कहाँ रुच सकते थे? उन दिनोंकी कई रवायतें मशहूर हैं जो दोनों ओरकी मानसिक दशाको सूचित करती हैं।

मार्चका महीना था। भारतमें उन दिनों गर्मी और सर्दीकी सन्धिका समय होता है। शीतकी सवारी जा रही होती है और गर्मीकी सवारीका शुभागमन होता है। नादिरशाह एक अक्खड़ सिपाही था। अपने उसी मोटे और बड़े बड़े बालवाले चमनके कोटको पहिनकर तख्ते ताऊसपर बैठा हुआ था, और उसके सामने तंज़ेब और मलमलके नर्म कपड़ोंसे शरीरको ढके हुए मुहम्मदशाह बैठा था। मुहम्मदशाहने बेतकुल्लफ़ीसे पूछा कि—

" ज़नाब, मुझे यह देखकर ताज्जुब होता है कि इस गर्मीमें भी आप इतने भारी कपड़े पहिने हुए हैं! "

नादिरशाहने व्यंग्यपूर्ण हँसीके साथ उत्तर दिया "इन मोटे कपड़ोंकी ही बरकत है कि मैं फारससे यहाँ आकर तख़्तपर बैठा हुआ हूँ, और इस तंज़ेबकी ही मेहरबानी है कि तुम अपने क़िलेमें भी नीचे बैठे हुए हो।"

एक दिन नादिरशाहके पेटमें कुछ कष्ट हुआ। उसने कोई दवा माँगी तो दिल्लीके एक मशहूर हकीमने गुलकन्द पेश किया। वह नादिरशाहको बहुत स्वादु प्रतीत हुआ। उसने कहा कि यह तो बहुत स्वादु हलवा है, और लाओ। कहते हैं, नादिरशाह गुलकन्दके चार मर्तबान खाली कर गया।

उधर ख़ज़ानेसे, रईसोंसे और दिल्लीके दूकानदारोंसे जवाहिरात और नग़दीकी वसूली जारी थी। मुहम्मदशाहके आदमी पूरा ज़ोर लगा रहे थे कि यथासम्भव शीघ्र २० करोड़की रकम पूरी कर दी जाय तो बला सिरसे उतरे।

१६—क़त्ले आम

अब हम उस घटनापर आते हैं जिसकी भीषणताकी उपमा संसारमें मिलनी कठिन है। दिल्ली और नादिरशाह दोनों ही उस दुर्घटनाके कारण इतिहासके पृष्ठोंमें एक दूसरेके साथ अमररूपसे नत्थी हो गये हैं।

काण्डका प्रारम्भ कैसे हुआ, यह कहना कठिन है। नादिरको किलेमें आये एक ही दिन हुआ था। फारसी सिपाही शहरमें चारों ओर फैल गये थे। सम्भवतः वह हिन्दुस्तानियोंसे अक्खड़पनका व्यवहार करते होंगे। उनके लिए हिन्दुस्तानके हिन्दू-मुसलमान सभी एक श्रेणीके थे। कर्नालकी लड़ाईमें हिदुस्तानी सेना जिस भद्दे ढंगपर हारी थी, उसके कारण फारसी सिपाही हिन्दुस्तानियोंको बिल्कुल ज़लील और नपुंसक समझने लगे थे। फारसियोंके व्यवहारमें हिन्दुस्तानियोंके प्रति एक उद्धत भाव आ गया था जिसकी प्रतिक्रिया हिन्दुस्तानियोंके हृदयोंमें यह हुई कि वह फारसियोंकी सूरत देखकर जल-भुन रहे थे।

इसी बीचमें फारसी सेनापति शाह तहमास्पने कुछ सिपाहियोंको इस निमित्तसे पहाड़गंज भेजा कि वहाँके दूकानदारोंको निश्चित दामोंपर अनाज बेचनेके लिए बाधित करें। सिपाहियोंने कुछ सख्तीसे काम लिया जिसपर दूकानदारोंसे मार-पीट हो गई। जनताने दूकानदारोंका साथ दिया, यहाँ तक कि कई प्रतिष्ठित नागरिक मैदानमें आ गये, और फारसी सिपाहियोंपर आक्रमण कर दिया। बहुतसे फारसी

मारे गये। नादिरशाह सर्वथा निश्चिन्त था। जब बादशाह और उसका क़िला कब्ज़ेमें है, तो शहरके विद्रोहकी उसे क्या चिन्ता हो सकती थी? फारसी सिपाही शहर-भरमें फैले हुए थे। जो उपद्रव पहाड़गंजसे शुरू हुआ, वह मानो हवाके झोंकेके साथ शहर-भरमें फैल गया। जनता उठ खड़ी हुई और जहाँ फारसी सिपाहीको देखा, वहीं काट डाला। ऐसे समय अफवाहें पानीमें पड़े तेलकी तरह फैला करती हैं। अफवाह फैल गई कि नादिरशाह मुहम्मदशाहसे मिलने जा रहा था, तब एक पहरेदार औरतने उसे मार डाला है और बादशाहने एलान कर दिया है कि सब फारसी सिपाहियोंकी हत्या कर डाली जाय। मुग़ल शासन टूट चुका था और फारसी शासन स्थापित नहीं हुआ था। दिल्ली अराजक हो रही थी। कोई स्थितिको सँभाल न सका और यह अन्धड़ रात-भर बड़े ज़ोरसे चलता रहा।

रातके पहले भागमें नादिरशाहके पास यह समाचार पहुँचा तो पहले उसे विश्वास न हुआ कि शहरमें उपद्रव हो गया है। उसने ठीक समाचार जाननेके लिए जो दूत भेजे वह किलेसे निकलते ही काट डाले गये। ज्यों ज्यों रात बढ़ती गई, बुरी खबरोंका ताँता भी तेज़ होता गया। अन्तको कुछ सुनकर और कुछ अनुमानसे नादिरशाहको असली हालतका पता लग गया। अकस्मात् वह होलीके दिन थे। हिन्दू जनता भी खेल-कूदमें मस्त और आपेसे बाहर हो रही थी। नादिरशाहको समाचार मिला कि शहरके हिन्दू और मुसलमान मिलकर फारसी सिपाहियोंके संहारमें लगे हुए हैं। रात्रिके अन्धकारमें सारे शहरसे लड़ना असम्भव जानकर नादिरशाहने हुक्म दिया कि सब फारसी सिपाही अपने ठिकानोंपर इकट्ठे हो जायँ और रातभर वहीं रहें। छावनियोंके चारों ओर रात-भर सावधान पहरा रहा जिससे इक्के दुक्के फारसी सिपाहियोंपर जो आक्रमण हो रहे थे, वह बन्द हो गये।

परन्तु इससे पूर्व हज़ारों फारसी सिपाही मारे जा चुके थे। उस समयके लेखकोंकी सम्मतियाँ भिन्न भिन्न हैं। कोई ७ हजार सिपाहियोंके कत्लकी बात कहता है तो कोई ३ हजारकी। सचाई सम्भवतः दोनोंके मध्यमें होगी। चार-पाँच हजार फारसी सिपाही मारे गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

दूसरे दिन, दिन चढ़नेपर, नादिरशाह पूरी जंगी तैयारीके साथ किलेसे निकला। उसके माथेपर त्योरी थी, होठ दृढ़ निश्चयसे मिले हुए थे और

शरीर कवचसे ढँका हुआ था। उस समय भी शहरके कई हिस्सोंसे उपद्रवकी ख़बरें आ रही थीं। चाँदनी चौकमें कोतवालीके पास रोशनुद्दौलाकी सुनहरी मस्जिद है जिसका सेहन बाज़ारकी ओर खुला हुआ है। नादिरशाहने वहाँ पहुँचकर म्यानसे अपनी तलवार निकालकर सामने रख दी और क़त्ले आमकी आज्ञा दे दी। नंगी तलवारका यह आशय था कि जबतक तलवार म्यानमें न जाये तबतक हत्याका दौर जारी रहे।

प्रातःकाल ९ बजे संहारका काम प्रारम्भ हुआ और दिनके २ बजेतक जारी रहा। सबसे अधिक ज़ोर चाँदनी चौक, दरीबा और पहाड़गंजमें रहा। फारसी सिपाही क्रोधसे अन्धे व्याघ्रोंकी तरह निहत्थी प्रजापर टूट पड़े। जो सामने आया तलवारके घाट उतार दिया गया, न बूढ़ेका लिहाज़ किया गया और न बच्चोंपर दया दिखाई गई। औरतोंपर तो दुहरी आफत थी। उनकी आबरू उतारी गई और फिर जान ले ली गई, या गुलाम बना दिया गया। डर यहाँतक व्याप्त हो गया कि अनेक स्त्रियोंने अपमानसे बचनेके लिए कुएँमें छलाँग मार ली, या अपने मर्दोंके हाथसे मरना पसन्द किया। पुरुषका बेचना ता असम्भव ही था, जब समय समीप आया तो उन्होंने अपने हाथोंसे छुरे अपनी पत्नियों, बहनों या माताओंकी छातीमें घोंप दिये, और फिर स्वयं परलोकके लिए तैयार हो गये।

लूटका तो अनुमान लगाया जा सकता है। किलेसे लेकर पुरानी ईदगाह तकके इलाकेपर फारसी टिड्डी-दल टूटा था और यही शहरका सबसे अधिक मालदार हिस्सा था। सब-कुछ लूटा लिया गया, और अन्तमें क्रोधको शान्त करनेके लिए नादिरके जंगली सिपाहियोंने घरोंमें आग लगा दी। जिन मकानोंमें अधिक धनकी सम्भावना थी उनके फर्श उखाड़ दिये गये और दीवारें गिरा दी गईं। जब शेष कुछ नहीं रहा तो दियासिलाई दिखा दी। जो लोग उस इलाकेमें रहते थे और भाग्यसे जीवित रह गये, उनका बयान था कि जलते हुए घरों, सिसकते हुए बच्चों, चीख़ती हुई औरतों और साँस तोड़ते हुए पुरुषोंका वह शब्द कल्पनातीत था। वह दृश्य प्रलयसे भी भयंकर होगा।

यह समाचार मुहम्मदशाहके कानोंपर भी पहुँचा। पराजय इतनी बड़ी लानत है कि वह मनुष्यको प्रार्थना करने योग्य भी नहीं छोड़ती। मुहम्मदशाहकी प्रजा उसके रहते दावानलमें झोंकी जा रही थी, और वह लाचार था। आखिर उससे न रहा गया और उसने निज़ाम और वज़ीरको नादिरके पास भेजा। मुहम्मदशाहने

अपनी प्रजाकी ओरसे क्षमा प्रार्थना करते हुए नादिरसे क़त्ले आम बन्द कर देनेकी प्रार्थना की थी। सुनते हैं बूढ़े कोतवालने गर्दनमें कपड़ा डालकर विजेताके सामने सिर झुकाते हुए अपनी सफेद दाढ़ीके नामपर क्षमाकी याचना की थी। तब कहीं नादिरशाहका गुस्सा शान्त हुआ और उसने तलवार उठाकर म्यानमें डाल ली। हत्याकाण्डको बन्द करनेका हुक्म लेकर ढोलची लोग चारों ओर निकल गये और थोड़ी ही देरमें सिपाहियोंने भी तलवारें म्यानोंमें डाल लीं। देखनेवालोंने हत्याओंकी संख्याके अलग अलग हिसाब दिये हैं, वह ८ हजारसे ३० हजार तकके बीचमें है। कई लेखकोंने मृतोंकी संख्या एक लाख तक बतलाई है। बस्ती इतनी घनी थी, फारसी सिपाही इतने उत्तेजित थे और दिल्लीकी प्रजा ऐसी असमर्थ थी कि बड़ीसे बड़ी संख्या असम्भव नहीं है।

क़त्ले आम तो बन्द हो गया पर लाशोंको कौन सँभाले? कई दिनोंतक लाशें घरोंमें पड़ी सड़ती रहीं। जब बदबू असह्य हो गई और सारे शहरमें फैल गई तो कोतवालने नादिरशाहसे विशिष्ट आज्ञा लेकर चौराहों और सड़कोंपर मृत शरीरोंके ढेर लगाकर आग लगा दी। शहरवालोंपर ऐसा भयानक आतंक छा गया था कि कोई लाशके पास जानेतकका साहस नहीं करता था।

१७–बिदाई

दिल्ली-निवासियोंको इतना कठोर दण्ड देकर भी नादिरकी भूख नहीं मिटी थी। अभी २० करोड़की रकम तो शेष ही थी। नादिरका पहला हाथ बादशाहपर ही पड़ा। बादशाहके सब जवाहिरात ले लिये गये। कोहेनूरका प्रसिद्ध हीरा, जो मुग़ल बादशाहोंके ताजकी रौनक बढ़ाया करता था, विजेताकी सम्पत्ति हो गया। तख्ते ताऊसपर मुग़लोंको मान था। वह भी हर्जानेकी रकममें शामिल हो गया। इस सिंहासनको शाहजहाँने दो करोड़ रुपयोंमें तैयार कराया था। बाहरके ख़ज़ानेमें तथा तहख़ानोंमें जितना धन मिला, वह सब फारस जानेवाले ऊँटोंपर लाद लिया गया।

परन्तु इतनेसे नादिरशाहका पेट नहीं भरा। दिल्लीके निवासियोंसे कमसे कम दो करोड़ रुपया वसूल करनेका हुक्म हुआ। इस राशिको पूरा करनेके लिए शहरके सम्पन्न निवासियोंसे उनकी सम्पत्तिका आधा भाग माँगा गया। जो लोग

शारीरिक क़त्लेआमसे बच गये थे, उनके लिए यह दूसरा आर्थिक क़त्ले आम था। शहरको पाँच भागोंमें बाँटकर सब भागोंमें पृथक् अफसर नियुक्त कर दिये गये थे जिनके सुपुर्द उस भागके निवासियोंसे पूरी रकम वसूल करनेका काम किया गया था।

वसूली बहुत सख़्तीसे की गई। अपमान, शारीरिक दण्ड और बलात्कार, इन सभी उपायोंको प्रयोगमें लाकर अभागे निवासियोंकी हड्डियोंमेंसे धन चूसनेका प्रयत्न किया गया। सैकड़ों परिवार बिल्कुल बरबाद हो गये। जो इस अपमानको न सह सके उन्होंने या तो ज़हर खा लिया या छुरेकी सहायतासे अपना अन्त कर लिया। इस लूटमें छोटे-बड़ेका कोई लिहाज़ नहीं किया गया। अकेले वज़ीर कमरुद्दीनख़ाँसे एक करोड़ रुपया ऐंठा गया। उसके दीवान मजलिसरायसे कुछ कम प्राप्ति हुई तो नाईसे उसके कान कटवा दिये गये और तहख़ानेमें डाल दिया गया जहाँ उसने आत्म-हत्या कर ली।

इस प्रकार दिल्लीकी ईंट-ईंटसे हर्जाना वसूल किया गया। नादिरशाह दिल्लीसे जो धन और सम्पत्ति ले गया, उसका पूरा हिसाब नहीं लगाया जा सकता। उस समयके लेखकोंके भिन्न भिन्न अनुमान हैं। नादिरके मन्त्रीने जो हिसाब दिया है उसके अनुसार १५ करोड़ नक़दके अतिरिक्त जवाहिरात आदिकी बहुत बड़ी राशि बनती है। फ्रेज़रके हिसाबसे सब मिलाकर निम्नलिखित मूल्यकी सम्पत्ति नादिरशाहके साथ गई—

नकद तथा सोना-चाँदी	३० करोड़
जवाहिरात	२५ करोड़
तख़्ते ताऊस और अन्य कीमती पदार्थ	९ करोड़
कारीगरीकी बहुमूल्य चीज़ें	२ करोड़
लड़ाईका सामान	४ करोड़
	७० करोड़

३०० हाथी और १० हज़ार घोड़े इन वस्तुओंके अतिरिक्त थे।

नादिरशाह दिल्लीमें लगभग दो मास तक रहा। उन दिनों वही हिन्दुस्तानका शाहन्शाह था। वही तख़्ते ताऊसपर बैठता था, उसीके नामके सिक्के प्रचलित होते थे और मस्जिदोंमें उसीके नामका खुतबा पढ़ा जाता था। मुहम्मदशाह तो एक कैदीकी तरह ड्योढ़ीपर रहता और सलाम करता था।

समयको मनोरंजक बनानेके लिए आमोद-प्रमोदका क्रम भी जारी रहता था। नादिरने अपने छोटे लड़केकी शादी दिल्लीके शाही ख़ान्दानकी एक लड़कीसे कर दी। कई दिनोंतक शहरमेंसे इस शुभ अवसरपर उत्सव कराया गया, रोशनी हुई और हाथी लड़ाये गये। हिन्दुस्तानी नर्तकियोंके मुजरे नादिरको बहुत पसन्द आये, एक गानेवालीको वह ४००० रुपयेमें खरीदनेको तैयार भी हो गया था, पर वह बेचारी बड़ी मुश्किलसे इस बलासे बची।

आख़िर वह दिन भी आया जब भारतकी सम्पत्तिसे नादिरकी वासना भर गई और उसने घर लौट जानेका निश्चय किया। १ मई १७३९ के दिन लाल-किलेमें विराट् दरबार किया गया। नादिरशाहने अपने हाथोंसे मुहम्मदशाहको ख़िलत दी और उसके सिरपर हिन्दुस्तानका ताज रक्खा। मुहम्मदशाहने झुककर उस ताजको ग्रहण करते हुए बदलेमें सिन्धुनदीके पश्चिमका सब प्रदेश नादिर-शाहको भेंट किया। इस समर्पणसे अफ़ग़ानिस्तान और काश्मीरसे लेकर सिन्ध तकके प्रदेश हिन्दुस्तानसे कटकर फारसके आधिपत्यमें चले गये।

नादिरशाहने हिन्दुस्तानकी गद्दी मुहम्मदशाहको वापिस देते हुए एक प्रकारसे भारतको फारसका प्रदेश बना दिया। बाजीराव तथा देशके अन्य बड़े शासकोंको नादिरशाहने पत्र लिखे जिनमें उन्हें मुहम्मदशाहका फरमाबरदार होनेकी प्रेरणा की। इस प्रकार जिस राजमुकुटको बाबर और अकबरने बाहुबलसे प्राप्त करके सिरपर रक्खा था, उसे मुहम्मदशाहने फारसके शासकके हाथोंसे ख़ैरातके तौरपर प्राप्त किया। यद्यपि कहनेको मुगल राज्य इसके पश्चात् भी चलता रहा, परन्तु वस्तुतः मुग़ल साम्राज्यकी स्वतंत्र सत्ता नादिरशाहके आक्रमणके साथ समाप्त हो गई। कर्नालके रणक्षेत्रमें और दिल्लीके मुहल्लोंमें मुग़ल साम्राज्यकी धज्जियाँ उड़ चुकी थीं, और राजमुकुट धूलमें मिल गया था। साम्राज्यकी आत्मा शरीरसे निकल चुकी थी, अब तो केवल अस्थि-पंजर शेष था जिसके गलने और सड़नेमें लगभग एक सौ वर्ष व्यतीत हुए। जिस मुगल साम्राज्यकी बाबरने स्थापना की वह नादिरके आक्रमणके साथ समाप्त हो गया।

नादिरशाह महामारीकी तरह नाशका सन्देश लेकर भारतमें आया और नाशका सन्देश देता हुआ ही विदा हुआ। जिस रास्तेसे वह वापिस गया, उसमें लूटे और जले हुए शहरोंके सिवा कुछ दिखाई नहीं देता था। उस रास्तेमें न खेत बाकी रहे और न व्यापार। नादिरके चले जानेके पश्चात् भारतके

वायुमण्डलमें मुग़ल साम्राज्यकी जलती हुई चिताखे उठती हुई आगकी लपटें ही दिखाई दे रही थीं और कुछ नहीं।

ईश्वरका न्याय विचित्र है। मुग़लोंको अपनी निर्बलताओंका फल मिला और नादिरशाहने अपने अपराधका फल पाया। जब दिल्लीके क़त्ले आम और लूट-मारके आठ वर्ष बाद अपने देशमें नादिरशाह एक हत्यारेके हाथसे क़त्ल किया गया तब हिंदुस्तानसे लूटा हुआ माल उसके वंशके पास भी न रह सका। लुटेरोंने सब-कुछ लूट लिया। यहाँ तक कि तख्ते ताऊस भी टूट-फूट कर बिखर गया। जिसके हाथ जो टुकड़ा लगा वह उसीको ले भागा। आज फ़ारसमें जो तख्ते ताऊस राजभवनकी शोभा बढ़ा रहा है, वह शाहजहाँका तख्ते ताऊस नहीं है। वह उसकी अनुकृतिमें बनाई हुई नई और घटिया नकल है।

१८–मुग़ल साम्राज्य अस्ताचलकी चोटीपर

नादिरशाहकी बिदाईके साथ स्वतन्त्र मुग़ल साम्राज्य भी विदा हो चुका था। मुहम्मदशाहने स्वयं कहा था कि "राज्यकी बागडोर मेरे हाथसे निकल चुकी है। मैं तो केवल नादिरशाहका प्रतिनिधि हूँ।" यदि मुहम्मद शाहमें अच्छा प्रतिनिधि बननेकी शक्ति होती तो भी शायद काम चल जाता पर उसकी अयोग्यताका कोई ठिकाना नहीं था। वह न युद्धमें वीर था और न नीतिमें प्रवीण। वह तो आलस्य और लाचारीका एक पिण्ड था जिसे पराजय और आपत्तिने और भी अधिक अशक्त बना दिया था।

नादिरशाहके चले जानेपर दिल्लीकी शक्ति इतनी निर्बल हो गई थी कि प्रायः सभी प्रान्त स्वतन्त्र-से हो गये थे। काबुल और पंजाबपर अफ़गानोंका राज्य था, अवध और इलाहाबादमें सफ़दरजंगका हुक्म चलता था, बंगाल अलीवर्दीख़ाँके कब्ज़ेमें था, दुआब और रुहेलखण्डमें अफ़गानों और रुहेलोंका दौरदौरा था, गुजरात और मालवेपर मराठाशाही छा रही थी, और दक्षिणमें निज़ामका आधिपत्य था। दिल्लीकी सीमासे मिलते हुए प्रदेशोंपर भी मुग़ल बादशाहका पूर्णाधिकार नहीं था। जाट और गूजरोंके मारे दिल्लीके पासकी बस्तियाँ और रास्ते शाही ख़जानों तकके लिए दुर्गम हो रहे थे।

मुग़ल बादशाह तो अब नाममात्रका राजा था। जो रही-सही शासन-शक्ति थी वह भी वज़ीरोंके हाथमें थी और वज़ीरोंका यह हाल था कि सब वज़ीरे

आज़म (= प्रधान मन्त्री) बननेके लिए लालायित थे। दरबारमें और दरबारके बाहर राज्याधिकार पानेके लिए रईसोंके षड्यन्त्र रात और दिन जारी रहते थे। साम्राज्यका हित किसीको नहीं था, क्योंकि सब अपनी अपनी चिन्तामें थे।

इधर मुगल-वंशका खून बिल्कुल ठंडा हो चुका था। उसमें वीर और योग्य शासक पैदा करनेकी शक्ति नहीं रही थी। मुहम्मदशाहका हाल तो हम देख ही चुके। वह बेचारा नादिरशाहके जानेके पश्चात् कुछ वर्षों तक अपनी निर्जीव सत्ताको घसीटता रहा। १७४८ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसका लड़का अहमद गद्दीपर बैठा। अहमद अपने पितासे भी गया-गुजरा था। उसका समस्त जीवन या तो जेलमें कटा, या अन्तःपुरमें। शाहजहाँके दुःखमय अन्तने मुगल वंशके सब पिताओंको डरा दिया था। अपने राज्याधिकारी पुत्रोंको वह अपना सबसे बड़ा शत्रु समझते थे। अहमद प्रायः कैदी रहा था और कैदके दिनोंको मनोरंजक बनानेके लिए उसे औरतोंके समुदायमें रक्खा जाता था। ऐसे कोमल जेलमें पले हुए राजकुमारसे ज़ोरदार शासनकी क्या आशा हो सकती थी? वह मुहम्मदशाहकी अपेक्षा भी निर्बल था। जब तक गद्दीपर रहा मुसाहिबों या वज़ीरोंकी ठोकरोंका शिकार बना रहा, और अन्तमें अपने वज़ीर गाज़िउद्दीनके हाथों ही अन्धा करके गद्दीसे उतारा गया। उसने केवल ६ वर्ष तक राज्य किया, और उन ६ वर्षोंमें मुगल साम्राज्यकी दशा और भी अधिक बिगड़ गई।

मुहम्मदशाहकी मृत्युपर जहाँदारशाहका बूढ़ा पुत्र अजीजुद्दीन 'आलमगीर द्वितीय'के नामसे आभाहीन सिंहासनपर बिठाया गया। जो काम नीतिके दाव-पेंच और संग्रामकी घड़घड़ाहटमें पले हुए नौजवान शासकके लिए भी कठिन था, उसे भला नमाज़ और तस्बीहसे आयु गुजारनेवाला ५० सालका बूढ़ा कैसे सँभाल सकता था? वह विचारोंमें कट्टर मुसलमान था, संगीतका विरोधी था और हिन्दुस्तानमें औरंगज़ेबके राज्यको वापिस लाना चाहता था, परन्तु उसमें न इच्छा-शक्ति थी और न शारीरिक शक्ति। इस कारण उसका गद्दीपर होना न होना बराबर ही था। ऐसी दशामें वज़ीर निज़ामुद्दीन ही सल्तनतकी नावका असली कर्णधार था, परन्तु वह एक मदान्ध कर्णधारसे अधिक योग्य नहीं था। वह साहसी तो था, परन्तु विवेकसे सर्वथा शून्य था। उसके शत्रु बढ़ते गये और साथ ही उसका उन्माद भी बढ़ता गया, यहाँ तक कि अन्तमें उसने बादशाहका अन्त करनेकी ठानी और १७५९ में एक षड्यन्त्र द्वारा आलमगीरकी हत्या

करवा डाली। आलमगीरको फकीरोंसे बातचीत करनेका बहुत शौक था। वज़ीरने उसे बताया कि फीरोज़शाहके कोटलेमें एक कन्दहारका फकीर आया हुआ है। आलमगीर उससे मिलने गया। वह फकीर और उसके चेले असलमें वज़ीरके आदमी थे। वह अकेले बादशाहपर टूट पड़े और उसे मार डाला।

आलमगीर तो मर गया परन्तु निज़ामुद्दीनका काम न बना। वह अपनी कठपुतलीको गद्दीपर न बिठा सका, क्यों कि शाहज़ादा अलीगौहरने बिहारमें शाह आलमके नामसे अपने आपको शाहन्शाह उद्घोसित कर दिया था। अली-गौहर इससे पूर्व अवधके नवाब शुजाउद्दौलाकी संरक्षामें रहा था। बादशाह बनकर भी उसे अपना स्थान छोड़ना रुचिकर न प्रतीत हुआ। बादशाह बनकर भी ११ वर्ष तक वह इलाहाबादमें पड़ा रहा और सल्तनतको उसका भाई शाह-ज़ादा मिर्ज़ा जीवनवख्त चलाता रहा। ११ वर्षके पश्चात् जब वह १७७१ के अन्तमें महादजी सिन्धियाकी संरक्षामें दिल्लीमें प्रविष्ट हुआ तब उसे जो तख्त मिला वह मुग़ल बादशाहका तख्त नहीं था। दिल्लीपर मराठोंका प्रभुत्व हो चुका था और मुगल बादशाह उनके हाथका एक गुड्डा था।

नादिरशाहके भारतसे चले जानेपर पेशवाको यह पहिचाननेमें कठिनाई न हुई कि दिल्लीकी हुकूमतपर प्रभुता जमानेका अवसर आ गया है, परन्तु दक्षिणमें कई उलझनें ऐसी पैदा हो गई थीं कि वह शीघ्र ही उत्तरकी ओर रवाना न हो सका। इसी बीचमें मृत्युने उसे आ दबाया। १७४० में बाजीराव पेशवाका देहान्त हो गया।

उसके उत्तराधिकारी बालाजीरावको कुछ समय राज्यकी आन्तरिक कठिनाइयोंको दूर करनेमें लगा। अपने भाइयोंके विरोधको और कई मराठा सेनापतियोंके उपद्रवको दबानेमें नये पेशवाकी नीति और युद्धकी शक्तियोंकी काफ़ी कड़ी परीक्षा हो गई, जिसमें अन्तमें वह उत्तीर्ण हुआ।

आगामी दस वर्षोंमें दक्षिणीय और उत्तरीय भारतकी रंगभूमिके अभिनेताओंमें बहुत-सा उलट फेर हो गया। सन् १७४८ में बादशाह मुहम्मदशाहकी मृत्यु हो गई। उसी साल सल्तनतका सबसे बड़ा सलाहकार निज़ामुल्मुल्क मर गया। १७४९ में राजा शाहूकी मृत्यु हो गई। मुहम्मदशाहके स्थानपर अहमदशाह गद्दीपर बैठा। निज़ामका स्थानापन्न नासिरजंग हुआ और राजा शाहूकी गद्दीपर बूढ़ी रानी ताराबाईकी संरक्षामें बालक रामराजा आसीन हुआ।

इस प्रकार नये पात्रोंके साथ जो नाटक आरम्भ हुआ उसके दो भाग किये जा सकते हैं। पहले भागमें हम मराठोंकी शक्तिको बढ़ता हुआ पाते हैं। मुसलमान बादशाहकी निर्बलता और उसके वज़ीरों और सूबेदारोंके आपसी झगड़ोंसे लाभ उठाकर मराठा सरदार उत्तरकी ओर बढ़ने लगे, यहाँतक कि कुछ ही वर्षोंमें बाजीरावका वह स्वप्न यथार्थ हो गया जो उसने पेशवाकी गद्दीको सँभालते हुए राजा शाहूके सामने रक्खा था। मराठोंकी ध्वजा दिल्ली और लाहोरसे होती हुई अटकके किनारे पहुँचकर सम्पूर्ण भारतके सिरपर फहराने लगी।

उस नाटकके दूसरे भागमें हम भारतकी सब मुसलमान शक्तियोंको अफ़गानिस्थानके शासकके साथ मिलकर मराठोंके नाशके लिए यत्न करता हुआ पाते हैं। पानीपतके मैदानमें वह यत्न बहुत-कुछ सफल हुआ। मराठा-शक्तिकी कमर टूट गई, पर वह मरी नहीं, देरतक जीवित रही।

इस नाटकके विस्तारपूर्वक प्रदर्शनके लिए एक स्वतन्त्र पुस्तककी आवश्यकता है। मुग़ल साम्राज्यके उत्थान और पतनकी भाँति मराठा-शक्तिका उत्थान और पतन भी एक बड़ा रोचक और शिक्षाप्रद विषय है। यदि अवसर मिला तो उसकी विस्तृत कहानी हम दूसरी पुस्तकमें सुनायँगे। यहाँ तो हम केवल उन घटनाओंकी ओर बहुत संक्षिप्त निर्देश करेंगे जो मुग़ल साम्राज्यकी स्वाधीन सत्ताके क्षयके पश्चात् घटित हुईं।

१९—अटकके तटपर मराठोंकी ध्वजा

बालाजी बाजीरावको पेशवा पदपर नियुक्त करते हुए राजा शाहूने जो आज्ञापत्र दिया था, उसमें निम्नलिखित शब्द थे—

"बालाजी विश्वनाथ पन्तके पश्चात् बाजीरावने राजाकी सेवामें बड़े बड़े काम किये। उसने ईरानियोंको परास्त करके साम्राज्यकी स्थापनाका यत्न किया। परन्तु उसका अन्त असमयमें ही आ गया। तुम उसके पुत्र हो। तुम्हें उसकी नीतिका अनुसरण करते हुए सारे हिंदुस्तानको जीतकर साम्राज्यकी स्थापना करने और मराठा सेनाओंको अटकके पारतक पहुँचा देनेका प्रयत्न करना चाहिए।'

बाजीराव एक असाधारण पुरुष था। उसकी गणना संसारके उन थोड़ेसे इने गिने व्यक्तियोंमें हो सकती है जो बहुत बड़ा सपना लेने और उसकी पूर्ति करनेकी भी शक्ति रखते हैं। महाराष्ट्रके इतिहासमें शिवाजीसे उतरकर उसीका

वालाजी वाजीराव

स्थान है। वह वीर भी था और नीतिज्ञ भी। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह बहुत ऊँची कल्पना कर सकता था और फिर उसे पूरी करनेका भी साहस रखता था। उसकी तबीयतमें एक विशेष ढँगकी रुखाई थी जो शायद अत्यधिक आत्म-विश्वास और निरन्तर सफलतासे पैदा हो गई थी। इस दोषके कारण उसे बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। उसके शत्रुओंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती गई, यहाँतक कि मृत्युके समय आधेके लगभग मराठा सेनापति उसके विरोधी थे।

बालाजीराव अपने पिताके समान प्रतिभासम्पन्न न होता हुआ भी संसारके व्यवहारमें अधिक चतुर और परिष्कृत था। बाजीराव रणभूमिमें पला था और बालाजी दरबारमें, यही दोनोंमें भेद था। बाजीरावने जो कठिनाइयोंकी खाई अपने पीछे छोड़ी थी उसे पार करनेमें बालाजीको कुछ समय लगा। बाजीरावने कई लाखका कर्ज ले लिया था, उसे उतारना पड़ा। बहुतसे शत्रुओंने सिर उठा लिया था उन्हें दबाना पड़ा, और अन्तमें घरसे निश्चिन्त होकर और पूरा सेनासन्नाह करके १७४१ में बालाजीरावने उत्तरीय भारतकी ओर प्रयाण किया।

बालाजीकी सब युद्ध-यात्राओंके विस्तृत वर्णनका यह स्थान नहीं है। यहाँ तो हमें केवल यह दिखाना है कि नादिरशाहकी ठोकरसे अधमुई हो जानेपर मुगल साम्राज्यकी लाशकी क्या गति हुई और मराठा सरदारोंने उसपर किस प्रकार प्रभुत्व स्थापित किया।

सबसे पहले बालाजीने मालवेकी सुध ली। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रान्त अभी मराठा राज्यमें शामिल नहीं हुआ था, अभी तो मराठोंको उससे चौथ और सरदेशमुखी लेनेका ही अधिकार प्राप्त हुआ था और उसकी भी बादशाहसे सम्पुष्टि नहीं हुई थी। बालाजीने मालवेमें जाकर चौथकी वसूलीका प्रबन्ध किया। उसी यात्रामें उसने धौलपुर पहुँचकर अम्बरके सवाई महाराज जयसिंहसे मुलाकात की और दोनोंमें परस्पर सहायताकी सन्धि स्थापित की। महाराज जयसिंहने यह भी वादा किया कि वह बादशाहसे बालाजीको मालवापर पूरा अधिकार दिलवानेका प्रयत्न करेगा। परन्तु इसी बीचमें कुछ घटनाएँ ऐसी हो गई कि बालाजीको महाराज जयसिंहकी सिफारिशकी आवश्यकता न रही। बादशाहने स्वयं ही लाचार होकर मालवा पेशवाके सुपुर्द कर दिया।

राघोजी भोंसला एक पराक्रमी मराठा सरदार था। बरार और उससे आगे इलाहाबाद तक उसकी मनमानी चलती थी। राजा शाहूकी उसपर विशेष कृपा थी, परन्तु बालाजीका वह घोर विरोधी था। बंगालके मुसलमान सूबेदार अली-वर्दीखाँके घरू विरोधसे लाभ उठाकर राघोजीने अपने सेनापति भास्कररावको एक बड़ी सेना देकर बंगाल-विजयके लिए रवाना किया और कुछ समय पीछे स्वयं भी पूरी शक्तिके साथ उसी ओर प्रस्थान किया। उस समय 'मराठा' नामकी बड़ी धाक थी, जिधर मराठा सिपाही मुँह करते उधर कँपकँपी-सी फैल जाती थी। अलीवर्दीखाँने घबराकर दिल्लीको फर्याद भेजी। परन्तु दिल्लीमें क्या धरा था? न पैसा था, और न सिपाही। बादशाहने वही किया जो एक निर्बल मनुष्यको करना चाहिए था। उसने पेशवाको यह सन्देश भेजा कि वह बंगाल पहुँचकर सूबेदारकी सहायता करे और साथ ही मालवापर पूर्णाधिकारका पट्टा भी भेज दिया। इस प्रकार अनायास ही मालवा मराठोंके पूर्णाधिकारमें आ गया।

जब राघोजीको मालूम हुआ कि बालाजी बंगालकी ओर बढ़ रहा है तो उसने सामना करनेकी ठानी और दो-एक स्थानोंपर लड़ाई भी की, परन्तु, अन्तमें हार माननी पड़ी। कुछ समय पीछे राजा शाहूने बीचमें पड़कर बालाजी और राघोजीमें सुलह करा दी। इस सुलहके अनुसार बरारसे कटकतकके प्रदेशोंसे चौथ वसूल करनेका अधिकार राघोजीको ही दे दिया गया।

राघोजीसे राजा शाहू बहुत प्रसन्न था, इसका मुख्य कारण राघोजीके वह कारनामें थे जो उसने कर्नाटक-विजयके प्रसंगमें कर दिखाये थे। कर्नाटक कई छोटे छोटे टुकड़ोंमें बँटा हुआ था। सबके अलग अलग शासक थे। उनमें हिन्दराजा भी थे, मुसलमान नवाब भी थे और फ्रेंच गवर्नर भी था। वहाँके तंजौर राज्यके आन्तरिक झगड़ोंसे लाभ उठाकर मराठे बीचमें कूद पड़े। पेशवाका ध्यान उत्तरकी ओर था। इस कारण राजा शाहूने दक्षिण-विजयका कार्य राघोजी भोंसलेके सुपुर्द किया। राघोजीकी नायकतामें मराठा सेनाओंने बड़ी वीरतासे युद्ध किया और थोड़े ही समयमें कर्नाटकपर आधिपत्य जमा लिया। लगभग छह मासकी युद्ध-यात्राके पश्चात् राघोजीने राजा शाहूकी सेनामें उपस्थित होकर यह सूचना दी कि कर्नाटकमें मराठा सेनाको पूरी सफलता मिली है। यों तो कर्नाटककी समस्याको सुलझानेके लिए मराठोंको फिर भी कई बार यत्न करना पड़ा, परन्तु दक्षिणमें महाराष्ट्रकी प्रमुखता स्थापित करनेका बहुत-सा काम राघोजीके प्रयत्नसे हो गया था।

इधर महाराष्ट्रका बल निरन्तर बढ़ रहा था और उधर मुग़ल बादशाहके वज़ीर एक दूसरेकी जानके प्यासे होकर लड़ रहे थे और मुग़ल साम्राज्यके रहे-सहे अस्थिपंजरको भी दफ़नानेकी चिन्तामें थे। सफ़दरजंग और गाज़िउद्दीनके झगड़ोंने दिल्लीके बाज़ारोंको दंगलका रूप दे दिया था। रातदिन झगड़ोंका और मार-पीटका बाज़ार गर्म रहता था। साथ ही एक नई बला भी भारतपर अवतीर्ण हो चुकी थी। अफ़ग़ानिस्तानका बादशाह अहमदशाह दुर्रानी भारतवर्षपर नादिरशाहद्वारा स्थापित किये हुए सब दावोंको कार्यरूपमें परिणत करनेका बीड़ा उठा चुका था। अहमदशाहके आक्रमणोंकी कहानी हम आगे सुनायेंगे क्योंकि वह इस दुःखान्त नाटकका अन्तिम दृश्य है। यहाँ तो हमें केवल यह देखना है कि मराठोंकी ध्वजाको अटकतक पहुँचानेमें कौन कौन-सी घटनायें सहायक हुईं। १७५७ में अहमदशाहने भारतपर तीसरी बार आक्रमण किया और दिल्लीको खुले हाथों लूटा। जब दिल्ली लुट रही थी, तब ग़ाज़िउद्दीन भागकर फर्रुखाबाद जा पहुँचा था। और ज्यों ही उसने यह समाचार सुना कि अहमदशाह हिन्दुस्थानसे चला गया है, त्यों ही वह बिलमेंसे निकलकर दिल्ली पहुँचनेके उपाय सोचने लगा। उसे मालूम था कि दिल्ली उसके शत्रुओंसे भरी हुई है। सेनामें और अफ़सरोंमें भी उसके अनेक दुश्मन थे। अकेले दिल्ली जानेमें उसे डर लगता था। उन दिनों पेशवा बालाजीका भाई मालवेमें मालगुज़ारी वसूल कर रहा था। वहाँ उसके पास गाज़िउद्दीनकी दर्खास्त पहुँची जिसमें अपनी मित्रताका विश्वास दिलाते हुए प्रार्थना की गई थी कि दिल्लीमें जाकर मन्त्रिपद सँभालनेमें मराठा सैन्य उसकी सहायता करे। राघोबाने उस प्रार्थनाको सहर्ष स्वीकार कर लिया और गाज़िउद्दीनके साथ जाकर दिल्लीपर घेरा डाल दिया।

एक महीनेमें दिल्लीके तार खुल गये और मराठोंकी सहायतासे गाज़िउद्दीन उसमें विजेताके रूपमें प्रविष्ट हुआ। राघोबाने अपनी सेनाका शिविर शहरसे बाहर ही रक्खा। वहाँ उसके पास पंजाबसे एक सन्देश आया जिसमें अदीन बेगने प्रार्थना की कि उसे अहमदशाह अब्दाली द्वारा छीना हुआ पंजाब प्रान्त वापिस दिलाया जाय। इस प्रार्थनापत्रके स्वीकार करनेमें कई खतरे थे। मराठा सेनाओंको अपने खूँटेसे बहुत दूर जाना पड़ता था, अहमदशाह अब्दालीसे व्यर्थमें दुश्मनी बाँधनी पड़ती थी और धनका व्यय भी कुछ कम नहीं था। परन्तु अटकके तट

पर मराठा ध्वजाको गाड़नेका प्रलोभन इतना बलवान् था कि राघोबा उसे रोक न सका।

महाराष्ट्रकी सेनायें दिल्लीसे लाहौरके लिए रवाना हुईं। रास्तेमें कोई रोकनेवाला नहीं था। लाहौरपर अधिकार करनेमें उसे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। अहमदशाह दुर्रानीके आदमी पंजाबको छोड़कर अटकके परले पार चले गये और महाराष्ट्रके सेनापतिने शिवाजीकी विजयिनी पताका अटकके किनारेपर गाढ़ दी। इस प्रकार १७५७ में लगभग सारा भारतवर्ष मराठोंके अधिकारमें आ गया था। कर्नाटकसे अटक तक मराठोंकी विजयिनी ध्वजा फहरा रही थी और 'मराठा' सिपाही नामका आतंक छाया हुआ था।

२०—अहमदशाह अब्दालीके आक्रमण

राघोबाके सिपाहियोंने सिन्ध नदीपर जाकर पानी पिया और दुर्रानी सेनायें अटकसे परले पार भाग गईं। इस घटनाने भारत और भारतसे बाहर बहुत गहरा असर किया। फारसके बादशाहने राघोबाको अपने हाथोंसे पत्र लिखा जिसमें उसने प्रेरणा की कि अफगानोंको हिन्दुस्तानसे बाहर निकाल दो। पेशवाके मन्त्रीने जो पत्र राघोबाको लिखा उसमें उसे 'अवतार' की पदवी दी। पंजाबके विजयने राघोबाको और उसके साथ मराठोंकी शानको चार चाँद लगा दिये।

परन्तु यह शान बहुत महँगी पड़ी। इससे हिन्दुस्तानके मुसलमानी शासकोंके हृदयोंपर साँप-सा लोट गया। हम देखते हैं कि रुहेलखण्डको वशमें लानेके लिए मुग़ल बादशाहने मराठोंकी मदद ली थी। उस समयके रुहिल्ला अफगान भारतके राजनीतिक शरीरमें फोड़ेके समान थे जो न अन्य मुसलमान शासकोंको चैनसे बैठने देते थे और न हिन्दू शासकोंको। मराठों और बुन्देलोंकी सहायतासे दिल्लीने रुहिल्लोंको दबानेकी चेष्टा की, काफ़ी सज़ा भी दी। उससे रुहिल्ले दब तो गये परन्तु मरे नहीं। अन्तमें उन्होंने वह काम किया जिसे देशद्रोहके नामसे ही पुकारा जा सकता है। उन्होंने, मुग़ल बादशाहके वर्तमान बज़ीर और उसके मराठा दोस्तोंका सिर कुचलकर दिल्लीकी बागडोर अपने हाथमें लेनेके लिए, अहमदशाह अब्दालीको भारतपर आक्रमण करनेके लिए निमन्त्रण दे दिया। दुर्रानी मराठोंके पंजाब-विजयसे स्वयं ही जला बैठा था। उसे

अहमदशाह अब्दाली

एक और बहाना मिल गया और वह भारतमें इस्लामकी रक्षाके नामपर जिहादी जोश लेकर इस अभागे देशपर दूसरा नादिरशाह बनकर टूट पड़ा।

अहमदशाह दुर्रानी मध्यभारतमें नादिरशाहका अफगान उत्तराधिकारी था। नादिरशाह स्वभावसे ही उग्र था। हिन्दुस्तानकी जीतने उसे और भी उग्र बना दिया। अपने देशमें जाकर उसने क्रूरताका ऐसा नंगा नाच दिखाया कि सेनामें और प्रजामें उसके विरुद्ध घोर असन्तोष पैदा हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतसे लौटनेके आठ वर्ष पीछे वह एक हत्यारेके वारका शिकार हो गया।

अहमदशाह २३ वर्षकी आयुमें कन्दहारमें सिंहासनारूढ़ हुआ। पहला काम उसने यह किया कि फारसके अफसरोंसे गज़नी, काबुल और पेशावरको दबा लिया। उसके पीछे उसने भारतकी ओर मुँह मोड़ा। लाहौरकी सूबेदारीके लिए जकरियाखाँके लड़के याह्याखाँ और शाहनवाज़खाँ आपसमें लड़ रहे थे। याह्याखाँने दिल्लीमें फर्याद की तो शाहनवाज़ने अपनी अपील कन्दहार भेजी। अहमदशाहको अच्छा अवसर मिल गया और उसने १७४७ में पंजाबपर आक्रमण कर दिया। उसे लाहौरके लेनेमें कोई कठिनाई न हुई, सरहन्द जला दिया गया और अब्दाली आगे बढ़नेकी चेष्टा कर रहा था कि सरहन्दके समीप दिल्लीसे भेजी हुई सेनाओंने उसे परास्त कर दिया, जिससे उसे अपने देशको लौटना पड़ा। पंजाब बादशाहके अधिकारमें आ गया, मीर मन्नूको उसका शासक बनाया गया।

अहमदशाह अब्दाली युद्धमें तो हार गया, परन्तु दिलसे नहीं हारा। अगले साल उसने फिर पंजाबपर दो आक्रमण किये जिनमें मीर मन्नूने काश्मीर और पंजाबका बहुत-सा हिस्सा भेंट चढ़ाकर अपनी जान बचाई।

अहमदशाहके वापिस चले जानेपर फिर पंजाबके भाग्यने पलटा खाया। वज़ीर गाज़िउद्दीनने चढ़ाई करके लाहौरकी उस समयकी शासिका मीर मन्नूकी विधवा मुराद बेगमको परास्त कर दिया और अदीन बेग नामक एक अनुभवी अधिकारीको पंजाबका सूबेदार नियुक्त कर दिया। यह समाचार पाकर अब्दालीने भारतपर चौथा आक्रमण किया और वह लाहौरको जीतकर दिल्लीमें आ धमका। अब्दालीकी लूट-मारने दिल्ली-निवासियोंको नादिरशाहके दिन याद करा दिये। प्रत्युत वह तो कुछ और आगे बढ़ा और मथुरा, वृन्दावन तथा आगरेको लूटता और नष्ट करता हुआ पंजाबको वापिस चला गया। दिल्लीके शासनमें अमीरुल

उमरा और बख्शीके स्थानपर उसने नज़ीब रुहिलाको स्थापित कर दिया। पंजाबमें उसने अपने लड़के तीमूरको सूबेदारके पदमें नियुक्त करके उस प्रान्तको मुग़लोंसे अलग कर दिया।

परन्तु यह परिवर्तन बहुत थोड़े समयके लिए हुआ। अब्दालीके सिन्ध पार होते ही शतरंजके मोहरे फिर हिलने लगे। लाहौरकी सूबेदारीसे अदीन बेगको हटाकर तीमूरको नियुक्त किया गया। अदीन बेग अपनी फर्याद लेकर मराठा सेनापति राघोबाके पास पहुँचा। राघोबा उस समय दिल्लीका भाग्य-विधाता बनकर राजधानीके समीप ही डेरा डाले पड़ा था। उसने अदीन बेगके निमन्त्रणको गनीमत समझा और अपनी समस्त सेनाके साथ लाहौरकी ओर प्रयाण किया।

कुछ तो 'मराठा' नामकी धाक और कुछ अफ़गानोंकी निर्बलता,—राघोबाको लाहौरपर अधिकार जमानेमें कुछ भी कठिनाई न हुई। उसके समीप आनेपर दुर्रानी सेनायें पीछे हट गईं और अटकके उस पार चली गईं। बाजीरावके स्वप्नको पूरा करता हुआ राघोबा अपनी सेनाओंको अटक तक ले गया, और जिस दिन मराठा घुड़सवारोंने अटक नदीमें पानी पिया उस दिन राघोबाने पेशवा बालाजीको यह सूचना भेजी कि महाराष्ट्रका झण्डा अटकके किनारेपर गाड़ दिया गया है। उस दिन यह कहा जा सकता था कि लगभग सारा भारतवर्ष महाराष्ट्रकी ध्वजाके सामने सिर झुकाता है।

परन्तु इस सुन्दर सफलताने मराठा-शक्तिके सिरपर आपत्तियोंके बादल इकट्ठा कर दिये। लाहौरमें दुर्रानी सेनाओंके पराजय और तीमूरके भागनेके समाचारोंने उसे क्षुब्ध कर दिया। दूसरी ओर नज़ीबखाँ रुहिल्ला विभीषणका काम कर रहा था। वह अहमदशाहके पास निमन्त्रणपर निमन्त्रण भेज रहा था और उसे भारतपर अफ़ग़ान राज्य स्थापित करनेकी प्रेरणा कर रहा था। वह स्वयं राजाका प्रधान मन्त्री और सर्वेसर्वा बनना चाहता था। इतने स्वार्थके लिए यदि हिन्दुस्तानको तबाह करना पड़े तो भी उसे कोई आशंका नहीं थी। इस प्रकार अपनी विजय-कामना और रुहिल्लोंके प्रोत्साहनसे प्रेरित होकर अहमदशाहने भारतवर्षपर पाँचवीं बार आक्रमण करनेके लिए सिन्ध नदीको पार किया।

उस समय तक मराठा सेनापति पंजाबसे विदा होकर दक्षिणमें पहुँच चुका

था। अब्दालीके लिए मैदान खाली था। उसने सिन्ध नदीको पेशावरके पास पार किया। उसके सेनापति पंजाबपर कब्ज़ा करते रहे और वह पहाड़ोंकी तराईके रास्तेसे बढ़ी हुई नदियोंके पानीसे बचता हुआ सहारनपुरके पास पहुँच गया। वहाँ उसने जमना नदीको पार किया।

भारतवर्षकी राजनीतिक अव्यवस्थाका इसीसे अनुमान लगाया जा सकता है कि एक विदेशी आक्रमणकारी कन्दहारसे सहारनपुर तक सर्वथा निर्विघ्न यात्रा तय कर लेता है और कोई उसका रास्ता रोकने तककी आवश्यकता नहीं समझता। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मराठा राज्यके संचालकोंने पंजाब-विजयके सम्बन्धमें दूरदर्शितासे काम नहीं लिया। उन्हें चाहिए था कि या तो वह दिल्लीसे आगे न बढ़ते, सारी शक्ति लगाकर दिल्लीमें अपने पाँव मज़बूतीसे गड़ा देते, और यदि पंजाबकी ओर गये थे तो उन्हें उस प्रान्तकी रक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए था। उन्होंने अब्दालीको भड़का तो दिया परन्तु उसके आक्रमणको रोकनेका कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया।

उधर दिल्लीकी हालत बहुत ही नाज़ुक हो रही थी। गाज़िउद्दीनकी क्रूरता और अदूरदर्शिता हरेक आपत्तिके साथ बढ़ती जा रही थी। जब उसने सुना कि अब्दाली आक्रमण कर रहा है तो उसने अपने बादशाहकी हत्या कर दी और उसके स्थानपर एक कठपुतली बादशाहको स्थापित करनेका यत्न किया, परन्तु, उसे किसीने बादशाह माना ही नहीं। असली उत्तराधिकारी बंगालसे उपलब्ध हुआ था, इस कारण अब्दालीके आक्रमणके समय भी दिल्लीका सिंहासन एक प्रकारसे खाली ही पड़ा था।

ऐसी दशामें विदेशी आक्रमणको रोकनेकी जवाबदारी मराठोंपर ही आ गई थी। वही उस समय भारतके स्वामी थे। उन्हींको देशकी रक्षा करनी चाहिए थी। इतिहासके विद्यार्थीको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समयके मराठा शासकोंने पूरी तरह अपनी उत्तरदायिताको नहीं समझा, अगर समझा था तो उसके पालन करनेमें अशक्त रहे। दोनों ही दशाओंमें हम उन्हें दोषसे मुक्त नहीं कर सकते।

जब अहमदशाह जमना पार करके दोआबमें आ गया तब पूनामें कुछ हल-चल पैदा हुई और आक्रमणको रोकनेका काम दामाजी सिन्धिया और मल्हारराव होल्करके सुपुर्द किया गया। यह दोनों सरदार मध्य भारतमें मँडरा रहे थे,

परन्तु इसे हम मराठा सेनानियोंकी असावधानताका ही परिणाम कहेंगे कि वह दोनों सेनापति आपसमें मिलने भी न पाये थे कि अब्दालीकी सेनाओंने उन्हें अलग अलग धर दबाया। दामाजीकी अब्दालीकी सेनासे बदायूँघाटपर मुठ-भेड़ हुई। युद्धमें मराठोंका पूरा पराजय हुआ। दामाजी और उसके ८ हज़ार सिपाही समरभूमिमें खेत रहे।

जब दामाजीकी सेनाका सर्वनाश हो चुका तो मल्हाररावकी भी नींद टूटी और उसने मालवेसे आगे बढ़कर आगराके पास अफ़ग़ान सेनाओंको रोकना चाहा, परन्तु, अब्दालीकी सेनाने इस ज़ोरसे आक्रमण किया और होल्कर इतना असावधान था कि मराठा सेनाको बिना लड़े ही पीठ दिखानी पड़ी। स्वयं होल्करने घोड़ेपर भागकर जान बचाई, यहाँतक कि उसे घोड़ेपर काठी कसने और जूता पहिननेका अवसर नहीं मिला।

इस प्रकार रास्तेको साफ करके अहमदशाहने दिल्लीमें बेरोक-टोक प्रवेश किया और उसे तीन सप्ताहतक जी खोलकर लूटा। जब दिल्लीमें कुछ लूटनेको न रहा तो आगे बढ़कर उसने मथुरा और जाट-प्रदेशमें लूट-मारका बाज़ार गर्म किया।

इन सब समाचारोंने और विशेषतः मथुराकी लूटने पूनामें गहरी प्रतिक्रिया पैदा की। उन दिनों मराठा राज्यकी यह निश्चित-सी नीति हो चुकी थी कि हिन्दुओंके तीर्थ-स्थानोंकी विशेष रूपसे रक्षा की जाय। मथुराके 'दलनने मराठा मानपर भारी चोट पहुँचाई। इधर धीरे धीरे उत्तरीय हिंदुस्तानके सभी प्रभाव-शाली मुसलमान शासक मराठोंके विरुद्ध अहमदशाहसे मिल चुके थे। रुहिला सरदार तो पहले ही अब्दालीके साथ थे। उनके विषयमें यह विचार है कि उन्होंने अफगान बादशाहको मराठा-विजयके लिए निमन्त्रित किया था। अवधका नवाब शुजाउद्दौला बहुत दिनोंतक अब्दाली और गाज़िउद्दीनके बीचमें लटकता रहा। जब उसने देखा कि अब्दालीकी कला चढ़ती हुई है तो अन्तमें उसने भी अपना बोझ उसी ओर डाल दिया। इस प्रकार अन्तमें अफगान बादशाह और उत्तरीय मुसलमानोंका एक गुट बन गया जिसका उद्देश्य मराठोंकी शक्तिका नाश करना था।

पेशवाने इस बातका अनुभव तो किया, परन्तु बहुत देरमें। जब अनुभव भी किया तो किंकर्तव्यताके निश्चयमें बहुत ढील की। नादिरशाहके आक्रमणके समय पेशवा बाजीरावने जिस नीतिका अनुकरण किया था उसे शत्रुको

चकानेवाली नीतिके नामसे पुकार सकते हैं। नादिरशाह आया और मुगलोंसे लड़ा। बाजीरावने उसमें कोई दखल नहीं दिया। हाँ, मध्यप्रदेश और दक्षिणकी सीमाओंको सुरक्षित करनेके लिए उसने हिन्दू और मुसलमानोंका एक गुट तैयार कर लिया था जो नादिरशाहके रास्तेको रोक देता यदि वह आगे बढ़ता। परन्तु पूनाकी नीतिमें अब परिवर्तन हो गया था। अब मराठा प्रभावकी सीमा चम्बल नदीको नहीं, अपितु सिन्धु नदीको समझा जाता था। यदि ऐसा था तो पेशावाको पंजावकी रक्षाका स्थायी प्रबन्ध करना चाहिए था। इसे उस समयकी मराठोंकी नीतिकी निर्बलता समझना चाहिए कि उन्होंने सिन्धपर पहुँचकर अब्दालीको छेड़ तो दिया परन्तु उसका मार्ग न रोक सके, —उसे देशके हृदय तक पहुँच जाने दिया।

पूनामें अब्दालीको भारतसे बाहर निकालनेके लिए बहुत भारी सेना एकत्र की गई। उस सेनामें लगभग ७५ हज़ार सिपाही थे। एक तोपखाना था जिसका नायक उस समयका प्रसिद्ध तोपची इब्राहीमखाँ गर्दी था। सेनामें शानदार हाथी थे और युद्धोंमें सधे हुए घोड़े। सेनाका सेनापतित्व पेशवा बालाजीके चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊको दिया गया था। पंजाबका विजेता राघोबा जब पूना लौटकर गया तो वह खाली हाथ ही था। क्योंकि दिल्ली या पेशावरमें उसे कोई धन-राशि प्राप्त नहीं हुई थी, उसका खर्च ही खर्च हुआ था और पूनाका खजांची युद्धसे लौटे हुए मराठा सरदारोंसे सदा बड़ी बड़ी धन-राशिकी आशा रखता था। उधर सदाशिवराव उदगिरकी विजयसे कमाई करके लाया था। सदाशिवरावने दिल्लीसे लौटे हुए राघोबाको ताना दिया जिससे नाराज़ होकर राघोवाने उत्तरीय विजयके लिए जाती हुई सेनामें जानेसे इन्कार कर दिया। सदाशिवराव स्वभावका अभिमानी और उग्र था। उसने भी राघोबाकी कोई पर्वा न की। राघोवाको उत्तरका काफ़ी अनुभव था, उसके सहयोगसे भाऊकी सेनाको पुष्टि ही मिलती। दो प्रमुख सेनापतियोंके परस्पर विरोधसे मराठोंकी युद्ध-शक्तिमें निर्बलता आ गई जिसका आगामी युद्ध-पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सेनाके साथ, अपने प्रतिनिधिके रूपमें, बालाजीने अपने युवा पुत्र विश्वासरावको सदाशिवरावकी संरक्षामें रवाना किया। युद्धके व्ययके लिए राज्यके कोषसे एक करोड़ रुपया सदाशिवरावके सुपुर्द किया गया।

वह मराठोंकी विराट् सेना १७६० ई० के मार्च मासमें पूनासे निकली

और जुलाईमें दिल्ली पहुँच गई। रास्तेमें बहुत-सी राजपूत सेना और ३०००० सिपाहियोंके साथ भरतपुरके राजा सूरजमलके मिल जानेसे मराठा-सैन्यकी शक्ति और भी बढ़ गई थी।

जब वह सेना दिल्लीमें घुसी तो उसका ठाठ इससे पूर्वकी मराठा सेनाओंसे निराला था। इस सेनामें शानदार हौदोंवाले हाथी थे, सुनहरी साजसे सजे हुए घोड़े थे, बेशकीमती तम्बू और डेरे थे और रत्नजड़ित आभूषणोंसे सजे हुए सेनापति थे। घोड़ेकी नंगी पीठपर बैठकर हवासे बातें करनेवाले मराठा घुड़सवारोंका उस सेनामें अभाव था। वही साजो-सामान जो मुग़ल बादशाहोंके साथ चला करता था, भारत-विजयकी अन्तिम लड़ाई लड़नेके संकल्पसे चली हुई सदाशिवरावकी विराट् सेनाके साथ भी चल रहा था।

सदाशिवराव दिल्लीमें एक विजेताकी तरह घुसा। थोड़ेसे दुर्रानी सिपाही, जो उसकी रक्षाके लिए छोड़े गये थे, मराठा सेनाका रास्ता न रोक सके। राजधानी-पर सुगमतासे मराठोंका अधिकार हो गया। सदाशिवरावने उस समय प्राप्त हुए अधिकारका पूरा और सम्भवतः पूरेसे बहुत अधिक उपयोग किया। शहरके सब रईसोंको पेशवाके पुत्र विश्वासरावके सामने पेश होकर नज़राना देना पड़ा और अधीनताकी घोषणा करनी पड़ी। धनकी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए मराठा सेनापतिने हुक्म दिया कि महल, कब्र या दरगाहमें जहाँ भी सोना चाँदी या जवाहिरात मिलें, निकाल लिये जायँ। देखते देखते बहुमूल्य और दर्शनीय सजावटका सामान दीवारोंमेंसे निकाल निकाल कर तोड़-फोड़ दिया गया। इतने पर भी सन्तोष न करके सदाशिवरावने कहना शुरू कर दिया कि वह विश्वासरावको दिल्लीकी गद्दीपर बिठा देगा। मित्रोंने उसे समझाया कि अभी अहमदशाहसे लड़ना बाकी है, पहले उसे समाप्त कर लो, फिर गद्दीका नाम लेना। इस चेतावनीके कारण उसने राज-तिलककी बात तो छोड़ दी, परन्तु उसका दिमाग़ हवामें ही घूमता रहा।

सूरजमल जाट पुराना अनुभवी सिपाही था। उसने सदाशिवरावको सलाह दी कि बहुत-सा भारी साजो सामान रणक्षेत्रमें न ले जाकर पीछे छोड़ देना चाहिए। परन्तु सदाशिवरावमें अभिमान भी था और रुखाई भी। वह ब्राह्मण होनेके अभिमानमें अन्य जातियोंका तिरस्कार कर देता था। उसने सूरजमलकी सलाहकी ओर ध्यान देना भी उचित न समझा। उसके अभिमानी स्वभावके कारण बहुतसे

मराठा सरदार पहलेसे ही असन्तुष्ट थे, अब राजा सूरजमल भी नाराज हो गया और अब्दालीसे युद्ध प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही अपने देशको लौट गया।

इधर सदाशिवराव अदूरदर्शिताके कारण मित्रोंको शत्रु बना रहा था, और उधर अहमदशाह अब्दाली उन लोगोंको, जो उदासीन थे, मित्रताके बन्धनोंमें बाँध रहा था। अवधका नवाब शुजाउद्दौला अब्दालीका साथ नहीं देना चाहता था क्योंकि नजीबुद्दौलासे उसका विरोध था, परन्तु, शाहने उसका पीछा न छोड़ा। कुछ धमकाकर और कुछ इस्लामके नामकी दुहाई देकर अन्तमें शाहने उसे अपने साथ मिलनेके लिए तैयार कर लिया।

२१–पानीपत

कई बार भारतके भाग्योंका फैसला पानीपतके समीपस्थ मैदानोंमें हुआ है। कुरुक्षेत्रके महाभारतके समयसे लेकर १७६० तक अनेकों बार भारतका अभियोग सदियोंतक अधरमें लटककर अन्तमें इसी विस्तृत भूमिके हाईकोर्टमें तय होता रहा है। भाग्योंने पाण्डवोंके पक्षमें यहीं फैसला दिया, बाबर बादशाहने मुग़ल साम्राज्यकी बुनियाद यहीं रक्खी, अकबरने सूरवंशके हाथसे राज्यकी बागडोर इसी मैदानमें छीनी, नादिरशाहने मुग़लसाम्राज्यकी कमर इसी स्थानपर तोड़ी, और, अब मराठा-शक्तिके भविष्यका निर्णय होनेकी तैयारी भी यहीं हो रही थी। भाग्योंका चक्र सदाशिवरावभाऊ और अहमदशाहको अपने दौरमें लपेटकर इसी रणक्षेत्रकी ओर घसीट रहा था।

अहमदशाह जमनाके उस पार दुआबमें बरसातकी समाप्तिकी प्रतीक्षा कर रहा था और सदाशिवराव दिल्लीपर अधिकार करके अहमदशाहके रास्ते बन्द करनेकी चिन्तामें था। अहमदशाह अभी कुछ दिन और नदियोंके घटनेकी प्रतीक्षा करता, परन्तु, जब उसे समाचार मिला कि मुंजपुरकी अफ़गान छावनीको मराठोंने नष्ट कर दिया है तो उसका धैर्य जाता रहा और उमड़ी हुई जमनाको पार करके वह पानीपतके मैदानकी ओर बढ़ा। मराठा सेनापतिको आशा नहीं थी कि नदीका पानी घटनेसे पहले अब्दाली इस पार आ जायगा। अब अपनी युद्धकी चालमें कुछ परिवर्तन करके उसे भी पानीपतकी ओर ही रवाना होना पड़ा।

इस समय अहमदशाहके पास लगभग ४० हजार अफ़गान सिपाहियोंके

अतिरिक्त कमसे कम ५० हज़ार हिन्दुस्तानी सिपाही थे जिनमें घुड़सवार और पैदल दोनों शामिल थे। ३० के लगभग तोपें भी थीं जो हिन्दुस्तानी मित्रोंकी ओरसे लाई गई थीं। इस सेनाके मुक़ाबिलेमें सदाशिवरावकी सेनामें कमसे कम ७० हज़ार घुड़सवारोंके अतिरिक्त लगभग ३० हजार पैदल सिपाही थे, २०० से अधिक तोपें थीं और हथियारबन्द प्यादोंकी तो गिनती नहीं थी। यह प्यादे लड़ाई और लूटकी आशासे इकट्ठे हो गये थे। यह हिसाब लगाया गया है कि भाऊके कैम्पमें लगभग ३ लाख आदमी थे।

दोनों डेरे एक दूसरेसे इतने अन्तरपर लगाये गये थे कि दोनोंके तोपके गोले एक दूसरेपर गिर सकते थे। प्रारम्भमें मराठोंकी स्थिति मज़बूत थी। गोविन्दराव बुन्देला लगभग १२ हज़ार घुड़सवारोंके साथ भाऊकी आज्ञानुसार अब्दालीकी सेनाके पीछे मँड़रा रहा था। न खानेका सामान पहुँचने देता था और न किसी शत्रुके सिपाहीको बाहर सिर निकालने देता था। यहाँतक कि अफ़ग़ान सेनाका नाकमें दम आ गया। अब्दालीने बुन्देलाके उत्पातको नष्ट करनेके लिए अताईखाँके नेतृत्वमें घुड़सवारोंका एक दस्ता रवाना किया जिसने ६० मीलसे अधिकका लम्बा सफर तय करके प्रातःकाल असावधानताकी दशामें बुन्देलेकी सेनापर आक्रमण कर दिया। गोविन्दराव मारा गया और उसकी लगभग सारी सेना कट गई।

बुन्देलाके मर जानेसे दोनों सेनाओंकी स्थिति बिल्कुल बदल गई। अबतक अब्दाली शत्रुओंसे घिरा हुआ था, अब सदाशिवराव पानीपतके मैदानमें बन्द हो गया। उसने वही भूल की थी जो नादिरशाहके मुक़ाबिलेमें मुहम्मदशाहके सेनापति कर चुके थे। चारों ओर दीवार खींचकर और एक छावनी बसाकर वह अफ़ग़ान सेनाके आक्रमणकी और दक्षिणसे पेशवाके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था। मराठोंकी युद्ध-नीति घिरनेकी या छावनी जमाकर बैठनेकी नहीं थी। वह तो चारों ओर हवाकी तरह फैल जाते थे, कभी शत्रुकी मुट्ठीमें बन्द नहीं होते थे और शत्रुके थक जानेपर ऐसा वार करते थे कि खाली न जाय। भाऊने उस नीतिको छोड़कर आखिरी मुगलोंकी दब्बू नीतिका आश्रय लिया। उसने अपनी गतिकी तीव्रता और प्रतिभाका भरोसा छोड़कर सेनाकी संख्या और तोपखानेका आश्रय लिया। परिणाम यह हुआ कि गोविन्दरावके नष्ट होते ही सदाशिवरावकी महती सेना अफगानोंके घेरेमें आ गई। दिल्लीसे खज़ाना

आ रहा था, वह अब्दालीके हाथोंमें आ गया। खाद्य पदार्थोंका मराठा सैन्यतक पहुँचना बिलकुल बन्द हो गया। यहाँ तक कि घोड़ोंके लिए चारा भी न रहा। सदाशिवरावने अपनी अयोग्यतासे युद्धकी लगाम शत्रुके हाथों चले जाने दी और स्वयं घेरेमें पड़कर घड़ियाँ गिनने लगा।

सदाशिवरावको अब आशाकी एक ही रेखा दिखाई दे रही थी। समाचार पहुँचा था कि पेशवा बालाजीराव एक बड़ी सेना लेकर मददके लिए आ रहा है। निश्चय ही पेशवाके आनेपर अहमदशाहको डेरे तोड़कर भागना पड़ेगा, इस उम्मेदसे सदाशिवरावने समय टालनेकी नीतिका आश्रय लिया। उसने सफदरजंगके सलाहकार काशीरायकी मार्फत अहमदशाहसे सुलहकी बातचीत प्रारम्भ की। अहमदशाह यद्यपि इस समय अच्छी स्थितिमें था तो भी मराठोंसे डरता था। वह यदि लड़ाईके बिना ही जीत सकता तो उसे प्रसन्नता होती। सुलहकी बातचीतका सिलसिला कुछ समय तक चलता रहा, परन्तु, यह विलम्ब मराठोंके लिए घातक सिद्ध हो रहा था। तीन लाख आदमी और सैकड़ों हाथी और घोड़े एक घेरेमें बन्द थे। सड़ाँदके मारे बदबू पैदा हो गई थी। सिपाही और पशु भूखों मर रहे थे। जान होठोंपर आ रही थी। हालत यहाँ तक नाजुक हो गई थी कि सदाशिवरावने काशीरायको इन शब्दोंमें सन्देश भेजा, 'प्याला लबालब भर चुका है। आगे नहीं ठहर सकता। यदि कुछ कर सकते हो तो अब कर लो, अन्यथा मुझे सीधा उत्तर दो। इसके पश्चात् लिखने या बोलनेका अवसर नहीं रहेगा।'

सदाशिवरावकी इस घबराहटका विशेष कारण यह था कि भूख और बदबूसे तंग आकर सेनापतियों और सिपाहियोंने सदाशिवरावके तम्बूको घेर लिया और आग्रह किया कि अधिक देर न लगाकर अब युद्ध कर लिया जाय। उन्होंने कहा कि भूखसे तड़प तड़पकर मरनेसे तो रणक्षेत्रमें जान देना कहीं अच्छा है। भाऊने इस आग्रहको स्वीकार कर लिया और सबने मिलकर शपथ खाई कि या तो विजय प्राप्त करेंगे अथवा रणक्षेत्रमें लड़ते लड़ते जान दे देंगे।

दूसरे रोज प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही मराठा सेनायें आक्रमणके लिए उद्यत होकर आगे बढ़ने लगीं। अहमदशाह अब्दाली पहलेसे ही तैयार था। वह प्रतिदिन दस-बारह घण्टोंतक घोड़ेकी पीठपर रहता था और अपनी और शत्रुकी

व्यूह-रचनाका निरीक्षण करता था। जब सोता था तब भी उसके द्वारपर युद्धकी सब सामग्रीसे सुसज्जित घोड़ा तैयार रहता था। समाचार पाते ही वह घोड़ेपर सवार हो गया और युद्धक्षेत्रमें पहुँच गया।

युद्धके प्रारम्भमें मराठा सैन्यका हाथ ऊँचा रहा। गर्दीके तोपख़ानेने गोलोंसे काफ़ी संहार किया, परन्तु, जब सेनायें बिल्कुल टकरा गईं तब गोले व्यर्थ हो गये, क्यों कि उनकी मारकी लम्बाई निश्चित थी। उससे कम दूरीपर गोले काम नहीं दे सकते थे। शीघ्र ही युद्ध गुत्थमगुत्थाके रूपमें परिणत हो गया। मराठा घुड़-सवार और सिपाही बड़ी वीरतासे लड़े। पहली झपेटमें उन्होंने रुहिल्लोंको धर दबाया। रुहिल्ले बड़ी वीरतासे लड़े परन्तु उस वीरताका केवल इतना ही फल हुआ कि संहारकी मात्रा बढ़ गई।

अफ़ग़ान सेनाका मध्य प्रधान मन्त्रीके सेनापतित्वमें था। रुहिल्लोंके हार जानेसे प्रधान मन्त्रीकी सेनाका दायाँ पार्श्व नंगा हो गया। उससे लाभ उठाकर महाराष्ट्रकी सेनाने उसपर दुतर्फ़ा आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणके मुखिया विश्वासराव और सदाशिवराव स्वयं थे। यह आक्रमण बरसाती नदीकी बाढ़की तरह प्रधान मन्त्री शाहवलीख़ाँपर टूट पड़ा। अफ़ग़ान सेना उसके वेगको न सह सकी और भागने लगी। शाहवलीख़ाँ परेशान होकर घोड़ेसे उतर आया और अपने सिपाहियोंको आवाज दे देकर भागनेसे रोकने लगा। उधर सदाशिवराव और विश्वासराव वीरताके चमत्कार दिखला रहे थे। बराबरकी लड़ाईमें मराठे अफ़ग़ानोंपर हावी हो रहे थे, और समीप ही था कि अफ़ग़ान सेना पीठ दिखा देती, कि अहमद-शाहने परिस्थितिको समझकर अपनी रिज़र्व सेनाको मध्यभागकी सहायताके लिए भेजा। कुमकके पहुँच जानेसे अफ़ग़ान सेनाके पाँव कुछ जम गये और फिर ज़ोरकी लड़ाई होने लगी, परन्तु, मराठोंका हाथ फिर भी ऊँचा ही रहा। अफ़ग़ानोंके उखड़े हुए पाँव न जम सके। जब अहमदशाहने यह देखा तो अपनी विशेष सेनाके साथ स्वयं युद्धमें सम्मिलित हो गया। अब तो बहुत ही विकट संग्राम होने लगा क्योंकि दोनों पक्षोंके जोर पूरी तरह तुल गये थे। अहमदशाहको आशा थी कि उसका अन्तिम आक्रमण मराठोंका दम तोड़ देगा, परन्तु, उसे निराशा हुई और मराठे उसी वेगसे लड़ते रहे। तब तो वह घबराकर भागनेका मनसूबा बाँधने लगा, और कहते हैं कि उसने पीछे जानेकी तैयारीकी आज्ञा भी भेज दी थी, कि बीचमें वह बला आ कूदी जिसका कोई उपाय नहीं। वह

चला थी मराठा शक्तिका दुर्भाग्य । विश्वासराव हाथीपर बैठा हुआ शत्रुकी सेनापर तीर बरसा रहा था कि तोपका गोला अचानक उसपर आकर पड़ा । गोला घातक सिद्ध हुआ । यह पुराने युद्धोंकी निर्बलता थी कि नेताके मरनेपर सेनायें भाग निकलती थीं । विश्वासरावका मरना था कि मराठोंके पाँव उखड़ने लगे । उधर अहमदशाहके ताज़ा रिज़र्वोंका दबाव था और इधर सेनापतिकी मृत्यु हो गई । जैसे कोई आकाशकी ओर जाता हुआ बैलून अकस्मात फट जाय और टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे, मराठा सेनाकी वही दशा हुई । मराठा सिपाही गाजर-मूलीकी तरह कटने लगे । अहमदशाहकी सेनाने और स्वयं शाहने भगोड़ोंका पन्द्रह-सोलह मील तक पीछा किया और जो मिला उसे काट डाला । जो सेनाके हाथसे बचे उन्हें किसानोंने लूटकर समाप्त कर दिया । सदाशिवरावने जब देखा कि अन्त निश्चित है तो वह तलवार हाथमें लेकर शत्रुदलमें घुस गया और जब तक जान रही, संहार करता रहा । कहते हैं कि वह १५ कोस तक बराबर शत्रुओंसे लड़ता हुआ चला गया और अन्तमें थककर गिर पड़ा । उस दशामें किसीने उसका सिर धड़से अलग कर दिया और शरीरपरसे सब जवाहिरात उतार लिये । मराठोंके प्रायः सब सरदार मारे गये । जनकोजी सिन्धिया और इब्राहीम गर्दी तथा अन्य सैकड़ों मराठे युद्धमें या युद्धके पीछे पकड़े जाकर मार दिये गये ।

मराठा सैन्यसे जो लोग भाग कर बच गये, उनमेंसे तीन नाम उल्लेखयोग्य हैं । मल्हारराव होल्कर युद्धका अन्त होनेसे पूर्व ही मैदानसे चला गया था । महादजी सिन्धिया युद्धमें लँगड़ा हो गया परन्तु बच गया । दामाजी गायकवाड़ने भी भागकर जान बचा ली । यह तीनों सरदार मानो राजवंशोंकी स्थापना करनेके लिए जीवित रह गये । जो लोग जीवित रह गये उनमेंसे एक जनार्दन भानु नामका ब्राह्मण भी था जो अन्तमें नाना फड़नवीसके नामसे मराठा राज्यका भाग्य-विधाता बना और जिसके प्रयत्नोंसे कई वर्षोंतक मराठाशाहीका दीपक बुझनेसे बचा रहा ।

इतना बड़ा दाव शायद ही किसी बाज़ीपर लगाया गया हो जितना बड़ा कि उस बाज़ीपर लगाया गया था । दाव था भारतके साम्राज्यका । और उतनी बुरी तरह शायद ही कोई बाज़ी हारी गई हो जिस बुरी तरह कि वह हारी गई । मराठा-शक्तिकी कमर टूट गई । लगभग दो लाख योद्धा जानसे मारे गये । सारे

महाराष्ट्र-जगत्‌में हाहाकार मच गया। शायद ही कोई परिवार ऐसा हो जिसने पानीपतके मैदानमें एक-न-एक भेंट न चढ़ाई हो। पेशवा एक बड़ी सेनाके साथ सदाशिवकी सहायताके लिए आ रहा था। वह भिलसातक पहुँच चुका था। जब उसे पानीपतपर सर्वनाश होनेका समाचार मिला, तो मानों उसकी जान निकल गई। टूटे हुए दिलसे वह पूनाको वापिस चला गया और वहाँ उसने एक मन्दिरमें जाकर प्राण त्याग दिये।

पानीपतमें विजय प्राप्त करनेका परिणाम तो यह होना चाहिए था कि अहमदशाह हिन्दुस्तानपर स्थायी रूपसे शासन करनेका विचार करता। परन्तु, प्रतीत होता है कि, भारतकी उलझनोंमें फँसनेसे वह घबराता था, इसलिए दो महीने तक दिल्लीमें रहकर वह अपने देशको वापिस चला गया। अहमदके सबसे बड़े हिन्दुस्तानी मित्र, जिन्होंने उसे सहायताके लिए निमन्त्रण दिया था, रुहिल्ले थे। वह आशा रखते थे कि अहमदकी जीतसे उनका दिल्लीमें प्रभाव बढ़ जायगा। परन्तु उन्हें भी निराश होना पड़ा। अहमदशाहने उनसे खूब कसकर हर्ज़ाना लिया और अन्तमें उनका तिरस्कार भी कर दिया। उस समय नज़ीब रुहिल्लाने जो कुटिल नीति वर्त्ती थी उसके कारण सभी शक्तियोंका उसपरसे विश्वास जाता रहा और अन्तमें रुहिल्लोंकी वही दशा हुई जो देशके शत्रुके साथ मिलनेवालोंकी हुआ करती है।

अब्दालीने, और उसके मुसलमान मित्रोंने, समझा था कि पानीपतके मैदानमें मराठा शक्तिकी लाश दफ़ना दी गई है, परन्तु, उनकी यह आशा पूरी न हुई। पानीपतमें मराठोंकी शक्तिको असह्य धक्का तो अवश्य पहुँचा, परन्तु, वह सर्वथा नष्ट नहीं हुई। कुछ समयके लिए तो मराठा सैन्य गोदावरीके उस पार चला गया और अपने सब स्थानोंको खाली कर गया; परन्तु, शीघ्र ही मराठा सरदार फिर उत्तरमें वापिस आ गये, यहाँ तक कि मुग़ल बादशाह शाह आलम मराठा सरदार महादजी सिन्धियाकी संरक्षामें दिल्ली पहुँचकर गद्दीपर बैठा। पानीपतके पश्चात् भी बहुत समयतक मराठा-संघ भारतपर हावी रहा और जब अँग्रेज़ व्यापारी अपनी नीति और बलके प्रयोगसे बढ़ते बढ़ते भारतके आधिपत्यका दावा करने लगे, तब उन्हें अन्तिम फैसला मराठा-शक्तिसे ही करना पड़ा।

मुग़ल साम्राज्यकी लाश तो नादिरशाहने ही दफ़ना दी थी, परन्तु, अहमदशाह

अब्दालीने तो उसे भूगर्भमें ही पहुँचा दिया। उसे भारतके भाग्यका निपटारा करते हुए मुग़लोंसे बात करनेकी भी आवश्यकता न हुई। इसके पश्चात् नाम-मात्रके मुग़ल बादशाह दिल्लीकी गद्दीपर कठपुतलियोंका नाच अवश्य दिखाते रहे, परन्तु, मुग़लोंका साम्राज्य सर्वथा समाप्त हो चुका था। उस समय मुग़ल राज्यकी यदि कोई सीमा खेंची जाती तो शायद उसकी परिधि दिल्लीसे १० मीलकी दूरीसे अधिक आगे न जाती। मुग़ल साम्राज्य पानीपतमें ही प्रारम्भ हुआ था और पानीपतमें ही समाप्त हो गया। बाबरने उसका श्रीगणेश किया था और अहमदशाहने उसकी इतिश्री कर दी। इसके पश्चात् भारतके आधिपत्यके लिए जो संघर्ष जारी रहा उसमें एक ओर अँग्रेज़ और दूसरी ओर बहुत-सी भारतीय शक्तियाँ थीं। मुग़लोंका उसमें कोई हाथ नहीं था। वह भारतके रंगमंचपरसे विदा हो चुके थे।

उपसंहार

१

इस पुस्तकके तीसरे भागकी प्रस्तावनामें हमने लिखा था कि मुग़ल साम्राज्यके उत्थान और पतनका इतिहास एक ऐसी विशेषता रखता है जो इतिहासमें दुर्लभ है। जैसे गैससे भरा हुआ कोई बैलून चढ़ता हो, ऐसे वह चढ़ा; और जैसे सितम्बरमें कोई सितारा गिरता हो, ऐसे गिर गया। चढ़ा तो लगभग सारे देश और उसकी सीमाओंसे बाहर भी छा गया, और गिरा तो कोई टूटी-फूटी निशानी भी न छोड़ गया। जो राजवंश मुग़लोंके छोटे छोटे सामन्त थे, उनके फल-फूल आज भी किसी न किसी रूपमें गद्दियोंपर सजे हुए हैं; परन्तु, मुग़लोंका कोई वंशज आज भारतकी किसी टूटी-फूटी गद्दीपर भी दिखाई नहीं देता। यह नाश नहीं, यह तो प्रलय है।

इतिहासके विद्यार्थीके लिए मुग़ल साम्राज्यके क्षयका इतिहास विशेष महत्त्व रखता है। वह इतिहासके पाठसे मनुष्य जातिका शासन करनेवाले मूल सिद्धान्तों तक पहुँच सकता है। इन पृष्ठोंमें पाठकोंने एक ऐसी दुःखान्त कहानी पढ़ी है जो मनोरंजक और करुणाजनक होनेके साथ ही साथ संसारकी शासक जातियोंके लिए शिक्षाप्रद भी है। यों तो वह कहानी स्वयं अपनी व्याख्या है। जिस

कारणसे जो कार्य पैदा हुआ, वह बिलकुल स्पष्टतासे दिखाई देता है; और हमने यत्न भी किया है कि कहानीको कुछ काटकर भी कार्य-कारण भावकी ओर ध्यान दिला दिया जाय, परन्तु फिर भी, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कहानीकी समाप्तिपर थोड़ेसे शब्दोंमें उन कारणोंका संक्षेपमें विवेचन किया जाय जिन्होंने मुग़ल साम्राज्यके विशाल और शानदार भवनको गिराकर ऐसा मिट्टीमें मिलाया कि खंडहर भी शेष नहीं रहे।

२

मुग़ल साम्राज्यके नाशका सबसे प्रथम और मूल कारण यह था कि वह 'साम्राज्य' था। राज्य और साम्राज्यमें मुख्य भेद यही है कि जहाँ 'राज्य' शासनकी मूल इकाई है वहाँ साम्राज्य कई इकाइयोंका ऐसा मेल है जिसमें एक मुख्य और शेष गौण रहें। साम्राज्यका निर्माण ९९ फीसदी दशाओंमें तलवारद्वारा होता है। एक व्यक्ति या एक जाति छलबलद्वारा दूसरी जातियों और राज्योंका अधिकार छीनकर उनपर अपनी सत्ता जमानेमें सफल हो जाती है, और इस प्रकार साम्राज्यका जन्म होता है। साम्राज्य पाशविक बलका सबसे बड़ा आविष्कार है। वह तलवारकी शक्तिका सबसे उग्र नमूना है।

साम्राज्यमें जन्मसे ही कुछ ऐसी विशेषतायें विद्यमान रहती हैं जो उसके नाशका कारण बनती हैं। साम्राज्यमें जो व्यक्ति, जो श्रेणी या जो जाति मुख्य हो वह संसारके सब ऐश्वर्यका उपभोग करे और शेष अधीन और ग़ुलाम होकर रहें, यह ऐसी अस्वाभाविक परिस्थिति है कि स्थायी रूपसे उसका रहना असम्भव है। १०६ दर्जेका बुख़ार मनुष्यके लिए एक अस्वाभाविक वस्तु है। कुछ समयके लिए मनुष्य उसे सह सकता है; परन्तु, चिरकालतक उतने बुख़ारका अभिप्राय मौत है। इसी प्रकार मनुष्य और मनुष्यमें, जाति और जातिमें सम्पूर्ण और निरपेक्ष अन्तर सर्वथा अस्वाभाविक वस्तु है जो देर तक जारी नहीं रह सकता। उसका अन्त होना ही चाहिए।

एक और भी कारण है जिससे साम्राज्य देरतक जीवित नहीं रह सकते। जो व्यक्ति या जाति दूसरोंको जीतकर साम्राज्यकी स्थापना करनेमें सफल हो जाय, मान लेना चाहिए कि, उसमें कोई न कोई असाधारण गुण होंगे। वीरता, सहन-शक्ति, समुदाय-शक्ति, शारीरिक बल और युद्ध-कला आदिकी सहायताके बिना साम्राज्यकी स्थापना नहीं हो सकती। मुख्य श्रेणी या जातिमें इन गुणोंका होना

आवश्यक है। प्रकृति अपनी सत्ताको अपने ही साधनोंद्वारा मृत्युसे बचा लेती है। यह साम्राज्यकी विशेषता है कि वह जन्म-कालसे ही अपने नाशके सामान पैदा करने लगता है, क्योंकि, एक श्रेणीका दूसरी श्रेणीपर शासन प्रारम्भ होते ही शासन करनेवाली श्रेणी अपने उन गुणोंको खोने लगती है जिन्होंने उसे साम्राज्य बनानेके योग्य बनाया था। साम्राज्यसे मुख्य श्रेणीके पास धन-दौलतकी मात्रा बढ़ जाती है और हुकूमतका अभिमान हो जाता है जिससे विलासिताकी ओर झुकाव होता है, लोभकी मात्रामें वृद्धि हो जाती है और लूटके मालको हथियानेकी लालसासे परस्पर फूट पैदा हो जाती है। अभिमान, विलासिता और लोभ, यह तीन रोग हैं जो साम्राज्यके आवश्यक परिणाम हैं। साम्राज्य करनेवाली श्रेणी इनसे देरतक नहीं बच सकती, और यही रोग हैं जो अन्तमें साम्राज्य करनेवाली श्रेणीके नाशका कारण बनते हैं। उनका और साम्राज्याधिकारका अटूट सम्बन्ध है। साम्राज्यके परिणाम लोभ, विलासिता और अभिमान हैं, और उनका फल नाश है। इस तरह श्रेणीपर श्रेणीके या जातिपर जातिके अस्वाभाविक अधिकारको प्रकृति अपने ही नियमोंद्वारा कुछ समय लेकर समाप्त कर देती है। इतिहास बतलाता है कि साम्राज्यसे शासित होनेवाली श्रेणियोंकी उतनी हानि नहीं होती जितनी शासन करनेवाली श्रेणियोंकी; क्योंकि, शासन करनेवाली श्रेणियोंमें कुछ ऐसी बुराइयाँ आ जाती हैं जो उनके सर्वनाशका कारण बन जाती हैं। संसारके सब साम्राज्योंका इतिहास उपर्युक्त स्थापनाकी पुष्टि करता है। रोमके विशाल साम्राज्यका इतिहास पढ़िए। उससे यही परिणाम निकलता है कि साम्राज्यकी सत्ताके अन्दर ही ऐसे कीटाणु विद्यमान हैं जो समय पाकर रोगका रूप धारण कर लेते हैं और अन्तमें साम्राज्यको ले डूबते हैं। रोमकी उन्नति रोमनिवासियोंकी स्वाधीन प्रकृति, वीरता और राजनीतिक प्रतिभाके कारण हुई। अन्य जातियोंपर शासन करनेसे कालान्तरमें उनके हृदयोंमेंसे स्वाधीनताका प्रेम निकल गया; सुख-समृद्धिके कारण विलासिता आ गई जिससे वीरतापर जंग लग गया; और पराधीन जातियोंपर शासन करनेसे राजनीतिक विवेक भी धुँधला पड़ गया। परिणाम यह हुआ कि अन्दरकी फूट और बाहरके शत्रु हावी हो गये, और, जो रोमन साम्राज्य किसी दिन भूगोलव्यापी होनेकी धमकी दे रहा था, वह नाम-शेष ही रह गया। साम्राज्योंके उदय और अन्तका इतिहास नीतिकारके निम्न-लिखित वाक्यका सुन्दर उदाहरण है।

अधर्मेणैधते तात ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

अन्यायके बलसे मनुष्य कभी कभी खूब बढ़ता है, तरह तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करता है और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है, परन्तु, अन्तमें मूलसहित नष्ट हो जाता है। पाशविक बलद्वारा किसी दूसरी श्रेणी या जातिके अधिकारोंको छीन कर उनका उपयोग करना एक अन्याय है जो स्वयं अपने आपको तबाह करनेकी शक्ति रखता है। साम्राज्यकी बुनियाद अन्यायपर रक्खी जाती है, इस कारण शीघ्र ही नष्ट होना उसके बीजमें अन्तर्हित है।

३

साम्राज्यकी भावना ही अस्वाभाविक होनेके कारण विनाशकी भावनासे गुथी हुई है, फिर यदि उस साम्राज्यमें देश, धर्म और संस्कृतिकी भिन्नता उग्र रूपसे आ जाय तो नाशकी सम्भावना और भी समीप आ जाती है। इंग्लैण्डका दृष्टान्त लीजिए। जिसे आज इंग्लैण्ड कहते हैं उसमें ब्रिटेन, स्काटलैण्ड और वेल्स, यह तीन प्रदेश सम्मिलित हैं। इनके भिन्न भिन्न राजा थे। कई सदियोंके संघर्षके पश्चात् ब्रिटेनने विजय प्राप्त कर ली और स्काटलैण्ड तथा वेल्स इंग्लैण्डके साथ मिल गये। तीनों प्रदेश धर्म और संस्कृतिकी दृष्टिसे एक थे ही और भाषा भी मिश्रणद्वारा एक ही हो गई। ग्रेट ब्रिटेन एक हो गया परन्तु आयर्लैण्ड धर्म, भाषा, और संस्कृतिकी दृष्टिसे इंग्लैण्डसे अधिक दूर था। उसका धर्म रोमन कैथोलिक है, भाषा गैलिक है और संस्कृति ठेट आयरिश है। इस भिन्नताको इंग्लैण्ड दूर न कर सका और आयर्लैण्डको अलग होना पड़ा।

जिस साम्राज्यमें विजेता और विजित जातियोंमें धर्म तथा संस्कृतिकी भिन्नता देशकी भिन्नताके साथ साथ विद्यमान हो, उसका जीवन चिरकाल तक नहीं रह सकता। ऐसा साम्राज्य उसी हद तक कायम रह सकता है जिस हद तक विजित जाति ऊपर कही हुई भिन्नताओंको हल्का करनेमें समर्थ हो सके। विजेता और विजितका भेद मिट जानेसे ही विजय स्थायी रह सकती है, अन्यथा नहीं। मुग़ल साम्राज्यके इतिहासमें यह सचाई बिल्कुल स्पष्ट है। अकबरने विजयी और विजेताके भेदको मिटानेका यत्न किया। उस यत्नमें उसे जितनी सफलता मिली, मुग़ल साम्राज्यको उतनी ही स्थिरता प्राप्त हुई। जब अकबरके उत्तराधिकारियोंकी नीति बदल गई, और, विजेता और विजितके भेद-भावको बढ़ानेका उद्योग किया गया, तब साम्राज्यने विनाशका रास्ता लिया।

स्पष्ट है कि यदि विजेता और विजितमें धर्म, भाषा और संस्कृतिसम्बन्धी भेद अधिक होंगे तो साम्राज्यकी बुनियादें बहुत निबल होंगी। भारतमें मुसलमान राजवंशोंकी निर्बलताका यही मुख्य कारण था कि वह शासनके इस मौलिक उसूलको नहीं समझते थे। न तो वह इतने समझदार थे कि शासनके हितमें अपने मज़हबी कट्टरपनको हृदयसे निकाल सकते, और न वह इतने शक्तिशाली थे कि हिन्दुस्तानके निवासियोंको बिल्कुल अपने रंगमें रंग लेते। इस्लाम कई देशोंमें पूरी तरह कामयाब हुआ। देशके देश इस्लामके झण्डेतले आ गये और झगड़ा खत्म हो गया, परन्तु, भारतवर्षमें उसे पूरी क्या अधूरी सफलता भी नहीं मिली, क्योंकि, लगभग ८०० वर्षतक भारतके बड़े भागमें शासन कर चुकनेपर भी वह कठिनाईसे देशके चौथे भागको मुसलमान बना सका। न तो मुसलमान विजेता पूरे हिन्दुस्तानके बन सके, और न उसे पूरा अपना बना सके। यही कारण था कि मुसलमान बादशाहोंके एक वंशके पीछे दूसरे वंश आये और चले गये, पर किसीकी जड़ गहराईतक न गई। केवल अकबरने शासनके अमर उसूलको समझकर हिन्दुस्तानियोंको अपना बनानेकी चेष्टा की। उसे पूरी सफलता तो नहीं मिली, परन्तु, जितनी सफलता मिली, मुग़ल साम्राज्यकी आयु उतनी ही बढ़ गई। अकबरके दो उत्तराधिकारियोंने उस नीतिको यथाशक्ति जारी रक्खा। फलतः साम्राज्य भी बढ़ता और शक्तिशाली होता गया। अन्तमें वह समय आया कि औरंगज़ेबने अकबरकी नीतिको पलटनेका बीड़ा उठाया और अपने जीवन-कालमें ही बहुत-कुछ बदल डाला। जिस कुनबेको अकबरकी दूरदर्शिताने जोड़ा था, उसे औरंगज़ेबकी अनुदार नीतिने थोड़े ही समयमें तितर-बितर कर दिया। धर्म और संस्कृतिके दबते हुए भेद फिरसे उभर आये और जो रोगके कीड़े पलकर बड़े होनेमें १० साल लेते वह औरंगज़ेबकी कट्टर मज़हबी नीतिसे खुराक लेकर बड़ी तीव्रतासे मज़बूत हो गये और सारे राष्ट्रके शरीरमें फैल गये।

४

एकसत्तात्मक राज्य, और वह भी ऐसा कि जिसमें उत्तराधिकारके नियम कानून या रिवाजद्वारा निश्चित नहीं, कभी चिरस्थायी नहीं हो सकता। एक-सत्तात्मक राज्यमें राजाकी अच्छाई या बुराई एक ही आदमीके गुण-दोषोंपर आश्रित रहती है। व्यक्तिके साथ नीति बदलती रहती है। चिरकालतक कोई

नीति स्थिर नहीं रह सकती । तेजस्वी शासक हुआ तो राज्यका काम अच्छा चल गया, यदि शासक निर्बल हुआ तो दीवाला निकल गया । एक वंशके सब व्यक्ति तेजस्वी और समर्थ ही हों, यह सम्भव नहीं । यही कारण है कि कोरा एकसत्तात्मक राज्य देरतक कायम नहीं रह सकता ।

यदि कहीं उस एकसत्तात्मक राज्यमें उत्तराधिकारका नियम अनिश्चित हो, तब तो कहना ही क्या है । यदि उत्तराधिकारका निश्चय कानून या रिवाज़द्वारा हो जाय, तो राज्य बहुतसे भूकम्पोंसे बच जाता है । एक राजा मरा, दूसरा उसके स्थानपर बैठ गया । प्रजाके लिए मानो राजा मरा ही नहीं । परन्तु, यदि हरेक राजाके मरनेपर गद्दीके उम्मेदवारोंको यह निश्चय करना हो कि गद्दीपर कौन बैठे, तो घरू युद्धका ऐसा चक्र चलता रहता है कि उसका कहीं विच्छेद नहीं होता । एक राजाके बैठते ही वह सब लोग अपनी अपनी मोर्चाबन्दी करने लगते हैं जो उसके पीछे अपना दावा करनेवाले हैं । राजकुमारों और शाहज़ादोंका तो काम ही एक रह जाता है कि रात-दिन ऐसे साथी तलाश करें, और ऐसे ढंग काममें लायें, जिनसे वर्त्तमान शासकके जीते-जी या मरनेपर गद्दीपर उनका कब्ज़ा हो सके । गुप्त रूपसे या प्रकाश रूपसे ऐसे राज्योंमें सदा घरू संग्राम बना रहता है, और, यह निश्चित बात है कि, राज्यकी स्थिरताका गृह-संग्रामसे बढ़कर कोई शत्रु नहीं ।

उपर्युक्त अलग अलग तीनों कारण राज्योंका नाश करनेके लिए पर्याप्त हैं, फिर यदि वह सब इकट्ठे हो जायँ, तो, यह आश्चर्यकी बात नहीं कि वह राज्य नष्ट क्यों हुआ ? आश्चर्य यही है कि वह इतनी देरतक चला कैसे ? मुग़ल साम्राज्यकी बुनियादमें वह सभी विशेषतायें विद्यमान थीं जिनकी हमने ऊपर विवेचना की है । वह एक साम्राज्य था जिसमें विजेता जाति धर्म, भाषा और संस्कृतिकी दृष्टिसे विजित जातिसे बहुत भिन्न थी । यदि कोई ऐसा मार्ग निकल आता कि वह भेद-भाव मिट जाता,—या तो मुग़ल बादशाह हिन्दू धर्म और भारतीयताको स्वीकार कर लेते, या वह हिन्दुस्तानके निवासियोंको मिसर, फारिस और अफ़ग़ानिस्तानके निवासियोंकी तरह मुसलमान बना लेते,—तो इतिहासकी यात्रा किसी और ही प्रकारसे चलती । परन्तु ऐसा न हो सका । विजेता और विजितका भेद विद्यमान रहा, प्रत्युत औरंगज़ेबके समयसे वह और भी अधिक बढ़ता गया । एकसत्तात्मक राज्य था, उसमें भी उत्तराधिकार अनिश्चित था,

–अस्थिरताके सब कारण पूरी उग्रतासे विद्यमान थे, तब तो यही आश्चर्य है कि मुगल साम्राज्य इतने दिनोंतक चला कैसे ?

५

मुगलोंसे पूर्व जिन मुसलमान राजवंशोंने भारतमें राज्य किया उनका जीवनकाल बहुत ही थोड़ा था। मुहम्मद गौरी पहला मुसलमान बादशाह था जिसने दिल्लीपर पूरा अधिकार किया; और, उसका सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक पहला बादशाह था जिसने दिल्लीकी गद्दीपर बैठकर शासन किया। वह ऐबक वंशका संस्थापक था। इस वंशने १३ वीं सदीके प्रारम्भमें राज्य आरम्भ किया और आगामी लगभग २५० वर्षोंमें हम दिल्लीके चित्रपटपर पाँच राजवंशोंको छाया-चित्रोंकी तरह गुजरता हुआ देखते हैं। ऐबक, खिल्जी, तुगलक, सय्यद और लोदी वंश आते हैं, कुछ वर्षोंतक शासन करते हैं, और आनेवाले दूसरे वंशमें विलीन हो जाते हैं। अढ़ाई सौ सालमें पाँच राजवंश ! ५१ वर्षकी औसत भी नहीं है।

भारतमें मुगल राज्यका प्रारम्भ हम पानीपतके उस युद्धसे करते हैं जो १५२६ के अप्रैल मासमें लड़ा गया। उसमें लोदी वंशका अन्त हो गया और मुगल बादशाह बाबर दिल्लीका स्वामी बना। यों तो मुगल वंशका अन्त नादिर-शाहके भारतसे विदा होनेके साथ ही हो गया था, परन्तु, यदि बहुत रियायतसे काम लिया जाय तो हम कह सकते हैं कि दिल्लीकी गद्दी मुगल बादशाहसे उस समय खाली हो गई जब अहमदशाह अब्दालीके भारतमें आनेका समाचार सुनकर साम्राज्यके वज़ीर गाज़िउद्दीनने बादशाह आलमगीरको मार डाला,—जिस समय १७६१ में मराठे और अफ़गान पानीपतके मैदानमें भारतकी हुकूमतके लिए लड़ रहे थे उस समय दिल्लीका सिंहासन मुगल बादशाहसे खाली था। उसके पश्चात् दिल्लीमें 'मुगल' नामधारी बादशाह दिखाई देते रहे, परन्तु, न कोई साम्राज्य था और न कोई उसका बादशाह था। वह बादशाह नहीं थे, वह तो मिट्टीके खिलौने थे जिनके नामपर महत्त्वाकांक्षी सरदार हुकूमत करनेकी चेष्टा करते थे। १५२६ से १७६१ तक सवा दो सौ साल होते हैं। जितने वर्षोंमें पाँच राजवंश पैदा होकर मर गये, उतने समय तक अकेला मुगल वंश जीवित रहा। राज्यकी अस्थिरताके सब कारणोंके होते हुए भी मुगल वंश दो सौ से अधिक वर्षोंतक कैसे स्थिर रह गया, यही आश्चर्यकी बात है।

६

अन्य मुसलमान राजवंशोंको अपेक्षा मुग़ल वंशने अधिक समयतक राज्य किया, इसके अनेक कारण थे। पहला कारण बाबरके कुलकी व्यक्तिगत महत्ता थी। उस कुलमें चंगेज़ख़ाँ और तैमूरके वंशोंका रक्त मिला हुआ था। बाबरको ही लीजिए। उसका व्यक्तित्व असाधारण था। उसमें व्यवहार और कलाका, ठोस धैर्य और कल्पनाका, अद्भुत मेल था। वह शासक भी था, योद्धा भी था, कवि भी था और सुन्दरता-प्रेमी भी था। न तो वह अलाउद्दीन ख़िल्जीकी तरह केवल अक्खड़ सिपाही था और न मुहम्मद तुग़लककी तरह व्यवहार-बुद्धिशून्य सपने लेनेवाला फिलासफ़र। शरीरसे बलिष्ठ और असाधारण वीर होनेके साथ साथ वह संसारकी सुन्दरताको पहिचाननेवाला प्रतिभाशाली लेखक भी था। उसमें दिल और दिमाग़ दोनोंका मेल था।

उसकी सन्तान भी उसके अनुरूप ही हुई। हुमायूँकी इच्छा-शक्ति कुछ निर्बल थी और वह भाग्योंका भी कमज़ोर था,—इस कारण वह राज्यको भी पूरी तरह न सँभाल सका, फिर भी, अपने वंशोचित धैर्यकी सहायतासे उसने खोये हुए राज्यको वापिस पा लिया और जब वह नाबालिग़ बेटेपर राज्यका बोझ डालकर परलोकवासी हुआ तब बाबरके स्थापित किये साम्राज्यका उत्तरीय भाग मुग़लोंकी ध्वजाके नीचे आ चुका था।

अकबरके समयसे मुग़ल राज्यका स्वर्ण-काल प्रारम्भ होता है। एकसत्तात्मक राज्यमें शासककी योग्यता ही शासनका जीवन और प्राण है। अकबरका नाम उन कुछेक संसारके सर्वश्रेष्ठ शासकोंकी श्रेणीमें लिखा गया है जो अपनी नीतिज्ञता, दूरदर्शिता और वीरतासे साम्राज्यकी जड़ोंको पाताल तक और उसकी सीमाओंको समुद्रतक पहुँचानेमें सफल हो जाते हैं। वह बाबर—जैसा पढ़ा-लिखा तो नहीं था, परन्तु, उसका दिमाग़ अपने दादासे भी कहीं अधिक विशाल और परिष्कृत था। वह उदार और दूरदर्शी था। विद्वान् न होता हुआ भी विद्वानोंका आदर करना जानता था, मुसलमान होता हुआ भी हिन्दुआके गुणोंको पहिचानता था और उनके दोषोंसे लाभ उठाना जानता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि अकबरने अपने शासन-कालमें विजेता और विजितकी भेद-भावनाको नष्ट करनेका यथाशक्ति यत्न किया और उससे बहुत-सी सफलता भी प्राप्त की। उसने प्रजाको यह समझानेका यत्न किया कि बादशाह भी तुममेंसे एक है,

—तुम्हारा ही है। इस दिशामें उसने क्या किया और उसका क्या परिणाम हुआ, यह इस पुस्तकके प्रथम भागमें भली प्रकार दिखाया जा चुका है।

मुग़ल साम्राज्यको लगभग दोसौ वर्षोंका जीवन प्राप्त हो गया, इसका एक कारण अकबरकी दूरदर्शिता-पूर्ण नीतिकी सफलता थी। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि मुग़ल वंशके बादशाहोंके व्यक्तिगत गुण भी साम्राज्यकी वृद्धिके लिए उत्तरदाता थे।

जहाँगीरमें अनेक दोष थे। उसकी राज्य-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षा अकबरकी अपेक्षा बहुत न्यून थी,—इसमें सन्देह है कि वह थी भी या नहीं। उसकी धारणाओंका केन्द्र इन्द्रियोंका सुख था। राज्यकी उसे वहाँ तक आवश्यकता थी जहाँ तक वह उसकी विषय-वासनामें विघ्नकारी न हो। राज्यके सम्बन्धमें वह अधिक चिन्तन भी नहीं करता था। उसकी चिन्ताके केन्द्र दो थे: नूरजहाँ और शराबकी बोतल। इस निर्बलताके होते हुए भी एक अच्छा काम उसने किया। उसने अकबरकी नीति और पद्धतिमें कोई विशेष भेद नहीं आने दिया, मज़हबी कट्टरपनको भी उसने स्थान नहीं दिया। शायद नीति-परिवर्तन और मज़हब जैसी चीज़ोंपर अधिक सोचनेकी उसे फुर्सत भी नहीं थी। वह अपनी मौजमें मस्त रहा और अकबरकी चलाई हुई गाड़ी अपने रास्तेपर चलती रही। यों जहाँगीर भी वीर था और प्रतिभासम्पन्न था। यदि वह अकबरका उत्तराधिकारी न होता तो शायद इतना निश्चिन्त और आत्मपरायण न होता। उसे एक चलती हुई मशीन मिली थी जो केवल हैण्डलपर हाथ रखनेसे चलती रही और जहाँगीर विषय-भोगमें मस्त रहा।

शाहजहाँ वीर भी था और प्रतिभासम्पन्न भी। जबतक वह प्रौढ़ावस्थामें नहीं पहुँच गया तब तक वह मुग़ल साम्राज्यका अपने समयका सबसे सफल सेनापति समझा जाता था। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय पीछे तक वह ख़ूब चौकन्ना और सफल शासक रहा। उसने भी थोड़े-बहुत अपवादोंके साथ अकबरकी राजनीतिको ही जारी रक्खा। उसने मुग़ल साम्राज्यको दक्षिणकी ओर बढ़ानेका यत्न किया। उसके समयमें उत्तरके शत्रुओंको परास्त करके मुग़ल सेनाने बल्ख़पर अपना झण्डा गाड़ दिया। उसके समयमें मुग़ल बादशाहके राजदूतोंका फारस और अन्य देशोंमें बड़े आदर और आतंकके साथ सत्कार किया जाता था।

शाहजहाँके समयमें मुग़ल साम्राज्य अपनी उच्चतम ऊँचाई तक पहुँच गया

था। अन्य गुणोंके साथ शाहजहाँमें यह भी एक बड़ा गुण था कि वह अपने वैभवको दिखानेकी बुद्धि रखता था। वह बहुत बड़ा निर्माता था। शानदार और सुन्दर इमारतें और बाग़ बनानेका अकबर और जहाँगीरके समान उसे भी शौक था, और शायद कुछ मात्रामें उनसे अधिक शौक था। राज्यमें बहुत-कुछ शान्ति थी। किसान खेती करता था और कारीगर कारीगरीमें लगा था। सम्पत्ति पैदा होती थी और राज्य-कर वसूल करनेवाले मजेमें कर वसूल करते थे जिससे राज्यका ख़जाना भरता जा रहा था। शाहजहाँके समय छोटे-मोटे कई विद्रोह हुए, परन्तु, उनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं था कि देर तक रहता या देशकी सामान्य परिस्थितिपर कोई असर डालता। देशमें प्रायः शान्ति रही जिससे शाही खज़ाना भरता रहा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस बीजको अकबरने बोया था वह शाहजहाँके समय तक फल-फूलोंसे लदे हुए वृक्षके रूपमें परिणत हो चुका था। शाहजहाँने शाहजहानाबादका शहर और किला बनाया, ताजमहलकी आलीशान और संसारमें अनुपम इमारत तैयार की और कई अन्य बाग़ और इमारतें खड़ी कीं। इन सब इमारतोंके बनानेमें करोड़ों रुपया ख़र्च हुआ, फिर भी, हिसाब लगाया गया है कि शाहजहाँके समयमें शाही ख़जानेमें एक समय ३० करोड़ रुपया जमा था। यह धन-राशि देशकी समृद्धिकी सूचना देती है। वह मुग़ल साम्राज्यके पूरे चढ़ावका समय था।

परन्तु उस चढ़ावके समयमें ही उतरावके अनेक चिह्न अंकुरित हो चुके थे। जिनसे मुग़ल साम्राज्यका क्षय होनेवाला था उनमेंसे अनेक कारण बीजरूपमें प्रकट भी हो चुके थे।

७

उत्तराधिकारका झमेला अकबरके समयमें ही आरम्भ हो गया था। शाहज़ादा सलीमको सन्देह था कि गद्दीका उत्तराधिकार मुझे मिलेगा या नहीं। पिताके जीवन-कालमें ही उसने इलाहाबादमें स्वतन्त्रताका दावा खड़ा कर दिया था, अपने नामके सिक्के जारी कर दिये थे और अफसरोंकी नियुक्ति और मुक्तिके सम्बन्धमें आज्ञायें जारी कर दी थीं। वह तो अकबरका तेज था जिसने उसे शाहजहाँकी भाँति बूढ़ा कैदी बननेसे बचा दिया।

जहाँगीरके समयसे तो यह रोग बाकायदा फैल गया। जहाँगीरका बड़ा लड़का

खुसरो सदा मुसीबतमें पड़ा रहा। उसका सबसे बड़ा दोष यही था कि वह अपने भाइयोंमें सबसे बड़ा था और लोकप्रिय था। जहाँगीर अपनी छायासे घबराता था क्योंकि वह स्वयं अपने पिताके साथ द्रोह कर चुका था। वह जन्मभर कैद रहा और अन्तमें उसकी आँखें सीं दी गईं।

दूसरा शाहज़ादा खुर्रम पिताका विश्वासपात्र था। यहाँ तक कि जब खुर्रम दक्षिणके विजयके लिए जाने लगा तो कैदी खुसरो उसके हवाले कर दिया गया। भाईकी कैदमें वह देरतक न जी सका और न जाने कैसे मर गया। अब जहाँगीरकी दृष्टिमें परिवर्तन हो गया और वह शाहजहाँको छोड़कर अपने तीसरे लड़के परवेज़से प्रेम करने लगा। खुर्रमने विद्रोह कर दिया, परन्तु, परास्त हो गया। कुछ समय पीछे जहाँगीरकी मृत्यु हो गई तो शाहज़ादा खुर्रम गद्दीनशीन हुआ; परन्तु, यह बात न भुलानी चाहिए कि गद्दीपर बैठते समय पिताके विरुद्ध विद्रोह और बड़े भाईकी हत्याके पाप शाहजहाँके सिरपर चढ़ चुके थे।

अपने कर्मोंका फल सभीके सामने आता है। वह बुरा दिन था जब जहाँगीरने अकबरके विरुद्ध बग़ावत की थी, क्योंकि, उस दिन मुग़ल साम्राज्यकी क़ब्र खुदनी शुरू हो गई थी। जहाँगीरको अपने कर्मका फल मिला,—शाहजहाँने विद्रोह किया; और शाहजहाँने अपने कर्मोंका फल पाया,—क्योंकि औरंगज़ेबने न सिर्फ विद्रोह किया उसने पिताको कैद भी कर लिया।

औरंगज़ेबके समय घरकी फूटका बाज़ार पूरी तरह गर्म हो गया। औरंगज़ेबने सब भाइयोंको परास्त करके अपनी महत्त्वाकांक्षाकी बलिवेदीपर चढ़ा दिया, परन्तु, इससे उसके हृदयमें शान्ति नहीं हुई।—जीवन-भर वह अपने पुत्रोंसे उद्विग्न रहा। बेचारोंने अपनी जवानी शाहज़ादा होनेके अपराधका फल भोगनेमें ही गुज़ारी। वे प्रायः सन्देहके पात्र बने रहे या जेलमें सड़ा किये, अथवा कहीं दूरके संग्रामोंमें भेजे गये। हरेक राजपुत्र अपनेको राज्यका अधिकारी समझता था, हरेक अपने पक्षमें षड्यन्त्र करता था और हरेक दुःख पाता और दूसरोंको दुःख देता था,—और इस अव्यवस्थाकी दलदलमें फँसकर साम्राज्यके प्राण संकटमें पड़ रहे थे।

घरू युद्धसे कई प्रकारकी हानि थी। साम्राज्यकी जो शक्ति शत्रुओंसे लड़नेमें खर्च होनी चाहिए थी वह गृह-कलहमें क्षीण हो जाती थी। शाहज़ादोंको अपने मातहत सरदारोंसे सहायता माँगनी पड़ती थी जिससे राजवंशका गौरव नष्ट होता था और गद्दीपर बैठकर भी बादशाह बँधुआ-सा बना रहता था। इस

गृह-कलहका बीजारोप जहाँगीरके समयमें ही हो गया था। ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया यह रोग बढ़ता गया, यहाँ तक कि अन्तमें मुग़ल बादशाह केवल कठपुतली रह गये और उनके मददगार राज-निर्माताकी पदवी पाकर राज्यके असली मालिक बन गये।

८

हम देख आये हैं कि अकबरने अपनी उदार नीतिसे जिस साम्राज्यको बहुत दृढ़ बुनियादपर खड़ा किया था, औरंगज़ेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिने उसे इस ज़ोरका धक्का दिया कि उसकी नींवें नीचे तक हिल गईं। असलमें इस बुराईका बीजारोप भी शाहजहाँके समय हो गया था। यदि शाहजहाँके पीछे औरंगज़ेब गद्दीपर न बैठता तो शाहजहाँ काफी कट्टर मुसलमान समझा जाता। गद्दीपर बैठनेसे पूर्व और कुछ समय पीछे तक भी शाहजहाँको इस्लामकी काफी धुन रही। उन दिनों पंजाब और काश्मीरमें हिन्दू और मुसलमानोंके पारिवारिक सम्बन्ध बहुत गहरे हो गये थे। उनमें आपसमें शादी-विवाह होते थे। शाहजहाँने शाही फरमानद्वारा केवल ऐसी शादियोंको बन्द ही नहीं किया, बल्कि, उससे पूर्व मुसलमानोंकी जितनी लड़कियाँ शादीद्वारा हिन्दुओंके यहाँ जा चुकी थीं, उन्हें भी इस्लाममें वापिस करा दिया। तबलीग़का काम भी शाहजहाँको बहुत प्यारा था। उसके हुक्मसे लोभ और डर दोनोंका प्रयोग करके हजारों हिन्दुओंको मुसलमान बनाया गया। जिन सरदारोंके मज़हबी विचार इस्लामकी दृष्टिसे कुछ भी शिथिल समझे जाते थे उन्हें तुरन्त ओहदेसे हटा दिया जाता था। हिन्दू मन्दिरोंके तोड़ने या अपवित्र करनेका जो काम जहाँगीरके समय हल्के रूपमें प्रारम्भ हुआ था वह शाहजहाँके समयपर जोर पकड़ गया था। बनारसके अधिकांश मन्दिर शाहजहाँके समयमें ही तोड़े गये। १६३२ में शाहजहाँने हुक्म निकाल दिया था कि कोई नया मन्दिर न बनाया जाय और न पुराने मन्दिरोंकी मरम्मत करवाई जाय। शाहजहाँने हिन्दुओंके विरुद्ध और भी कई आज्ञायें निकाली थीं जिनमेंसे एक यह थी कि वह मुसलमानोंकी तरहके कपड़े न पहिन सकें। इस प्रकार हिन्दू-विरोधिनी नीतिका सूत्रपात शाहजहाँके समयमें ही हो गया था, यद्यपि शाहजहाँकी दूरदर्शिता और आमोदप्रियताने राज्यकी नीतिपर और शासनपर उसका गहरा असर नहीं होने दिया था। परन्तु, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि

अकबरकी उदार और दूरदर्शितापूर्ण नीतिकी जड़ोंपर कुल्हाड़ा तो जहाँगीरके समयमें ही रख दिया गया था और शाहजहाँने तो साम्राज्य-रथकी गतिको बदलनेमें पर्याप्त हिस्सा लिया था।

औरंगज़ेबकी धर्मान्धता-पूर्ण राजनीतिने साम्राज्यमें दो प्रकारकी फूट पैदा कर दी। एक तो उसने हिन्दू-मात्रको साम्राज्यका शत्रु बना दिया और दूसरे उसने शिया सम्प्रदायके मुसलमानोंकी सहानुभूति सर्वथा खो दी। औरंगज़ेब स्वयं कट्टर सुन्नी था; और, जो कुछ वह स्वयं था उसके सिवा भी दुनियामें कोई ठीक चीज़ हो सकती है, यह समझना उसके लिए असम्भव था। वह शिया सम्प्रदायके लोगोंसे घृणा करता था, उन्हें पतित समझता था और इसी कारण उन्हें सल्तनतके उत्तरदायित्व-पूर्ण कामोंसे अलग रखता था।

औरंगज़ेबके पीछे कई बादशाहोंने यत्न किया कि उदार धार्मिक नीतिको स्वीकार करके हिन्दुओंके फटे हुए दिलोंको सीं दें, परन्तु, औरंगज़ेबके किये हुए घाव इतने गहरे थे और पीछेके मुग़ल इतने निर्बल थे कि उस खाईको न पाट सके जो धर्मान्धतापूर्ण नीतिसे पैदा हो गई थी। हिन्दुओंका जो विद्रोह औरंगज़ेबके समय शुरू हुआ था वह बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि अन्तमें वह दिल्ली तक छा गया। हमने देखा है कि जिस समय अहमदशाह अब्दाली पानीपतके मैदानमें हिन्दुस्थानसे लड़ रहा था उस समय दिल्लीकी गद्दीपर कोई मुगल बादशाह नहीं था, दिल्लीकी रक्षाके लिए जो लोग युद्ध करते थे वह मराठे हिन्दू थे।

शिया मुसलमानोंके साम्राज्य-विरोधी हो जानेका परिणाम भी अच्छा नहीं हुआ। जब कभी संकटका समय आया, शिया लोगोंकी सहानुभूति राज्यके विरुद्ध ही रही। या तो वह लोग अवधके शिया नवाबोंकी नौकरीमें चले गये, अथवा असन्तुष्ट होकर शासनके स्तम्भोंको जर्जरित करते रहे।

९

एक विदेशी और विधर्मी शासकके सामने दो ही मार्ग खुले हैं। या तो वह जिस जातिपर शासन करता है, उसके साथ एक-रूप हो जाय और यदि ऐसा न कर सके तो देशके बाहरसे आये हुए लोगोंका ऐसा फौलादी ढाँचा तैयार करे कि जो आसानीसे तोड़ा न जा सके। अकबरने यत्न किया था कि विजेता और विजित दीने इलाहीकी रस्सियोंसे बँधकर एकरूप हो जायँ, परन्तु, वह एक सुन्दर सपना था जो सपनेकी ही तरह विलीन हो गया। दोनों एक-रूप न हो सके।

तब दूसरा मार्ग यह था कि सारा मुग़ल साम्राज्य कुछ थोड़ेसे विदेशसे आये हुए मुसलमान अफसरोंके फौलादी ढाँचेके भरोसेपर चला या जाता। वह बात भी न रही। अकबरके पीछे उत्तर दिशासे नये लोगोंकी भर्ती बहुत कम हो गई जिसके अनेक कारण थे। भर्ती दो ही कारणोंसे जारी रह सकती थी। या तो आनेवाले लोग लूट-मारकी आशासे आते, या राज्यसे बड़ी बड़ी नौकरियाँ पानेकी आशासे। राज्यके सुव्यवस्थित हो जानेसे लूट-मारकी तो कोई आशा नहीं रही थी। शेष रह गई नौकरीकी। कई ऊँचे ओहदे तो हिन्दुओंको मिल गये जिससे नये आदमियोंकी गुंजायश नहीं रही, और शेष नौकरियोंपर जो मुसलमान जमे हुए थे, वह हटना नहीं चाहते थे। हिन्दुस्तानी मुसलमानोंका एक ऐसा दल बन गया था जो नये आगन्तुकोंके लिए सुगमतासे स्थान खाली करनेको तैयार नहीं था। ऐसी दशामें उत्तर दिशासे नई भर्ती रुक गई, और शासनके फौलादी फ्रेममें कमजोरी आने लगी।

भारतवर्षके मलेरियाग्रस्त प्रदेशोंकी एक विशेषता है। वह नवागन्तुक मनुष्यके शरीरको धीरे धीरे शिथिल कर देते हैं। गर्म और नमीकी वायु, मलेरिया-ज्वरका असर और सुलभ स्वादु भोजनोंका असर यह होता है कि शरीर अधिक थकानके सहने योग्य नहीं रहता। जिन लोगोंकी कुल-परम्परा ही इस जल-वायुमें पली है, उनपर कोई असाधारण असर नहीं होता, परन्तु ठण्डे देशोंसे आनेवाले लोग यदि स्थायी रूपसे इस जल-वायुमें रहें, तो उनमें क्षीणता आये बिना नहीं रहती। मुसलमानोंकी भी यही दशा हुई। दो सन्ततियाँ गुज़रनेसे पूर्व ही उनमें विलासिता और प्रमादके ऐसे कीटाणु प्रवेश कर जाते थे कि उनकी दशा देशके पुराने निवासियोंसे भी अधिक बिगड़ जाती थी।

अकबरके पीछे उत्तर दिशासे नये खूनका आगमन प्रायः रुक-सा गया था। जो मुसलमान सिपाही विजेताओंके साथ आये थे, वह भारतमें बस गये थे। वह हिन्दुस्तानी मुसलमान कहलाते थे। नये आगन्तुक मुसलमानोंको ऊँचे ओहदोंतक पहुँचनेमें हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके सिरोंपरसे लाँघना पड़ता था। हिन्दुस्तानी मुसलमान शारीरिक दृष्टिसे अन्य हिन्दुस्तानियोंसे कुछ अधिक भिन्न नहीं थे। औरंगज़ेबके पीछे धीरे धीरे हिन्दू शासनके कामसे अलग होते गये, जिसका परिणाम यह हो गया कि साम्राज्यका आधारभूत वह फौलादी ढाँचा निर्बल होता गया जिसके बिना कोई ऐसा शासन नहीं चल सकता, जिसकी जड़ें प्रजाके हृदयोंकी गहराईमेंसे अपनी खुराक न ले सकें।

१०

हम देख चुके हैं कि मुग़ल राज्यके नाशका एक बड़ा कारण यह था कि भारतमें आनेके थोड़े ही समय पीछे ऊँचे दर्ज़ेके मुसलमान सरदार विलासिता और आरामतलबीमें फँसकर बहुत निर्बल हो गये थे। यह रोग भी बीजरूपमें प्रारम्भसे ही विद्यमान था और स्वयं मुग़ल वंश ही इसका जन्मदाता था। बाबरको ही लीजिए। उसमें अनेक गुण थे, परन्तु शराबके पीनेमें वह किसीसे पीछे न था। उसका प्रकृति-प्रेम मदिरा-प्रेमका हमजोली बना हुआ था। फतेहपुर सीकरीमें जब राणा साँगाके तीरोंने उसका नाकमें दम कर दिया, तब खुदाको प्रसन्न करनेके लिए उसने शराबकी बोतलें और प्याले तोड़ दिये थे, परन्तु युद्धके जीत जानेपर बोतलें भी वापिस आ गईं और प्याले भी। शराबके सिन्धु फिर बहने लगे।

अकबर बड़ा समझदार और दूरदर्शी शासक था। उसमें अनेक और परस्पर-विरोधी गुण-अवगुणोंका समन्वय था। वह दयालु भी था और क्रूर भी। साधारण दशामें दयावान् था, परन्तु उत्तेजित दशामें क्रूर हो जाता था। वह संयमी भी था और विलासी भी। उसकी विलासिता ऐसी सीमामें बँधी हुई थी कि वह कभी उसके राज-कार्यमें विघ्नकारी नहीं होती थी। वह शराब पीता था, परन्तु सम्भवतः उसका नशा कभी गलेसे ऊपर नहीं पहुँचा। इन्द्रिय-सुख और विषय-भोगका उसने त्याग नहीं किया था, परन्तु, उनमें वह कभी इतना लिप्त नहीं हुआ कि सम्राट्के कर्त्तव्यको भूल जाय।

जहाँगीरके जीवन-कालमें मुग़ल सम्राट्की जीवन-यात्रा बहुत-कुछ बदल गई। शराब, राग-रंग और विषय-भोगको शासनके अन्य कार्योंके समान ही सार्वजनिक रूपसे अंगीकार किया गया और वह सीमायें टूट गईं जो अकबरकी सहायता किया करती थीं। जरा जहाँगीरकी दैनिक-चर्यापर दृष्टि डालिए; वह दिन चढ़े उठता था। थोड़ी देर तस्बीह फेरनेके पश्चात् प्रजाको दर्शन देता था और उसके पश्चात् दो घण्टोंके लिए सो जाता था। दोपहरके समय खाना खाकर कई घण्टोंके लिए हरममें चला जाता था। दोपहर बाद दरबार होता था और हाथियोंकी लड़ाई आदि मनोरंजनका सामान किया जाता था जिसके पश्चात् फिर भोजनका समय आ जाता था। भोजनके साथ केवल उतनी शराब पी जाती थी जो खानेको पचानेके लिए पर्याप्त हो, परन्तु, भोजनसे उठकर एक अलग

कमरेमें दोस्तोंके साथ शराबका जो दौर शुरू होता था उसमें बादशाह पाँच प्याले चढ़ाता था, क्यों कि, हकीमने इतने ही प्यालोंकी सलाह दे रक्खी थी। शराबके पीछे अफीमकी बारी आती थी। अफीमसे नींद आ जाती थी जो तब तोड़ी जाती थी जब रातका खाना तैयार हो जाता।

यह तो थी साधारण दिनचर्या, परन्तु जब कभी महफिल जमती थी और शराबका दौर चलता था, तो जहाँगीर उसमें सिर तक डूब जाता था। प्रायः उसे बेहोशीकी हालतमें उठाकर चारपाईपर डालना पड़ता था। इस शराबकी बुरी आदतने उसकी इच्छा-शक्तिको इतना तोड़ दिया था कि जीवनके उत्तर भागमें वह नूरजहाँका गुलाम बनकर ही रहा। सल्तनतका कारोबार नूरजहाँकी इच्छासे होता था। जहाँगीर तो केवल नूरजहाँका आज्ञाकारी सेवक था।

शाहजहाँ अपने पूर्व जीवनमें बहुत ओजस्वी और दूरदर्शी योद्धा और राजनीतिज्ञ समझा जाता था, परन्तु, गद्दीपर बैठनेके कुछ समय पीछे साम्राज्यके ऐश्वर्यने उसे विलासिताकी ओर झुका दिया। उसकी लगभग जहाँगीर जैसी दशा हो गई, भेद इतना ही था कि जहाँ जहाँगीरके कामको सँभालनेके लिए नूरजहाँ थी वहाँ शाहजहाँका कोई वाली-वारिस नहीं था। वह केवल अपने लड़कोंपर झुककर बुढ़ापा काटना चाहता था और दुर्भाग्यवश लड़के इस योग्य न निकले कि उसके बुढ़ापेको सुखी बना सकें। शाहजहाँका बुढ़ापा एक विषयासक्त मधुर प्रकृतिवाले सुखार्थीका बुढ़ापा था, ओजस्वी विजेताका बुढ़ापा नहीं।

औरंगज़ेब मुग़ल बादशाहोंकी आचार-सम्बन्धी कई बुराइयोंसे शून्य था, परन्तु, उसने उन बुराइयोंको दूर करनेका जो उपाय प्रयुक्त किया वह उनसे भी बुरा था। यदि उसकी आज्ञाओंका प्रेरक कारण सरदारों और प्रजाके आचरणोंका सुधार होता तो कुछ लाभकी सम्भावना थी, परन्तु, उसका हृदय मज़हबी कट्टरपनसे भरपूर था। उसने जो परिवर्तन करने चाहे उनका निमित्त धर्मान्धता थी, सुधारणा नहीं। परिणाम यह हुआ कि उतना सुधार न हुआ जितना बिगाड़ हो गया।

औरंगज़ेबके पीछे तो मुग़ल-वंशजोंके चरित्र बहुत ही निर्बल और गँदले हो गये। न उनमें शक्ति रही और न शुद्धता। यथा राजा तथा प्रजा। प्रारम्भसे ही मुग़ल बादशाहोंके चाल-चलनका असर उनके सरदारोंपर पड़ता रहा। जैसे बादशाह रहता था, सरदार भी उसी ढँगसे रहनेमें बड़ाई समझते थे।

जहाँगीरके समयमें भारतके विदेशी यात्रियोंने देखा कि हरेक नवाबका महल बादशाहके महलका जेबी संस्करण बना हुआ है। शाहजहाँके समय तक पहुँचते पहुँचते बाबरके साथ आये हुए कठोर और बहादुर सिपाहियोंके वंशज मद्य और प्रमदाके गुलाम बनकर युद्ध-क्षेत्रके लिए निकम्मे हो चुके थे। उनमें स्वार्थ और प्रमादने इतना घर कर लिया था कि उनके हृदयोंमें बादशाह और सल्तनतका हित गौण और अपना हित ही मुख्य हो गया था। उन्हें राज्यकी या प्रजाकी रक्षाकी उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी अपने ओहदे और धनकी।

जो राज्य नींवके विना खड़ा हो, जिसमें विजेता और विजितकी भिन्नता स्पष्ट दिखाई दे रही हो, उसका जीवन विजेताओंकी संघ-शक्ति और दृढ़तापर ही आश्रित रहता है। मुगल साम्राज्यके क्षयका एक मुख्य कारण यह हुआ कि उसके नैतिक शरीरमें उत्तर दिशासे नये रुधिरका प्रवेश रुक गया और पुराना रक्त आरामतलबी और विलासितासे अतिशय दूषित हो गया। जिन मुगल सिपाहियोंने केवल पाथेय लेकर मध्य एशियासे प्रस्थान किया था और केवल तलवारके भरोसेपर दिल्ली और आगरेपर विजय प्राप्त की थी, उनके उत्तराधिकारी सुनहले हौदोंमें बैठकर युद्ध-भूमिमें जाते थे, पूरे हरमको साथ रखते थे, झिलमिलाते खेमोंमें सोते थे और दूसरोंके कन्धोंपर रखकर बन्दूक चलाकर जीतना चाहते थे। ऐसी दशा हो जानेपर तो आश्चर्य यही है कि मुग़ल साम्राज्य इतने दिनों तक कैसे चलता रहा?

११

प्राचीन कालसे ही भारतवर्षकी राजसत्तापर उत्तर दिशासे संकट आता रहा है। हूण, शक, यवन और अफग़ान सब उत्तर दिशासे आये और यहाँके विद्यमान् राज्योंपर छा गये। इसके अनेक प्राकृतिक कारण हैं। भारतसे उत्तरके प्रदेश ठण्डे, पहाड़ी और कठोर हैं। वहाँके रहनेवालोंके शरीर स्वभावतः पुष्ट और मांसल होते हैं। भारतके मैदानोंमें अन्न और फल-फूल सुगमतासे हो जाते हैं। गर्मीके कारण आलस्यकी प्रधानता रहती है, इस कारण सामान्यतः भारतके मैदानोंके निवासी सुखप्रिय और नाजुक हो जाते हैं। भारतकी उत्तरीय सीमासे उस पार धन-धान्यकी कमी है, वहाँ बहुत मेहनत करके थोड़ा पा सकते हैं। यहाँके सुलभ ऐश्वर्यकी प्रसिद्धिने सदा उत्तरवासियोंको भारतके मैदानोंकी ओर खींचा है, यही कारण है कि बहुत पुराने समयसे मध्य एशियाकी ओरसे, उत्तरके पहाड़ी

दर्रोंसे होकर, आक्रमणकारियोंके जत्थे भारतपर टूटते रहे हैं। इतिहास तो बतलाता है कि आर्यजाति भारतमें इसी मार्गसे अवतीर्ण हुई थी, शक और हूण इसी रास्तेसे भारतमें अवतीर्ण हुए और सदियोंतक देशके शासकोंको उनसे युद्ध करना पड़ा। उनके पश्चात् मुसलमानोंके आक्रमण प्रारम्भ हुए। उन आक्रमणोंको हम कई भागोंमें बाँट सकते हैं। लहरके पीछे लहर आती रही जो पहली लहरको दबाकर अपनी सत्ता जमाती रही। परन्तु, वह भी देरतक न जम सकी और नई लहरका शिकार हुई। कई आक्रमण तो भारतके तत्कालीन राज्यको उखाड़कर नया राज्य स्थापित करनेमें सफल हो गये, परन्तु कई आक्रमणोंका लक्ष्य केवल लूट-मार था। वह यहाँ कोई स्थायी असर तो न छोड़ सके, परन्तु, उस समयके राज्य-संगठनको ऐसी गहरी चोट पहुँचा गये कि उनके जानेके पीछे क्रान्ति पैदा हुए बिना नहीं रही। वह स्वयं तो एक तूफान थे ही, साथ ही, आनेवाले भयानक तूफ़ानके अग्रदूत भी थे। तैमूरलंग, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीके आक्रमण इसी कोटिके थे। उस समय मध्य एशिया एक ऐसा अन्धकारमय स्थान बना हुआ था जहाँ मनुष्य जातिकी संहारक शक्तियाँ तैयार होती थीं। जिधर पड़ जाती थीं, आफत मचा देती थीं। वह आग और तेगकी सवारीपर चलती थीं और पीछे राख और रक्तसे भरे हुए खेत छोड़ जाती थीं। चंगेज़ख़ाँ, तैमूर और नादिरशाह उसी शक्तिके भिन्न भिन्न रूप थे। उत्तर दिशाकी कमज़ोर परिस्थितिके कारण भारतको उन संहारक शक्तियोंका पर्याप्तसे अधिक मात्रामें सामना करना पड़ा।

मुग़ल साम्राज्य स्वयं ऐसे ही एक आक्रमणका परिणाम था और हम कह सकते हैं कि उसके अधःपातके कारणोंमें उसी प्रकारके अन्य आक्रमणोंका काफी हिस्सा था। बाबर भी उसी रास्तेसे भारतमें प्रविष्ट हुआ और नादिरशाह भी। एकने लोदी वंशका नाश किया और दूसरेने मुग़ल वंशका। अपनी सम्पूर्ण योग्यताकी सहायतासे भी मुग़ल वंशके शासक उत्तरके मार्गको आक्रमण-कारियोंसे न रोक सके। वह उस पहाड़ी दर्रेको, जिसमेंसे भारतका भाग्य कई बार गुज़र चुका है, बन्द न कर सके। यह भी उनके नाशका मुख्य कारण था। नादिरशाहके आक्रमणने साम्राज्यके शरीरमें जो सूराख़ कर दिया था, मृत्युके दूतने सुगमतासे उसमें प्रवेश कर लिया। भारतके शासनकी यह एक स्थायी समस्या है। इस देशके प्रत्येक शासकको उत्तरसे खतरा है। मध्य

एशियामें शायद अन्धकार तो अब नहीं रहा, फिर भी, उसमें तूफान पैदा करनेकी शक्तिका अभाव नहीं हुआ है। कोई नहीं कह सकता कि वहाँ कब कितना बड़ा उत्पात तैयार न हो जाय।

१२

मुगल साम्राज्यके क्षयके बीजोंका वपन करनेका सबसे अधिक श्रेय प्रायः औरंगज़ेबको दिया जाता है। हमने देखा है कि इसमें बहुत-सी अत्युक्ति है। साम्राज्य वस्तु ही ऐसी है कि उसमें शीघ्र नाशके परमाणु जन्मसे ही पैदा हो जाते हैं। वह एक अस्वाभाविक पैदावार है जो देरतक नहीं टिक सकती। हमने यह भी देखा है कि मुगल साम्राज्यके नाशके कई विशेष कारणोंका जन्म जहाँगीरके समयमें हो चुका था और शाहजहाँके शासन-कालमें वह प्रत्यक्ष और स्थूलरूपमें आ गये थे। यह स्वीकार कर लेनेपर भी हमें मानना पड़ेगा कि मुगल साम्राज्यकी अधोमुखी गतिको तीव्र करनेमें औरंगज़ेबका बहुत बड़ा हाथ था। उसकी शासन और युद्धसम्बन्धी नीतियाँ राज्यकी स्थिरताके सर्वथा प्रतिकूल थीं—वह बड़ेसे बड़े और मज़बूतसे मज़बूत शासनकी दीवारोंको भी हिला सकती थीं। इन पृष्ठोंमें हमने औरंगज़ेबकी राजनीतिकी बहुत विस्तृत कहानी दी है। उसकी नीतिने जो प्रतिक्रिया पैदा की उसपर भी पर्याप्त रोशनी डाली है। यहाँ उन सब बातोंको दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। इतना याद दिला देना ही काफी है कि यदि शाहजहाँके पीछे औरंगज़ेबके स्थानपर भारतकी गद्दीपर दारा बैठता तो शायद मुगल साम्राज्यकी जीवन-यात्रा इतने शीघ्र समाप्त न होती।

औरंगज़ेबमें दो विशेषतायें थीं। एक तो यह कि वह स्वभावसे अविश्वासी और मज़हबी मामलेंमें इतना अनुदार था कि राजनीति सदा गौण रहती थी,—वह राष्ट्रके हितको गौण और इस्लामके प्रचारको मुख्य मानता था। उसके समयकी प्रचारित राजाज्ञायें तो इस भावनासे प्रेरित थीं ही, उसके युद्ध भी कभी कभी उसी भावनाके परिणाम होते थे। इस दोषके साथ उसमें व्यक्तिगत गुण भी अनेक और असाधारण थे। उसका व्यक्तिगत चरित्र अन्य सब मुगल बादशाहोंकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ था। वह शराब, अफीम आदि दोषोंसे बचा हुआ था। युद्धमें वीर और राज्यके कारोबारकी देख-भालमें असाधारण चतुर था। जहाँ वज़ीरोंका ध्यान भी नहीं जाता था वहाँ औरंगज़ेबकी आँखें पहुँच जाती थीं। तबीयतमें दृढ़ता इतनी थी कि हठकी सीमाको पार कर गई थी।

इन दोनों विशेषताओंका मेल बहुत भयानक होता है। यदि औरंगज़ेब अनुदार तो होता परन्तु प्रमादी और आरामतलब भी होता तो शायद सल्तनतका बहुत बड़ा अनिष्ट न होता, क्योंकि, उसकी अन्य सब शक्तियोंके साथ साथ बुराईको पैदा करनेकी शक्ति भी परिमित होती। यदि वह अनुदार विलासी होता तो फर्रुखसियरसे बुरा न हो सकता, और यदि वह उदार होता तो दूसरा अकबर बन जाता। परन्तु वह अनुदार भी था और तपस्वी भी था। वह उस एंजिनकी तरह था जिसमें १० हज़ार घोड़ोंकी ताकत है, परन्तु वह पटरीपरसे उतरकर आबादीमें घुस गया है। एंजिन पटरीपर रहता तो संसारका कल्याण करता, और यदि पटरीपरसे उतरकर कमजोर हो जाता तो अधिक हानि न पहुँचाता, परन्तु उसकी दोनों विशेषतायें अन्ततक कायम रहीं। वह अनुदार भी रहा और समर्थ भी। यदि भलाई करता तो साम्राज्यको कई सादियोंके लिए जीवित कर जाता; परन्तु, क्योंकि प्रतिकूल नीतिपर चला, इस कारण साम्राज्यको ऐसा ज़बर्दस्त धक्का दे गया कि सँभलना असंभव हो गया।

औरंगज़ेबके दो कार्योंने राज्यको विशेष हानि पहुँचाई। उसकी हिन्दू-विरोधी आज्ञाओंने राजपूतोंमें असन्तोष पैदा कर दिया तथा स्थान स्थानपर विद्रोहकी अग्नि भड़का दी। उसके दक्षिणके युद्धोंने ख़ज़ाना खाली कर दिया तथा राज्यके केन्द्रको धन और जनसे शून्य कर दिया। राज्यको यह दो चोटें ऐसी पहुँचीं कि औरंगज़ेबके उत्तराधिकारी उनके प्रभावको दूर न कर सके।

१३

ऊपर हमने मुग़ल साम्राज्यके सामान्य और विशेष कारणोंपर सरसरी दृष्टि डालनेका यत्न किया है। चार भागोंमें जो कहानी सुनाई गई है यह उपसंहार उसका सारांश है। हमने इस कहानीमें मुग़लोंके उदय और अस्तकी घटनाओंमें-से गुज़रनेका यत्न किया है,—जैसा कि हमने इस पुस्तकके तीसरे भागकी प्रस्तावनामें लिखा था, इस पुस्तकका उद्देश्य स्कूल या कालेजकी पाठ्य पुस्तककी कमीको पूरा करना नहीं है। यह पुस्तक एक विशेष लक्ष्यको सामने रखकर लिखी गई है। एक विशेष घटना-समूहको सामने रखकर साम्राज्योंके चलानेवाले नियमोंकी व्याख्या करना ही इस पुस्तकका उद्देश्य था। वह उद्देश्य अपूर्ण रहेगा यदि अन्तमें हम उस देशकी एक विशेषतापर प्रकाश न डालें जिससे मुग़लोंको वास्ता पड़ा था।

भारतवर्षकी भौगोलिक और सामाजिक न्यूनतायें सर्वथा स्पष्ट हैं। उनकी ओर इस पुस्तकमें कई स्थानोंपर निर्देश हो चुका है। यदि वह न्यूनतायें न होतीं तो भारतवर्षका राजनीतिक इतिहास ऐसा तूफानी न होता। विदेशी आक्रमण-कारियोंकी सुगम सफलताका यही कारण रहा है कि हिन्दुस्तान टुकड़ोंमें बँटा रहा है और उसपरसे आनेवाले विजेताओंके मार्गको नहीं रोक सका। परन्तु, इनके साथ ही भारतवासियोंकी एक विशेष प्रकारकी उपेक्षापूर्ण दृढ़ताने सदा उनका साथ दिया है। विजेता आये और राज करने लगे। वह थोड़ा या अधिक समय तक भारतवासियोंपर राजनीतिक शासन करते रहे। परन्तु, यह आश्चर्यकी बात है कि उनका शासन कभी सतहके नीचे तक नहीं पहुँचा, वह भारतवासियोंकी संस्कृतिमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं कर सके। यूनानी आये और चले गये। हूण और शक आये और यहाँ बस गये, परन्तु, वह भारतवर्षकी अन्तरात्मापर बहुत कम असर डाल सके। जिस इस्लामने मिसर, फारस, अफगानिस्तान आदि देशोंको एक ही चोटमें सोलहों आना जीत लिया था, वह भारतपर लगभग आठ सदियों तक शासन करके भी उसे चार आना-भरसे अधिक प्रभावित न कर सका। भारतवासियोंका धर्म, सामाजिक संगठन, वेषभूषा और रीति-रिवाज वही रहे। जातिका बाह्य आवरण बदल गया, परन्तु, अन्तरात्मामें कोई भारी परिवर्तन नहीं हुआ। यही कारण है कि विजेता आये और चले गये, परन्तु, हिन्दुस्तानी लगभग उसी दशामें जीवित रहे। और जब थोड़ा-सा भी अवसर मिला और ऊपरसे दबाव कम हुआ तो उनकी जागृतिमें देर न लगी। इस देशके निवासियोंमें कुछ ऐसी हठीली जीवन-शक्ति है कि वह समयकी चोटों और नैतिक अत्याचारोंको सदियों तक सहकर भी विद्यमान रहती है। इसी शक्तिको देखकर एक विदेशी कवि कह उठा था—

> The East bowed low before the West
> In patient deep disdain;
> She let the legions thunder past,
> And plunged into thought again.

भारतवर्ष विदेशसे आये हुए तूफानके सामने सिर झुका देता है। उस सिर झुकानेमें धैर्य और गहरी उपेक्षाका भाव मिला होता है। तूफानी लश्कर सिरपरसे गुजर जाता है और भारतवर्ष फिर अपने ध्यानमें मग्न हो जाता है।

जिस देशके वासी लगभग ८०० वर्षोंके विदेशी शासनके पश्चात् उसी अपने पुराने रूपमें फिरसे जाग्रत् हो सकते हैं, उसमें कोई विशेष जीवन-शक्ति अवश्य ही होनी चाहिए। आज भी वही दृश्य दुहराया जा रहा है। दो सदियोंतक पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य सैन्य-शक्तिका पूरा जोर सहकर भी उस देशके वासियोंने सिर उठाया है तो उसी पुराने ठाठमें। वही धोती और वही कुर्ता। वही सादगी, और वही भारतीयता। न उन ८०० वर्षोंने भारतकी आत्माको कुचला था, और न यह २०० वर्ष उसकी आत्माको कुचल सके। यदि आज हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतिके मेलसे एक नई राष्ट्रीयता पैदा हो रही है तो वह न तलवारका असर है और न प्रचारका। वह एक स्वाभाविक विकास है जो भारतीय आत्माकी जीवन-शक्तिके पक्षमें और भी दृढ़ दलील है।

मुग़ल साम्राज्यको भारतवर्षमें बहुत कड़ी संस्कृतिसे वास्ता पड़ा था। कोई निर्बल संस्कृति शायद ५० वर्षमें ही झुक कर टूट जाती, परन्तु, भारतीय संस्कृतिमें यही विशेषता है कि वह झुकती तो शीघ्र है, परन्तु टूटती नहीं।